चतुर्थ सेमेस्टर
Fourth Semester

राजकोषीय अर्थशास्त्र एवं संघीय वित्त **एम.ए.ई.सी. – 607**

Fiscal Economics and Federal Finance **M.A.E.C. - 607**

विषय-सूची

खण्ड – 1 लोक ऋण (Public Debt)	**पृष्ठ संख्या 1-73**
इकाई 1- लोक ऋण का अर्थशास्त्र एवं प्रकार (Economics of Public Debts and Types)	1-23
इकाई 2- लोक ऋण के प्रभाव एवं भार (Effects and Burden of Public Debts)	24-48
इकाई 3- लोक ऋण भुगतान की विधियाँ एवं प्रबन्धन (Methods and Management for Redemption of Public Debts)	49-73
खण्ड – 2 संघीय वित्त (Federal Finance)	**पृष्ठ संख्या 74-112**
इकाई 4- संघीय वित्त के सिद्धान्त और समस्याएं (Theory and Problems of Federal Finance)	74-81
इकाई 5- संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण (Allocation and Functioning of Federal Finance)	82-89
इकाई 6- वित्त आयोग संरचना एवं कार्यकरण (Structure and Functioning of Finance Commission)	90-99
इकाई 7- 13वें वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें (Major Recommendation of 13th Finance Commission)	100-112

खण्ड – 3 भारतीय कर प्रणाली एवं बजटिंग (Indian Tax System and Budgeting)	**पृष्ठ संख्या 113-208**
इकाई 8- भारत में कर आधार(प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर एवं गैर -कर आय) (Tax Basis in India (Direct and Indirect and Non-Tax Income))	113-132
इकाई 9- राज्य और स्थानीय निकाय की आय के स्रोत (Sources of Income of State and Local Bodies)	133-146
इकाई 10- संघीय बजट का विश्लेषण एवं सुधार (Analysis and Improvement of Federal Budget)	147-171
इकाई 11- परम्परागत, निष्पादन और शून्य आधार बजटिंग (Traditional, Performance and Zero Base Budgeting)	172-184
इकाई 12- घाटे की वित्त व्यवस्था एवं घाटे का मौद्रीकरण और राजकोषीय क्षेत्र सुधार (Deficit Finance and Monetization of Deficit and Fiscal Sector Reforms)	185-208

Suggested Readings:

1. Agarwal, R.C. (2007) ***Public Finance—Theory and Practice***, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
2. Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) ***Lectures on Public Economics***, Tata McGraw Hill, New York
3. Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) ***Handbooks of Public Economics***, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
4. Buchanan, J.M. (1970) ***The Public Finances***, Richard D, Irwin, Homewood
5. Chaudhury, R.K. (2008) ***Public Finance and Fiscal Policy***, Kalyani Publishers, Ludhiana
6. Dalton, H. (2004) ***Principles of Public Finance***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
7. Goode, R. (1986) ***Government Finance in Developing Countries***, Tata McGraw Hill, New Delhi
8. Houghton, E. W. (Ed.) (1988) ***Public Finance***, Penguin, Baltimore.
9. Jha,R. (1998) ***Modern Public Economics***, Routledge, London
10. Mcnutt,P. (2002) ***The Economics of Public Choice***, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
11. Mithani, D.M. (1998) ***Modern Public Finance***, Himalaya Publishing House, Mumbai
12. Mueller, D. C. (1979) ***Public Choice***, Cambridge University Press, Cambridge
13. Musgrave, R. A. (1959) ***The Theory of Public Finance***, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
14. Sury, M.M. (2010) ***Finance Commissions and Fiscal Federalism in India***, New Century Publications, New Delhi

इकाई - 1 लोक ऋण का अर्थशास्त्र एवं प्रकार

(Economics of Public Debts and Types)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति

1.4 व्यक्तिगत या निजी तथा लोक ऋण में अन्तर

1.5 लोक ऋण बनाम कराधान

1.6 लोक ऋण में वृद्धि के कारण

1.7 लोक ऋण का औचित्य

1.8 विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व

1.8.1 आन्तरिक ऋण का महत्व एवं सम्भावना

1.8.2 बाह्य ऋण और विकासशील देशों का आर्थिक विकास

1.8.3 विदेशी ऋणों के उपयोग की शर्तें एवं सीमाएँ

1.9 लोक ऋण के प्रति दृष्टिकोण

1.10 लोक ऋण के प्रकार या वर्गीकरण

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.12 सारांश

1.13 शब्दावली

1.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई के अन्तर्गत लोक ऋण से सम्बन्धित प्राथमिक बातों यथा लोक ऋण से तात्पर्य, लोक ऋण तथा व्यक्तिगत ऋण में अन्तर, लोक ऋण एवं कराधान, लोक ऋण का औचित्य, विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व, लोक ऋण के प्रति दृष्टिकोण, लोक ऋण के वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे। वर्तमान में,लोक ऋण न केवल विकासशील देशों की बल्कि विकसित देशों की भी आवश्यकता बन चुका है। यदि किसी देश के पास साधनों का अभाव है तथा वह विकास की प्रक्रिया में विश्व के विकसित देशों की बराबरी करना चाहता है तो उसे दोनों ही तरह के आन्तरिक तथा बाह्य ऋण लेने होंगे। आन्तरिक ऋण निष्क्रिय साधनों को सक्रिय बनाता है जबकि बाह्य ऋण विकास की गति तथा आवश्यकता की पूर्ति करता है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- ✓ लोक ऋण के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण तथा व्यक्तिगत ऋण में अन्तर कर सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण एवं कराधान के साथ साथ लोक ऋण के औचित्य को समझ सकेंगे।
- ✓ विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के मुख्य एवं अन्य प्रकारों को जान सकेंगे।

1.3 लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति (Meaning and Nature of Public Debt)

सरकार जब सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करारोपण के द्वारा नहीं कर पाती है। (क्योंकि लोगों में एक निश्चित सीमा के बाद करारोपण की ऊँची दर असन्तोष को जन्म देगी तथा कार्य प्रेरणा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगी) तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का भी सहारा नहीं ले पाती है (क्योंकि उसे **'सुरक्षित सीमा'** के भीतर ही रखना होता है, जिससे भयावह मुद्रा स्फीति अर्थव्यवस्था को ध्वस्त न कर दें)। ऐसे समय वहाँ सरकार सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक आय के बीच के अन्तर को लोगों से उधार लेकर ऋण के माध्यम से पूरा करने का प्रयास करती है। यही लोक ऋण है। इस तरह लोक ऋण का अर्थ सरकार द्वारा लिए जाने वाले ऋण से है। सरकार द्वारा अपने देश के अन्दर तथा दूसरे देशों से लिये गये ऋण को लोक या लोक ऋण कहते हैं। लोक ऋण या तो आन्तरिक हो सकता है अथवा विदेशी सरकारों या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से लिया जा सकता है।

किसी अवधि में बजट घाटा (Budget Deficit) राजस्व से व्यय आधिक्य (excess of spending over revenues) है। किसी दिए हुए समय में ऋण पिछले सभी बजट घाटे का जोड़ (sum of all over revenue) है। इस प्रकार ऋण पिछले राजस्व से पिछले व्यय का संचयी आधिक्य (cumulative excess) है। ऋण एक स्टॉक चर (Stock variable) है, जिसकी माप समय के एक खास बिन्दु (at a point of time) पर होता है। बजट घाटा एक प्रवाह चर (flow variable) है, जिसकी माप समय की एक अवधि (during a period

of time) में होती है। *उदाहरणार्थ,* मान लें कि 2010 के दौरान सरकार को 25000 करोड़ रूपए का घाटा होता है, तो इस स्थिति में लोक ऋण के भण्डार में इस राशि का जोड़ दिया जाएगा। इसके विपरीत, मान लें कि 2008 में सरकार को 18000 करोड़ रूपए का अतिरेक (Surplus) प्राप्त हुआ। लोक ऋण के भण्डार में 7000 करोड़ रूपए जितनी राशि की कमी रहेगी।

वर्तमान में,राज्य का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि सरकारें बिना ऋण के अपना कार्य नहीं चला सकतीं। लोक ऋण को सार्वजनिक आय की दृष्टि से **'असाधारण वित्त'** (Extraordinary Finance) कहा जाता है, क्योंकि सरकार द्वारा ऋण असाधारण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लिए जाते हैं। आजकल मुद्रा बाजार के विकास एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वृद्धि होने के कारण लोक ऋण की प्रक्रिया काफी सुविधाजनक हो गई है। वर्तमान में, लोक ऋण सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है, किन्तु बहुत बड़ी मात्रा में सार्वजनिक ऋणों से आय स्रोत प्राप्त करना उचित नहीं है।

बैस्टेबल के विचार से ***''जिस प्रकार एक व्यक्ति हमेशा ऋण की सहायता से अपना काम नहीं चला सकता उसी प्रकार सरकार भी हमेशा ऐसे साधनों से काम नहीं चला सकती।''*** वर्तमान में, सरकारे आन्तरिक ऋण अथवा बाह्य ऋण अथवा दोनों लेकर अपनी अनेक विकास योजनाओं को पूरा कर रही हैं।

सरकार जो राशि ऋण द्वारा किसी वर्ष प्राप्त करती है, वह उसकी उस वर्ष की आय का हिस्सा बन जाती है। यह आय स्थायी नहीं होती क्योंकि इसे कुछ समय के उपरान्त वापस करना होता है। अतः ऋण को सरकार की अल्पकालीन आय का साधन कहा जाता है। दीर्घकालीन दृष्टि से यह आय नहीं कही जा सकती। सरकार की आय में केवल उसी आय को सम्मिलित करना उचित होगा जो सदैव ही सरकार के उपयोग में रहे और जिसे सरकार को वापस लौटाना न पड़े। सार्वजनिक आय के विपरीत सार्वजनिक ऋणों पर एक निर्धारित अवधि तक ब्याज देना पड़ता है तथा ऋण की अवधि समाप्त होने पर ऋण राशि का भुगतान करना आवश्यक होता है। इस तरह लोक ऋण की प्रकृति सार्वजनिक आय की प्रकृति से सर्वथा भिन्न होती है।

प्रो. जे. के. मेहता के अनुसार, ***''सार्वजनिक आय वह प्राप्ति है जिसको, उसके भुगतान कर्त्ताओं को वापस लौटाना सरकार के लिए आवश्यक नहीं होता, जबकि इसके विपरीत लोक ऋण के सम्बन्ध में सरकार इस बात के लिए बाध्य होती है कि उस धन को यह ऋणदाताओं को वापिस कर दें।''*** वस्तुतः ऋण एक तरह का आर्थिक बोझ होता है, अतः सामान्य परिस्थितियों में ऋण लेना उचित नहीं समझा जाता।

सकल ऋण (Total Debt) तथा निवल ऋण (Net Debt) में अन्तर किया जाता है। निवल ऋण को जनता द्वारा धारण किया गया ऋण (Debt held by the public) भी कहा जाता है, जिसमें स्वयं सरकार द्वारा धारण किए गए ऋण को शामिल नहीं किया जाता है। व्यक्ति या परिवार, बैंक, व्यवसायी, विदेशी तथा अन्य गैर-संघीय हस्तियां निवल ऋण के स्वामी होते हैं। सकल ऋण निवल ऋण तथा सरकार के स्वामित्व में बाण्ड का प्रयोग है। (Gross Debt = Net Debt + Bonds owned by the government)

1.4 व्यक्तिगत या निजी तथा लोक ऋण में अन्तर (Difference between Private and Public Debt)

सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत ऋणों के बीच अनेक समानतायें हैं, पर साथ ही कुछ असमानतायें भी हैं। जिन्हें निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:

1 समानताएं

1. **उद्देश्य -** व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दोनों ही ऋण आकस्मिक समय में लिए जाते हैं। जब किसी कारण से आय की मात्रा व्यय की तुलना में कम पड़ जाती है, तभी व्यक्ति तथा सरकार द्वारा ऋण लिये जाते हैं।
2. **ऋण की सीमा -** व्यक्ति तथा सरकार दोनों की ही ऋण लेने की एक निश्चित सीमा होती है, जिसके बाद उन्हें ऋण नहीं प्राप्त होता है। यह सीमा उनकी ऋण तथा ऋण के ब्याज के भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर करती है। यह बात दूसरी है कि व्यक्ति की ऋण क्षमता तथा साख दोनों कम होती है जबकि सरकार की क्षमता तथा साख दोनों अधिक होती है पर एक सीमा के बाद सरकार को भी उसी प्रकार ऋण नहीं मिल पाता है, जिस प्रकार व्यक्ति को।
3. **भुगतान का दायित्व -** दोनों ही ऋणो में ऋण के ब्याज तथा मूलधन के भुगतान के दायित्व के सम्बन्ध में समानता रहती है। दोनों के भुगतान के ढंग में अन्तर हो सकता है।
4. **कोष का स्थानान्तरण -** सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही ऋणों में एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग में कोष का हस्तान्तरण होता है। व्यक्तिगत ऋण की स्थिति में हम यह पाते हैं कि ऋण से प्राप्त कोष का प्रयोग किसी साधन को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, इस प्रकार एक प्रयोग के लिए दूसरे प्रयोग का त्याग करना पड़ता है। यही बात लोक ऋण के भी सम्बन्ध में ठीक है। क्योंकि इसमें भी सरकार इस कोष के द्वारा कोई साधन प्राप्त करती है तथा इसमें व्यक्तिगत प्रयोग का त्याग करके सार्वजनिक प्रयोग में कोष को लगाया जाता है।
5. **ऋण का प्रयोग -** व्यक्तिगत ऋण के सम्बन्ध में ऋणी यथा सम्भव प्रयास करता है कि ऋण का प्रयोग लाभप्रद उपयोगों में हो अन्यथा दायित्व का भुगतान नहीं किया जा सकता, ठीक यही बात सार्वजनिक ऋणों के भी सम्बन्ध में सही है, सरकार को भी यही प्रयास करना चाहिए।

2 असमानताएं

एक व्यक्ति की भाँति सरकार को भी ऋण लेना पड़ता है, लेकिन सरकार एवं जनता के द्वारा लिए गए ऋणों के उपयोग एवं ऋण की व्यवस्था में कुछ मौलिक अन्तर पाए जाते हैं, जो इस प्रकार है -

1. **ऋण का उद्देश्य -** एक व्यक्ति अपने परिवार के हितों के लिए अथवा अपने निजी लाभ के लिए ऋण लेता है जबकि सरकार देश के कल्याण के लिए ऋण लेती है। कभी-कभी सरकार मुद्रा प्रसार की स्थिति को भी नियन्त्रित करने के लिए देश के लोगों से ऋण लेती है। सामान्यतया सरकार द्वारा लिए गए अधिकांश ऋण उत्पादक होते हैं, जबकि व्यक्तिगत ऋण उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।
2. **ब्याज की दर -** सरकार की साख अधिक होने के कारण उसे कम ब्याज पर उधार मिल जाता है जबकि व्यक्तिगत ऋण प्रायः ऊँची ब्याज की दरों पर ही उपलब्ध हो पाता है।

3. **ऋण की मात्रा, अवधि तथा जमानत -** एक व्यक्ति की तुलना में सरकार अपनी ऊँची साख के कारण बड़ी मात्रा में तथा लम्बे समय के लिए ऋण ले सकती है और सरकार को जमानत देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके विपरीत, व्यक्तिगत ऋणों की मात्रा एवं अवधि अपेक्षाकृत कम होती है और ऋण लेने के लिए प्रायः जमानत अथवा उचित धरोहर का होना आवश्यक समझा जाता है।
4. **ऋण प्राप्ति के रूप तथा स्रोत -** सरकार अपने देश के नागरिकों तथा विभिन्न संस्थाओं से ऋण लेने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से भी ऋण ले सकती है। इसके अलावा सरकार स्वयं भी ऋण का स्रोत उत्पन्न कर सकती है जबकि एक व्यक्ति या तो बैंक से अथवा अपने मित्रों एवं रिश्तेदारों से या साहूकार से ऋण ले सकता है। व्यक्ति के ऋण सम्बन्धी साधन अत्यन्त सीमित होते हैं और उसे प्रायः आन्तरिक ऋण ही उपलब्ध हो सकता है।
5. **अनिवार्यता -** सरकार के पास राजसत्ता होती है। अतः वह आन्तरिक ऋणों पर अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते है, जैसे आयकर दाताओं पर अनिवार्य बचत योजना लागू कर सरकार ने उनसे ऋण लिया था। किन्तु एक व्यक्ति इस प्रकार किसी शक्ति या अधिकार से ऋण नहीं ले सकता।
6. **ऋण भार -** व्यक्ति जब ऋण लेता है तो उसका भार उसी व्यक्ति पर पड़ता है या अधिकतम उसके परिवार के सदस्यों पर पड़ता है किन्तु सरकार द्वारा लिए गए ऋण का भार पूरे देश के लोगों पर पड़ता है क्योंकि ऋण चुकाने के लिए सरकार लोगों पर कर लगाती है। यही नहीं लोक ऋण का भार वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ भावी पीढ़ी पर भी पड़ता है।
7. **साख का अन्तर -** सरकार की साख अधिक होने से सरकार को सरलता से तथा कम ब्याज पर ऋण मिल जाता है। इसी कारण सरकार द्वारा जारी ऋणपत्र हाथों-हाथ बिक जाते हैं, क्योंकि लोग सरकार को ऋण देना सुरक्षित विनियोग समझते हैं। किन्तु एक व्यक्ति को इतनी सरलता से ऋण नहीं मिलता साथ ही उसे ऊंची दर का ब्याज भी देना पड़ता है।
8. **ऋण का लाभ से सम्बन्ध -** जब व्यक्तिगत ऋण व्यय किया जाता है तो इससे ऋणदाता को कोई लाभ प्राप्त नहीं होता किन्तु जब सरकार ऋण की राशि व्यय करती है तो देश के नागरिकों को लाभ प्राप्त होता है। इस लाभ में वे व्यक्ति भी शामिल होते हैं जो सरकार को ऋण नहीं देते हैं।
9. **ऋण का परिशोधन -** सरकार ऋण का भुगतान करने से इन्कार कर सकती है अथवा अपने ढंग से भुगतान करने का निर्णय ले सकती है किन्तु एक व्यक्ति लिए हुए ऋण का भुगतान करने से इन्कार नहीं कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो उस पर कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। किन्तु सरकार भी अपनी साख को दृष्टि में रखते हुए ऋण का भुगतान करने से इन्कार नहीं करती।
10. **अवधि का अन्तर -** व्यक्ति प्रायः अल्पावधि के लिए ऋण लेता है अथवा यह कुछ ही वर्षों के लिए होता है। इसके विपरीत, सरकार दीर्घकालीन योजनाओं के लिए दीर्घकालीन ऋण लेती है, जो 20-25 वर्ष या उससे भी अधिक की अवधि की हो सकती है।
11. **गोपनीयता -** व्यक्तिगत ऋण सामान्यतया गोपनीय रखे जाते हैं, जबकि सार्वजनिक ऋणों को गोपनीय नहीं रखा जाता। व्यक्ति अपनी साख व प्रतिष्ठा बचाए रखने के लिए ऐसा करता है। अधिकाधिक ऋणभार

पड़ने पर भी वह अपनी स्थिति को छिपाए रखता है। इसके विपरीत, सरकार समय-समय पर ऋणों के लिए आँकड़ों को प्रकाशित करती रहती है, जिससे देश के नागरिकों के सामने स्थिति स्पष्ट रहे।

12. **आवश्यकता का अन्तर-** कोई ऋण तभी लेता है जब उसको धन की आवश्यकता होती है, परन्तु सरकार बहुत बार धन प्राप्त करने के दृष्टिकोण से नहीं वरन् अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने के लिए तथा उसमें आवश्यक परिवर्तन की दृष्टि से भी ऋण लेती है। यथा स्फीतिकाल में व्यक्तियों के पास क्रयशक्ति कम करने के उद्देश्य से सरकार जनता से ऋण लेती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निजी ऋण एवं लोक ऋण में अन्तर होता है।

1.5 लोक ऋण बनाम कराधान (Public Debt vs.Taxation)

लोक ऋण तथा करों दोनों में कुछ समानतायें हैं। ऋण तथा कर दोनों ही सरकार के आय के स्रोत हैं तथा दोनों जनता से लिये जाते हैं। जब सरकार देश की जनता से कर वसूल करती है अथवा ऋण लेती है तो देश में प्रचलित कुल मुद्रा की मात्रा स्थिर रहती है, केवल जनता के पास से मुद्रा का स्थानान्तरण सरकार को होता है। किन्तु उपर्युक्त समानताओं के बावजूद इन दोनों में निम्न मौलिक भेद हैं:

1) करारोपण आय का एक नियमित स्रोत है जो सरकार व्ययों की पूर्ति हेतु लेती है, जबकि लोक ऋण साधारण एवं असाधारण दोनों ही प्रकार के व्ययों को पूरा करने के लिए जाता है।
2) करों का क्षेत्र ऋणों की तुलना में सीमित होता है। करों को केवल देश के अन्दर ही प्राप्त किया जा सकता है, जबकि ऋणों को देश व विदेश दोनों ही स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है।
3) करों से प्राप्त आय सीमित होती है जिसे सरकार सोच-समझकर मिव्ययिता से व्यय करती है। जबकि लोक ऋण धन-प्राप्ति का एक सुगम साधन होने के कारण मितव्ययिता को कम महत्व दिया जाता है।
4) करों से प्राप्त होने वाली धन-राशि का वापस भुगतान नहीं करना पड़ता जबकि लोक ऋण सरकार पर बोझ होते हैं क्योंकि ऋण-राशि और उसके ब्याज का भुगतान सरकार द्वारा ऋणदाता को करना पड़ता है।
5) कराधान का भार तथा लाभ दोनों ही वर्तमान पीढ़ी प्राप्त करती है और कर के रूप में त्याग भी इसी पीढ़ी को करना पड़ता है। इसके विपरीत, सार्वजनिक ऋणों का भार तथा उसका प्रतिफल भावी पीढ़ी को प्राप्त होता है क्योंकि अधिकांश ऋण दीर्घकालीन विकास योजनाओं को पूरा करने के लिए खर्च किए जाते हैं।
6) कर का भुगतान प्रायः वर्तमान आय से किया जाता है जबकि सरकार को ऋण व्यक्ति प्रायः अपनी पूँजी में से देता है। साथ ही कर की राशि संग्रह करने में कुछ समय लगता है किन्तु लोक ऋण शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं।

1.6 लोक ऋण में वृद्धि के कारण (Causes to Increase in Public Debt)

वर्तमान में प्रायः सब देशों में लोक ऋण की मात्रा में वृद्धि हुई है, विशेष रूप से विकासशील देशों में लोक ऋण की मात्रा तीव्र गति से बढ़ी है। लोक ऋण में वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

1) कल्याणकारी राज्य होने से सरकार के कार्यक्षेत्र में वृद्धि होने से उसके व्यय में भारी वृद्धि हुई है। साथ ही सरकारों को युद्ध तथा युद्ध की तैयारी पर भारी व्यय करना पड़ता है, जो अनुत्पादक व्यय होता है। इस व्यय की पूर्ति हेतु सरकार को ऋण लेना पड़ता है।
2) आजकल सामान्यतया सरकारों द्वारा घाटे के बजट बनाए जाते हैं और बजट प्रस्तुत करते समय जिस व्यय को बिना पूर्ति के छोड़ दिया जाता है, बाद में उसकी पूर्ति लोक ऋण से की जाती है।
3) वर्तमान में,कल्याणकारी राज्यों की स्थापना से तथा लोगों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने के लिए सरकार को सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर भारी व्यय करना होता है, जैसे - सड़कें, रेल, बाँध, नहरें, स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि। इसकी वित्तीय व्यवस्था काफी अंशों में ऋणों से की जाती है।
4) योजनागत् आर्थिक विकास की विभिन्न परियोजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। इसकी व्यवस्था लोक ऋण द्वारा की जाती है, जिससे लोक ऋण में वृद्धि होती है।
5) देश में मुद्रा-प्रसार एवं आर्थिक मन्दी के कारण अर्थव्यवस्था में अस्थिरता पैदा हो जाती है, जिसका देश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि देश में आर्थिक स्थिरता रहे। मन्दी को दूर करने के लिए सरकारी व्यय लोक ऋण द्वारा की जाती है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि लोक ऋण की मात्रा में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

1.7 लोक ऋण का औचित्य (Justification of Public Debt)

लोक ऋण के औचित्य के बारे में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इस आधार पर लोक ऋण का विरोध किया कि इससे फिजूलखर्ची में वृद्धि होती है, युद्ध को प्रोत्साहन मिलता है एवं राष्ट्रों की आर्थिक स्थिरता खतरे में पड़ती है। **एडम स्मिथ** का मत था ***''बढ़ते हुए ऋण वर्तमान में कष्ट पहुँचाते हैं और दीर्घकाल में सम्भवतः पूरे यूरोप के देशों को बरबाद कर देंगे।''*** दूसरे शब्दों में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री सन्तुलित बजट नीति के समर्थक थे अर्थात् वे इस दृष्टिकोण के समर्थक थे कि सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक आय से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि सरकार ऋण लेने के लिए बाध्य हो ही जाय तो केवल उत्पादक कार्यों के लिए ही ऋण लेना चाहिए। कीन्सियन क्रान्ति ने लोक ऋण की धारणा को एक नया मोड़ दिया तथा यह प्रतिपादित किया कि गुणक प्रभाव के क्रियाशीलन के कारण लोक ऋण में वृद्धि राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में बहुत अधिक वृद्धि लायेगी। कीन्स ने यह मत दिया कि सरकार को उत्पादक तथा अनुत्पादक (उपभोग) सभी प्रकार के उद्देश्यों हेतु ऋण लेना चाहिये तथा प्रभावोत्पादक माँग में वृद्धि करनी चाहिये। इस प्रकार कीन्स ने उपभोग के लिए भी लोक ऋण पर बल दिया क्योंकि चाहे उत्पादक वस्तुओं में विनियोग के लिए अथवा उपभोग वस्तुओं में विनियोग के लिए ऋण लिया जाय, दोनों ही स्थितियों में प्रभावोत्पादक माँग में वृद्धि होगी।

प्रो. हेन्सन सभी वित्तीय अस्त्रों में, लोक ऋण को आर्थिक स्थिरता कायम रखने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण तथा लोचदार अस्त्र मानते हैं। उनका यह मत है कि घाटे की वित्त व्यवस्था तो एक धार की तलवार है जो केवल अवसाद में लागू होती है, अभिवृद्धि की स्थिति में नहीं लागू होती है, पर इसके विपरीत लोक ऋण एक प्रभावशाली अस्त्र है, जिसके द्वारा अवसाद की स्थिति में भी मुद्रा की पूर्ति बढ़ाई जा सकती है तथा अभिवृद्धि की

स्थिति में मुद्रा को बाहर भी निकाला जा सकता है। इसीलिए न केवल युद्धकाल में बल्कि आजकल सामान्य स्थितियों में भी सार्वजनिक ऋणों को सरकारी बजट में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अनेक देशों में ऋण का प्रयोग पूँजी-निर्माण तथा मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। संक्षेप में, आधुनिक विचारकों का मत है कि राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के कारण ऋण सरकार की सामान्य प्रक्रिया का अंग है और राज्य के नागरिकों की सेवा के लिए लिया गया ऋण विनियोग के समान है। यद्यपि कि उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोण चरम स्थिति के प्रतीक हैं।

वस्तुतः लोक ऋण की उपयोगिता उसके उद्देश्यों पर निर्भर रहती है। यदि ऋण के फलस्वरूप विकास की दर में वृद्धि होती है, देश में आय, बचत और विनियोग में वृद्धि होती है जिससे आत्म-स्फूर्ति-विकास की अवस्था को जल्दी प्राप्त किया जा सके तो ऐसे ऋणों का पूरा-पूरा औचित्य है। किन्तु यदि ऋण का प्रयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए किया जाता है जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विकास और उत्पादकता में कोई सहायता नहीं मिलती तो ऐसे ऋण को भार ही माना जाएगा तथा उसका कोई औचित्य नहीं है। हाल के वर्षों में लोक ऋण की मात्रा में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है जिसके प्रमुख कारण निम्न हैं:

1) इन देशों में साधनों की कमी होती है, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र की विनियोग सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती। क्योंकि करारोपण के कारण कार्य प्रेरणा हतोत्साहित होती है तथा घाटे की वित्त व्यवस्था से मुद्रा स्फीति का डर रहता है, इसलिए सार्वजनिक ऋणों पर विशेष बल दिया जाता है।
2) करारोपण समाज के ऊपर एक प्रत्यक्ष बोझ है, घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण भी बोझ आता है क्योंकि इसके कारण मूल्य में वृद्धि होती है और ऐसी स्थिति में गरीब तथा धनी के बीच किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता। जबकि लोक ऋण से उत्पन्न बोझ उक्त दोनों की तुलना में सबसे कम होता है। **डॉ. भार्गव** का कहना है कि लोक ऋण के कारण करारोपण के बोझ को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है - क्योंकि इसके कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।
3) विकासशील देशों में मुख्य समस्या प्रभावोत्पादक माँग की कमी की नहीं है बल्कि उत्पादक क्षमता में वृद्धि की है। इसलिए आर्थिक विकास को पूरा करने के लिए वह वित्तीय तरीका अपनाया जाना चाहिये जो प्रभावोत्पादक माँग में कम से कम वृद्धि के साथ उत्पादन-क्षमता में वृद्धि लाये। घाटे की वित्त व्यवस्था की तुलना में लोक ऋण द्वारा मुद्रा की पूर्ति में कम वृद्धि आयेगी।
4) लोक ऋण आय सृजन (revenue generator) तथा आर्थिक स्थिरता कायम करने वाला अस्त्र है, वित्तीय नीति के रूप में यह बचत का सृजन तथा गतिशीलता बनाये रखता है तथा मौद्रिक अस्त्र के रूप में यह आर्थिक स्थिरता को कायम रखने के लिए महत्वपूर्ण यन्त्र माना जाता है।
5) लोक ऋण सबसे अधिक लोचदार वित्तीय तथा मौद्रिक अस्त्र है। एक निश्चित सीमा के बाद कर नहीं लगाया जा सकता। अभिवृद्धि की स्थिति में घाटे की वित्त व्यवस्था असफल हो जाती है, पर लोक ऋण सभी स्थितियों में व्यापार चक्रों के नियन्त्रण के अस्त्र के रूप में अपनाया जा सकता है।

1.8 विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व (Importance of Public Debt in Developing Countries)

विकासशील देशों की मुख्य समस्या तेजी के साथ आर्थिक विकास करना है परन्तु इसके लिए पूँजी-संचय व पूँजी निर्माण की ऊँची दर का होना आवश्यक है। विकासशील देशों में निम्न उत्पादकता तथा कम आय के कारण बचतों का स्तर नीचा बना रहता है, जिससे आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः ऐसी दशा में प्रत्येक विकासशील देश की सरकार को ऋणों की सहायता लेनी पड़ती है भले ही वे आन्तरिक ऋण हों अथवा बाह्य ऋण। इन देशों में लगातार बढ़ते विकास व्यय के लिए वित्त जुटाना एक अत्यधिक कठिन समस्या है।

वित्तीय साधनों को जुटाने के संदर्भ में ही कर की भूमिका पर बल दिया जाता है, किन्तु करारोपण की सीमाएँ हैं। इन सीमाओं के अतिक्रमण के पश्चात् आर्थिक प्रेरणा सम्बन्धी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं, यथा, स्वैच्छिक प्रकृति या भुगतान की प्रत्याशा। इन्हीं कारणों से इसके सम्बन्ध में आर्थिक प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कम सम्भावना रहती है। लोकव्यय के लिए ऋण को उपयुक्त इसलिए समझा जाता है, क्योंकि इसके द्वारा पूंजीगत वस्तुओं का सृजन होता है। लोक ऋण द्वारा ऐसी बचत को उत्पादक कार्यों के लिए जुटाया जा सकता है, जो इसकी अनुपस्थिति में संचय की जाती है या जमीन तथा बहुमूल्य धातुओं जैसे अनुत्पादक व्ययों पर खर्च की जाती है।

लोक ऋण द्वारा सार्वजनिक विनियोग के स्तर को ऊँचा किया जा सकता है। इस कारण कुल विनियोग का स्तर भी ऊँचा हो जाएगा जो सिर्फ करारोपण की स्थिति में सम्भव नहीं हो सकता। एक अन्य तरीके से भी लोक ऋण आर्थिक विकास में योगदान देता है। व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का एक भाग परिसम्पत्ति के रूप में रखना चाहता है, जिससे सुरक्षित आय प्राप्त हो। इसके आधार पर लोग स्थिर आय वाले सरकारी बाण्ड में विनियोग करने का मन बनाते हैं।

संक्षेप में विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में लोक ऋणों का महत्व इस प्रकार है-

1) यदि ऋणों का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जाय तो इससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2) संकटकालीन स्थितियों का सामना करने के लिए लोक ऋण का महत्व निर्विवाद है।
3) विकासशील देशों में आर्थिक विकास के लिए लोक ऋणों का विशेष महत्व है, विशेष रूप से इसलिए कि इन सरकारों के पास पूँजी का अभाव रहता है।
4) एक देश की जनता को लोक ऋणों के माध्यम से विनियोग का अच्छा साधन मिल जाता है, क्योंकि सरकार को ऋण देना सुरक्षित रहता है।
5) लोक ऋणों की सहायता से भुगतान का प्रतिकूल सन्तुलन ठीक किया जा सकता है।
6) लोक ऋणों की सहायता से युद्धों की वित्तीय व्यवस्था भी की जाती है।

उपर्युक्त महत्व के साथ लोक ऋणों के कुछ दोष भी हैं, जैसे, इसका देश की भावी पीढ़ी पर भार पड़ता है। सरकार ऋण राशि का अपव्यय करती है एवं विदेशी सरकार द्वारा ऋण लेने वाले देश की अर्थव्यवस्था में अनुचित हस्तक्षेप किया जाता है, साथ ही ऋण देने वाले देश अनुचित राजनीतिक दबाव भी डालते हैं। किन्तु जहाँ तक

ऋणों के अपव्यय का प्रश्न है, सरकार यदि विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करे तो इसे टाला जा सकता हैं। विदेशी ऋणों द्वारा अनुचित दबाव की शर्तों पर ऋण नहीं लेना चाहिए, जो उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

1.8.1 आन्तरिक ऋण का महत्व एवं सम्भावना (Importance of Possibility of Internal Debts)

विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता की पूर्ति सार्वजनिक आय के नियमित स्रोतों से नहीं हो सकती, अतः विकास वित्त की दृष्टि से सरकार को लोगों से अधिकाधिक मात्रा में ऋण लेने पड़ते हैं। परन्तु आन्तरिक ऋण मनचाही मात्रा में नहीं प्राप्त किए जा सकते, क्योंकि ऋण सदैव बचतों में से दिया जाता है और इन देशों में लोगों की आय कम होने के कारण बचत की दर बहुत कम होती है। कुछ सीमा तक सरकार बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकती है, परन्तु इन देशों में मुद्रा एवं पूँजी बाजार कम विकसित होने के कारण यह स्रोत भी अधिक कारगर नहीं हो पाता। इस तरह, विकासशील देशों के आर्थिक विकास में आन्तरिक ऋणों के महत्व के बावजूद इसका क्षेत्र अत्यधिक सीमित बना रहता है।

1.8.2 बाह्य ऋण और विकासशील देशों का आर्थिक विकास (External Debts and Economic Development of Developing Countries)

आन्तरिक साधनों के अभाव में विकासशील देशों के सामने बाह्य के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता। यद्यपि विकास वित्त की व्यवस्था हेतु कुछ लोग अतिरिक्त करारोपण तथा हीनार्थ प्रबन्धन का सुझाव देते हैं, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये दोनों ही उपाय मुद्रा प्रसार के रूप में विकास लागत को और बढ़ा देते हैं। अतः विदेशी ऋण अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की एक अपरिहार्य शर्त है। विदेशी ऋण इन देशों में घरेलू बचत की दर तथा आवश्यक विनियोग की दर में पाए जाने वाले अन्तर को पूरा करके पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों के विदोहन, आधारभूत उद्योगों की स्थापना, तकनीकी ज्ञान, विशिष्ट पूंजीगत उपकरणों तथा आर्थिक संरचना के विकास की दृष्टि से भी विदेशी ऋणों का अपना एक विशेष महत्व है। संक्षेप में, विदेशी ऋण देश में उत्पादकता, आय तथा रोजगार को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास को सम्भव बनाते हैं।

1.8.3 विदेशी ऋणों के उपयोग की शर्तें एवं सीमाएँ (Limitations and Conditions of the Use of Foreign Debt)

इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक विकास के लिए विदेशी ऋण काफी उपयोगी होते हैं, परन्तु इसके साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विदेशी ऋणों का वास्तविक एवं मौद्रिक भार आन्तरिक ऋणों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, क्योंकि ये विदेशी भुगतान की आर्थिक सीमाएँ उत्पन्न कर देते हैं। एक तो विदेशी मुद्रा के परिवर्तन में कठिनाई होती है, दूसरे विदेशी ऋणों का शोधन करने का अर्थ यह होता है कि इससे राष्ट्रीय आय में कमी आती है तथा देश में स्वर्ण तथा विदेशी मुद्रा के स्रोतों को क्षति पहुँचती है। अतः आवश्यक है कि विदेशों से ऋण बहुत

सोच समझ कर प्राप्त किया जाय। विदेशी ऋणों का अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिसके लिए आवश्यक है कि

(1) विदेशी ऋण केवल उत्पादक कार्यों के लिए ही प्रयोग किया जाय।

(2) ऐसे ऋणों का उपयोग अधिकतर देश में प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए ही किया जाना चाहिए जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तथा भविष्य में मूलधन तथा ब्याज का भुगतान सम्भव हो सके।

(3) विदेशी ऋणों का विनियोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिससे भविष्य में भुगतान सन्तुलन अनुकूल बना रहे।

(4) विदेशी ऋणों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए देश में पर्याप्त पूँजी अवशोषण-क्षमता का होना भी आवश्यक है।

अन्य शब्दों में ऋण इतना लिया जाय कि ऋणी देश उसका पूरा-पूरा उपयोग करने की सामर्थ्य रखता हो।

इन देशों को उस समय तक विदेशी ऋण प्राप्त नहीं करना चाहिए जब तक कि उनके आन्तरिक साधन अपर्याप्त न हों और जब तक देश इन ऋणों का समुचित उपयोग करने की स्थिति में न हो। सामान्यतया विकासशील देशों में टेक्नोलाजी का अभाव, कुशल व प्रशिक्षित श्रमशक्ति की कमी, श्रम की गतिशीलता में कमी, अधूरी आर्थिक संरचना, मुद्रास्फीति तथा प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन जैसे घटक पूँजी सोखने की क्षमता को सीमित कर देते हैं, इसलिए ऐसे देशों को अपनी क्षमता के अनुसार ही ऋण लेना चाहिए नहीं तो ऋण भार इतना बढ़ जाएगा कि वह देश को दिवालिया बना देगा।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि क्योंकि विकासशील देशों का उद्देश्य आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करना ही नहीं वरन् आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करना भी है, अतः सरकार को ऋण, व्यय तथा ऋण के भुगतान के बीच समन्वय स्थापित करना चाहिए और विदेशी ऋणों को उसी समय प्राप्त करना चाहिए जब तक इसके बिना आर्थिक विकास सम्भव न हो।

1.9 लोक ऋण के प्रति दृष्टिकोण (Attitude towards Public Debt)

किसी देश की सरकार दो स्रोतों से आय प्राप्त करती है, जैसे कि - लोक राजस्व तथा लोक ऋण। लोक राजस्व से तात्पर्य सरकार की उन प्राप्तियों से है जिसके सम्बन्ध में सरकार का कोई नैतिक दायित्व नहीं होता है कि वह उसे उन लोगों को वापस करें, जिनसे वह ली गयी है। इसके विपरीत लोक ऋण के सम्बन्ध में सरकार का यह नैतिक दायित्व है कि वह मुद्रा उन लोगों को लौटा दे जिनसे ली गयी है। लोक ऋण के प्रति निम्न तीन दृष्टिकोण उल्लेखनीय हैं:

1. क्लासिकल विचारधारा (Classical Approach)
2. केन्सीय विचारधारा (Keynesian Approach)
3. केन्सोत्तर विचारधारा (Post Keynesian Approach)

1 क्लासिकल विचारधारा (Classical Approach)

इस विचारधारा के अन्तर्गत उन्नीसवीं सदी के अर्थशास्त्रियों तथा उनके नव-क्लासिकल उत्तराधिकारियों के दृष्टिकोण शामिल हैं। इसके अन्तर्गत लोक ऋण को बोझ समझा जाता था। इसलिये सामान्यतः क्लासिकल लेखक लोक ऋण के विरूद्ध थे। उनकी यह मान्यता थी कि व्यक्तिगत उपभोक्ता तथा व्यवसायिक फर्में साधनों का अधिक कुशल उपयोग करते हैं। पूर्ण रोजगार की स्थिति में सरकार जिन साधनों को उधार लेती है वे निजी क्षेत्र में अधिक उपयोगी कार्य में लगे रहते हैं। एडम स्मिथ ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया था। इसका यह अर्थ नहीं है कि क्लासिकल अर्थशास्त्री किसी भी प्रकार के सरकारी ऋण के विरूद्ध थे। वे न्यूनतम लोक व्यय का समर्थन करते थे। **एडम स्मिथ** की पुस्तक 'Wealth Of Nations' (1776) के प्रकाशन के नौ वर्ष पूर्व 1767 में **जेम्स स्टुअर्ट मिल (**James Stuart Mill) ने यह विचार व्यक्त किया कि लोक ऋण को अर्थव्यवस्था के साम्य चक्र (Balance Wheel) के रूप में कार्य करना चाहिए। अर्थव्यवस्था की स्थिति के अनुसार लोक ऋण का समायोजन किया जाना चाहिए। आर्थिक समृद्धि के काल में पूर्ण रोजगार के स्तर पर लोक ऋण का अर्थ होगा ब्याज दर में वृद्धि तथा वाणिज्य एवं व्यापार पर अनुचित प्रभाव। किन्तु, मन्दीकाल में जब व्यापार में ह्रास होता है, लोक ऋण द्वारा व्यय में वृद्धि करके आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार लोक ऋण सन्तुलन चक्र पूरा हो जाता है। वस्तुतः कर तथा ऋण के मध्य चयन करने में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री निम्न कारणों से कर के पक्ष में विचार करते थे:

1) घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण लोक ऋण में वृद्धि होती है। क्योंकि ऋण लोक व्यय की आसान वित्त व्यवस्था है, अतः ऐसी सम्भावना है कि सरकार फिजूलखर्च करे तथा दायित्वहीन हो जाये। फलतः लोक ऋण अर्थव्यवस्था पर निश्चित रूप से भार बन जाएगा।
2) लोक ऋण पर ब्याज के भुगतान तथा मूलधन की वापसी के लिए अतिरिक्त कर लगाने की जरूरत होगी। ऐसा कारारोपण कठिन हो सकता है क्योंकि सरकार की कर लगाने की क्षमता असीमित नहीं होती है।
3) घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रा की पूर्ति काफी बढ़ सकती है तथा मुद्रा-स्फीति का सृजन हो सकता है।

परन्तु, उपर्युक्त के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि क्लासिकल अर्थशास्त्री सभी प्रकार के लोक ऋण के विरोधी थे। वे उत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेने के पक्ष में थे। कारण यह है कि ऐसी पूंजी परियोजनाओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं को बेचकर जो रकम प्राप्त की जाएगी उससे मूलधन तथा ब्याज का भुगतान किया जा सकता है। अतः अतिरिक्त कर लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इन्हें स्वयं परिसमापन परियोजनाएं (Capital Projects) कहा जाता है।

2 केन्सीयन विचारधारा (Keynesian Approach)

सामान्यतः प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा लोक ऋण के विरूद्ध विचार व्यक्त करने वाले समर्थकों की तुलना में लोक ऋण के पक्ष में समर्थकों की संख्या अपवाद स्वरूप मानी जाती है, जिससे ऐसे छुट-पुट विचार क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की प्रमुख विचारधारा के समुद्र में डूब गए। केन्स ने इस विचारधारा को पलट दिया। उसने यह स्वीकार नहीं किया कि हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था स्वयं ही पूर्ण रोजगार के साम्य पर पहुँच जाती है। उन्होंने बताया कि बड़े पैमाने पर अनैच्छिक बेरोजगारी के विद्यमान

रहने पर भी अर्थव्यवस्था सन्तुलन में हो सकती है। यही केन्स की अर्ध रोजगार साम्य (Underemployment Equilibrium) की धारणा है। इस स्थिति में सरकार द्वारा यदि कोई कदम नही उठाया गया तो साधन काफी लम्बे समय तक निजी क्षेत्र में बेकार पड़े रह सकते हैं। अतः यदि लोक ऋण द्वारा सरकार अपने व्यय में वृद्धि करके बेकार पड़े मजदूरों तथा अन्य साधनों को रोजगार देती है, तो इस क्रिया से निजी क्षेत्र को साधनों से वंचित नहीं किया जाता है। इसके विपरीत, स्थिति यह होगी कि समग्र उत्पत्ति एवं आय में वृद्धि होगी। अतः यह कहना सही नहीं है कि लोक ऋण हमेशा अनुत्पादक, स्फीतिजनक तथा भार होता है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि लोक ऋण के बोझ से सम्बन्धित सामान्य क्लासिकल धारणा अतिवादी है जो इस तथ्य पर आधारित है कि सभी राजकीय व्यय अनुत्पादक होते हैं तथा सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत ऋण में भेद नहीं होता है। पर इनका दृष्टिकोण ठीक नहीं क्योंकि सभी राजकीय व्यय अनुत्पादक नहीं होते तथा सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत ऋणों में भेद होता है। व्यक्तिगत ऋण के सम्बन्ध में ऋणी अपने से सर्वथा भिन्न ऋणदाता को ब्याज तथा मूलधन का भुगतान करता है जबकि लोक ऋण के सम्बन्ध से कर देने वाला सरकारी प्रतिभूतियों के धारक अर्थात् जिसने सरकार का ऋण दिया था, को ब्याज तथा मूलधन देता है। पर क्योंकि कर देने वाले तथा प्रतिभूतियों को धारण करने वाले दोनों एक ही समुदाय के हैं अतः समष्टि स्तर पर लोक ऋण किसी भी प्रकार का बोझ नहीं उत्पन्न करता जबकि व्यक्तिगत ऋण के कारण व्यष्टि पर ऋणी के ऊपर बोझ उत्पन्न होता है।

3 केन्सोत्तर विचारधारा (Post Keynesian Approach)

1930 की महान मन्दी तथा कीन्सियन क्रान्ति ने आधुनिक सिद्धान्त के लिए रास्ता तैयार किया। वे सभी अर्थशास्त्री जो कीन्स का अनुसरण करते हैं वे लोक ऋण के आय सृजन प्रभाव को स्वीकार करते हैं तथा यह अस्वीकार करते हैं कि लोक ऋण अर्थव्यवस्था पर बोझ होगा। **हैरॉड जी. मोल्टन** यह मानते हैं कि लोक ऋण राष्ट्रीय सम्पत्ति है दायित्व नहीं और देश की आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक है। लर्नर जैसे अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि आन्तरिक लोक ऋण एक जेब से दूसरी जेब अथवा दाहिने हाथ से बायें हाथ का हस्तान्तरण मात्र है, इसलिए यह बोझ नहीं है। ये अर्थशास्त्री अपना मत एक परिवार के तर्क के आधार पर देते हैं। जिस प्रकार से परिवार की सम्पत्ति परिवार के सदस्यों में ही ऋण के आदान-प्रदान के द्वारा कम नहीं होती उसी प्रकार पूरी अर्थव्यवस्था को यदि परिवार के रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो चूँकि अर्थव्यवस्था में एक वर्ग या व्यक्ति लेनदार है तथा दूसरा देनदार इसलिए लोक ऋण न तो किसी वर्ग को गरीब बनायेगा और न किसी को धनी।

लोक ऋण के विशाल आकार को देखते हुए अर्थशास्त्रियों ने इसके विषय में फिर से सोचना शुरू किया। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप केन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने लोक ऋण की पारम्परिक धारणा के अन्तर्गत केन्सीय अर्थशास्त्र द्वारा लाए गए अधिकांश सुधारों को स्वीकार किया, लेकिन लोक ऋण के प्रबन्ध तथा लोक ऋण एवं मुद्रा पूर्ति के अन्तर-सम्बन्धों पर विशेष ध्यान देने की बात कही। इनका मानना है कि- आन्तरिक ऋण के कारण कर तथा ऋण सेवा के रूप में हस्तान्तरण भुगतान कई क्रमों में होते हैं तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के ख्याल से वे एक-दूसरे को निरस्त कर देते हैं। किन्तु, लोक ऋण के विशाल आकार को बिना किसी महत्व का बताकर टाला नहीं जा सकता।

अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह विचार व्यक्त किया कि आज का ऋण कल के लिए भार बन जायेगा। यदि हम स्वीकार भी कर लें कि लेनदार तथा देनदार दोनों ही एक बड़े परिवार के सदस्य हैं, तो भी आन्तरिक ऋण बोझ उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि इसके कारण एक वर्ग से दूसरे वर्ग को आय का हस्तान्तरण होगा, जिससे आय का वितरण प्रभावित होगा। यहाँ यह आवश्यक नहीं कि जो ब्याज पाने वाला हो वही कर देने वाला भी हो। कर का ढाँचा इतना प्रगतिशील हो ही नहीं सकता है कि कर की पूरी राशि ब्याज प्राप्तकर्ता से ही प्राप्त कर ली जाय। **रैचफोर्ड** तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि ब्याज प्राप्त करने के ही अनुपात में कर दे दिया जाय तो भी आन्तरिक ऋण के कारण बोझ उत्पन्न होगा क्योंकि कर लगाना तथा उसे इकट्ठा करना घर्षण तथा असन्तुलन उत्पन्न करता है। डाल्टन भी इसे स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार ***''लोक ऋण से कहाँ तक वास्तविक बोझ उत्पन्न होगा या वास्तविक लाभ उत्पन्न होगा, यह करदाता से सार्वजनिक लेनदार के हाथ में आय के हस्तान्तरण पर निर्भर करेगा। प्रारम्भिक रूप में यह बोझ या लाभ उत्पन्न करेगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि इसके कारण आय की असमानता में कहाँ तक वृद्धि या कमी होती है।''*** यही नही विशाल मात्रा में लिया गया आन्तरिक ऋण कई समस्याओं को जन्म देता है। यह मौद्रिक नीति को जटिल बनाने के साथ-साथ प्रबन्ध की कठिनाइयों को भी जन्म देता है।

1.10 लोक ऋण के प्रकार या वर्गीकरण (Types and Classification of Public Debt)

लोक ऋण का वर्गीकरण निम्न आठ आधारों पर किया जा सकता है:

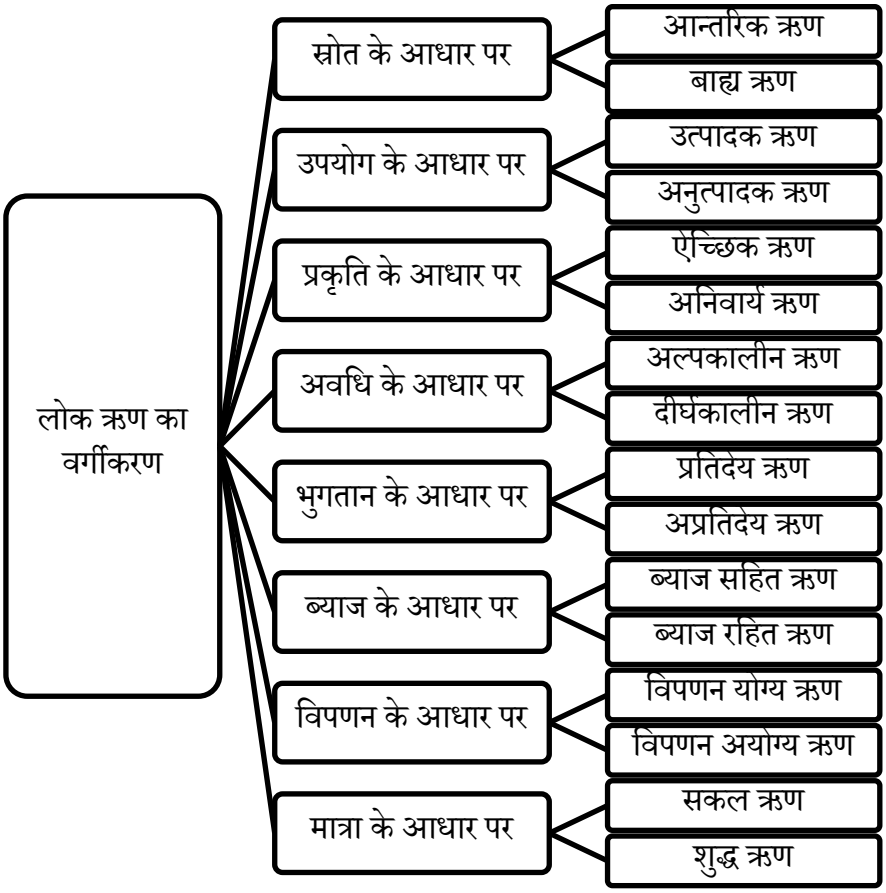

1 स्रोत के आधार पर ऋण – ऋण कहाँ से प्राप्त किया गया है, के आधार पर लोक ऋण दो प्रकार के हो सकते हैं:

1. **आन्तरिक ऋण (Internal Debt)** -जब सरकार अपने देश में नागरिकों को प्रतिभूतियाँ बेचकर उनसे ऋण प्राप्त करती है तो इसे आन्तरिक ऋण कहते हैं। **प्रो. डाल्टन** के अनुसार, ***''एक ऋण आन्तरिक है यदि वह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र में रहते हैं, जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।''***
2. **बाह्य ऋण (External Debt)** -यदि लोक ऋण विदेशों में रहने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं या सरकारों से प्राप्त किए जाते हैं तो उन्हें बाह्य ऋण कहते हैं। **डाल्टन** के अनुसार, ***''ऋण उस समय बाह्य होगा, यदि वह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है, जो उस क्षेत्र से बाहर रहते हैं, जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता द्वारा नियन्त्रित नहीं किया जाता है।''*** उदाहरणतः, भारत द्वारा अमेरिका, जापान, इंगलैण्ड, इत्यादि देशों से एवं विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, आदि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से जो ऋण लिया जाता है, वह बाह्य अथवा विदेशी ऋण है।

1 आन्तरिक और बाह्य ऋण में अन्तर - इन दोनों के अन्तर को निम्न तरह से स्पष्ट किया जा सकता है

अ. आन्तरिक ऋण अपने देश की मुद्रा में लिया जाता है जबकि बाह्य ऋण विदेशी मुद्रा में प्राप्त होता है।

ब. आन्तरिक ऋणों की अदायगी अपने देश की मुद्रा में ही की जाती है जबकि बाह्य ऋणों की अदायगी विदेशी मुद्रा में की जाती है।

स. आन्तरिक ऋण में मुद्रा का हस्तान्तरण एक ही देश में नागरिकों से सरकार को होता है, जबकि बाह्य ऋण में यह हस्तान्तरण एक देश से दूसरे देश को होता है।

द. आन्तरिक ऋण ऐच्छिक या अनिवार्य हो सकते हैं, जबकि बाह्य ऋण केवल ऐच्छिक होते हैं अर्थात् विदेशी सरकारों की इच्छा के विरूद्ध ऋण प्राप्त नहीं किया जा सकता।

य. सरकार आन्तरिक ऋणों को प्राथमिकता देती है। किन्तु जब इनसे सरकार की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तो बाह्य ऋण लिए जाते हैं।

2 आन्तरिक ऋणों का भार: जब सरकार देश के नागरिकों से ही ऋण लेती हैं तो इसमें लोगों के पास से क्रय-शक्ति का हस्तान्तरण सरकार को होता है अर्थात् साधनों का पुनर्वितरण होता है। आन्तरिक ऋणों से देश का धन देश के भीतर ही रहता है। इस प्रकार आन्तरिक ऋणों से देश के भीतर धन का पुनर्वितरण होता है, इसलिए इन ऋणों का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं पड़ता है। जहाँ तक वास्तविक भार का प्रश्न है वह इस बात पर निर्भर करता है कि ऋणों का उपयोग कैसे किया जा रहा है और उन्हें कहाँ से प्राप्त किया जा रहा है। यदि इनके प्रयोग से उत्पादकता में वृद्धि होती है एवं वितरण में समानता स्थापित होती है तो इन ऋणों का भार नगण्य होता है, किन्तु यदि ऋणों को अनुत्पादक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है तथा इनके भुगतान के लिए निर्धन व्यक्तियों

पर कर लगाया जाता है तो इससे वितरण में असमानता बढ़ती है और लोगों पर इसका भार पड़ता है।

3 बाह्य ऋणों का भार: आन्तरिक ऋण-भार की तरह बाह्य ऋण भार भी देश के नागरिकों को वहन करना पड़ता है। जब सरकार बाह्य ऋणों की वापसी करती है तो मूलधन और ब्याज की राशि देश के नागरिकों पर कर लगाकर वसूल की जाती है। इससे जो हानि देश के लोगों को होती है, वही इन ऋणों का प्रत्यक्ष वास्तविक भार है। यदि इन ऋणों के प्रयोग से उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा देश की राष्ट्रीय आय बढ़ती है जिससे ऋण की अदायगी की जा सकती है तो देश के नागरिकों पर इन ऋणों का भार भी बहुत कम पड़ता है। यदि ऐसे ऋणों को चुकाने के लिए अमीर लोगों पर कर लगाया जाता है तो वास्तविक कर-भार कम होगा। इसके विपरीत, यदि निर्धनों से कर वसूल करके ऋण व ब्याज का भुगतान किया जाता है तो वास्तविक कर भार अधिक होगा। कुछ लोगों का कहना है कि बाह्य ऋणों का वास्तविक भार बुरा नहीं है, क्योंकि बाह्य ऋणों की सहायता से बड़े पैमाने पर देश में आर्थिक विकास होता है, जिससे देश में उत्पादन व रोजगार में वृद्धि होती है। क्योंकि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, इसलिए लोगों की कर देय-क्षमता भी बढ़ती है। फलतः सरकार नागरिकों को मिलने वाले लाभ में से ही थोड़ी-थोड़ी राशि संग्रह करके ऋणों का भुगतान कर सकती है, ऐसी दशा में वास्तविक भार अधिक नहीं होता। यदि बाह्य ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए होता है तो यह कहा जायेगा कि इससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी। लोगों की कर देय-क्षमता भी नहीं बढ़ेगी और ऐसी दशा में वास्तविक भार बढ़ेगा।

4 बाह्य ऋणों के पक्ष में तर्क बाह्य ऋणों के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1) युद्ध व्यय हेतु पर्याप्त संसाधन एकत्रित करने का बाह्य ऋण एक प्रमुख स्रोत है।
2) आर्थिक विकास की अनेक दीर्घकालीन परियोजनाओं के वित्त पोषण के लिए बाह्य ऋण संसाधनों की प्राप्ति के प्रमुख स्रोत हैं। बाह्य ऋणों का उत्पादकीय कार्यों में प्रयोग करके देश में पूंजी निर्माण की दर को आसानी से बढ़ाया जा सकता है।
3) दैवी विपदाओं एवं संकटकालीन परिस्थितियों में बाह्य ऋण आय का एक प्रमुख स्रोत है। बाह्य ऋणों की सहायता से संकटकालीन समस्याओं का निराकरण आसान हो जाता है।
4) अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए बाह्य ऋण आवश्यक होते हैं।
5) बाह्य ऋणों द्वारा विदेशी विनिमय के संकट को दूर करने में सहायता मिलती है।

5 बाह्य ऋणों के विपक्ष में तर्क

1) बाह्य ऋणों पर दिया जाने वाला ब्याज देश के सामने विदेशी विनिमय की प्रमुख समस्या उत्पन्न करता है। बाह्य ऋणों की अदायगी भी विदेशी मुद्रा में की जाती है जिससे विदेशी विनिमय संकट उत्पन्न होता है।
2) बाह्य ऋण ऋणभार को संचयी क्रम में बढ़ाता है, जिससे देश में मितव्ययिता के सिद्धान्त की उपेक्षा होती है।

3) बाह्य ऋणों की अधिकता दासता का मार्ग प्रशस्त करती है - ऋण देने वाला देश अथवा विदेशी संस्थायें देश की नीतियों में हस्तक्षेप करती हैं।

2 उपयोग के आधार पर ऋण- ऋणों के उपयोग के आधार पर लोक ऋण को उत्पादक तथा अनुत्पादक ऋणों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उत्पादक ऋण (Productive Loans) - उत्पादक ऋण वे होते हैं जिनका प्रयोग ऐसे उत्पादक कार्यों में किया जाता है, जिनसे इतनी आय प्राप्त हो सके कि उससे ऋण के मूलधन और ब्याज राशि का भुगतान किया जा सके। इन्हें सक्रिय ऋण भी कहते हैं, क्योंकि उत्पादक ऋणों से देश में धन व उत्पादन की मात्रा, राष्ट्रीय लाभांश, जनता की कर दान क्षमता तथा सरकार की आय में वृद्धि होती है। **डाल्टन** के अनुसार, ***''उत्पादक ऋण वह ऋण है जिसकी पूर्ति पूरी तरह समान मूल्य की सम्पत्ति के स्वामित्व से हो जाय।''*** इसी तरह का विचार **प्रो0 शिराज** तथा **प्रो0 मेहता** भी दिये हैं। **फिण्डले शिराज** के अनुसार, ***''उत्पादक ऋण वे ऋण हैं जिनके फलस्वरूप बराबर या अधिक मूल्य की सम्पत्ति का निर्माण होता है और इसी सम्पत्ति की आय से ब्याज का भुगतान किया जाता है''***। **प्रो. जे. के. मेहता** के शब्दों में, ***''उत्पादक ऋण वे हैं जिनसे प्राप्त राशि को ऐसे व्यवसायों में लगाया जाता है जिनकी आय से मूलधन और ब्याज की राशि को ऋण की परिपक्वता के बाद लौटाया जा सके। उपर्युक्त दृष्टि से उद्योगों, सिंचाई, परिवहन, आदि के हेतु लिये गया ऋण उत्पादक माना जाता है।***

2. अनुत्पादक ऋण (Unproductive loans) - उन ऋणों को अनुत्पादक कहते हैं जिनके प्रयोग से सरकार को कोई आय प्राप्त नहीं होती अथवा बराबर सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता। इन्हें निष्क्रिय ऋण भी कहा जाता है। **प्रो. डाल्टन** के अनुसार, ***''वह ऋण अनुत्पादक होता है, जिसके पीछे कोई वर्तमान सम्पत्ति नहीं होती।''*** इसे दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि युद्ध, बाढ़ अथवा अकाल इत्यादि पर व्यय के लिए जो ऋण लिया जाता है वह अनुत्पादक होता है।

यद्यपि कि उपर्युक्त वर्गीकरण सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भले ही सही हैं पर यदि सरकार ऋणों का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करती है तो किसी भी ऋण को अनुत्पादक नहीं कहा जा सकता। उदाहरणतः यदि युद्ध पर व्यय किया जाता है तो इससे देश की स्वतन्त्रता की रक्षा होती है और लोगों में कार्यक्षमता की वृद्धि होती है तथा देश में शान्ति और व्यवस्था का निर्माण होता है जो अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायक होता है।

3 प्राप्ति की प्रकृति के आधार पर ऋण- इस आधार पर लोक ऋण को दो भागों में बांटा जाता है –

1. ऐच्छिक ऋण (Voluntary Debt) - ऐच्छिक ऋण से तात्पर्य ऐसे ऋण से है जिसे सरकार ऋण देने वालों की इच्छा से लेती है अर्थात् उन्हें ऋण देने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। बाह्य ऋण ऐच्छिक प्रकृति के होते हैं। सरकार देश के लोगों से भी ऐच्छिक ऋण लेती है। सरकार ऋण की अवधि, राशि, ब्याज आदि का विज्ञापन कर देती है तथा जिन व्यक्तियों की इच्छा होती है, वे ऋणपत्र खरीदते हैं।

2. अनिवार्य ऋण (Compulsory Debt) - जब सरकार देश के नागरिकों को ऋण देने के लिए बाध्य करती है तो ऐसे ऋणों को अनिवार्य ऋण कहते हैं। आन्तरिक ऋण ही अनिवार्य हो सकते हैं, बाह्य ऋण

नहीं क्योंकि सरकार विदेशी नागरिकों या सरकारों को ऋण देने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए भारत में अनिवार्य जमा योजना अनिवार्य ऋण का उदाहरण है। **डाल्टन** के अनुसार, ***''आधुनिक राजस्व में अनिवार्य ऋण का महत्व बहुत कम रह गया है।''***

4 अवधि के आधार पर ऋण - ऋण की अवधि के आधार पर भी लोक ऋण को दो भागों में बांटा जाता है।

1. अल्पकालीन या निश्चित कालीन अथवा अनिधिक ऋण (Short Term or Unfunded Debt) - जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है कि ये ऋण अल्प अवधि के होते हैं। सामान्य रूप से इनकी अवधि एक वर्ष की होती है। इन्हें सरकारें किसी विशेष उद्देश्य से नहीं वरन् अपने नियमित खर्च चलाने के लिए लेती हैं। सरकारें इन ऋणों की अदायगी के लिए किसी कोष की व्यवस्था नहीं करतीं, अतः इन्हें अनिधिक ऋण भी कहते हैं। राजकोषीय पत्र (Treasury Bills) के आधार पर लिये जाने वाले ऋण अल्पकालीन होते हैं ये 6 माह के भीतर शोधनीय होते हैं। अतः इन्हें अल्पकालीन ऋण हैं।

2. दीर्घकालीन या अनिश्चित कालीन अथवा निधिक ऋण (Long Term or Funded Debt) - ये ऋण लम्बी अवधि के लिए सरकार द्वारा लिए जाते हैं। इन ऋणों को लेते समय इनकी अदायगी, अवधि तथा अन्य शर्तों को निश्चित कर लिया जाता है। इनकी अदायगी के लिए अलग एक कोष की स्थापना की जाती है अतः इन्हें निधिक या स्थायी ऋण भी कहते हैं। क्योंकि सरकार इस कोष में प्रतिवर्ष एक निश्चित रकम जमा करती रहती है इसी कारण इसे कोषित ऋण भी कहते हैं। इस प्रकार का ऋण प्रायः सरकार नहरें, सड़कें, रेल तथा अन्य उत्पादक एवं स्थायी निर्माण कार्यों के लिए लेती हैं। इसके विपरीत अल्पकालीन ऋणों के लिए सरकार किसी प्रकार के कोष का निर्माण नहीं करती और इन ऋणों का भुगतान अपनी चालू आय में से नए लिए गए ऋणों से करती हैं।

5 भुगतान के आधार पर ऋण- भुगतान के आधार पर ऋणों का भुगतान निम्न दो प्रकार से किया जा सकता है –

1. प्रतिदेय अथवा शोध्य ऋण (Redeemable Debt) प्रतिदेय ऋण वे ऋण होते हैं जिनका एक निश्चित अवधि के बाद भुगतान का चयन सरकार द्वारा किया जाता है। **प्रो. जे.के. मेहता** के अनुसार, ***''प्रतिदेय ऋण वे ऋण हैं, जिसको सरकार द्वारा एक भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन दिया जाता है।''***

शोध्य ऋणों के लाभ:

1. संकट काल में अल्पकालीन आय स्रोतों को जब सरकार कर द्वारा पूरा नहीं कर पाती तो वह शोध्य ऋणों की सहायता लेती है क्योंकि ये ऋण अल्पकालीन ऋण के समान होते हैं।
2. शोध्य ऋणों में ब्याज की दर कम रहने की सम्भावना होती है, जिसके कारण इन ऋणों पर दिए जाने वाले ब्याज का भुगतान आसान हो जाता है।
3. शोध्य ऋण में ऋण लेने और देने की साख बनी रहती है, जिसके कारण ऋण सुगमता से सहज रूप में मिल जाते हैं।

शोध्य ऋणों की हानियाँ:

1. शोध्य ऋण देश के पूंजीपतियों एवं धनी व्यापारियों से सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप लोगों की व्यक्तिगत पूँजी निजी विनियोग से निकलकर सरकार के हाथो में चली जाती है जिसका सरकार उत्पादकीय एवं अनुत्पादकीय दोनों ही प्रकार की क्रियाओं में प्रयोग करती है। निजी पूँजी के इस स्थानान्तरण का उत्पादन एवं विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
2. शोध्य ऋणों की प्राप्ति सहज होने के कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति उत्पन्न होने का भय सदैव बना रहता है।
3. शोध्य ऋणों की अधिकता सरकार को ऋणों के दुष्चक्र में फंसा देती है और ऐसे ऋण दीर्घकालीन बन जाते हैं क्योंकि सरकार एक ऋण का भुगतान करने के लिए क्रमशः दूसरा ऋण लेती चली जाती है तथा अर्थव्यवस्था में ऋणों का बोझ कभी समाप्त नहीं होता।
4. शोध्य ऋणों को लेने की बारम्बारता अधिक होती है। सरकार द्वारा बार-बार ऋण लिए जाने के कारण सरकार की साख गिर जाती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव विशेष रूप से बाहरी ऋणों पर पड़ता है।

2. अप्रतिदेय अथवा अशोध्य ऋण (Irredeemable Debt) - अप्रतिदेय ऋण वे ऋण होते हैं जिनके मूलधन के भुगतान की कोई तिथि नहीं होती किन्तु ब्याज के भुगतान की गारण्टी सरकार द्वारा दी जाती है। इस ऋण को सार्वकालिक (Perpetual) ऋण अथवा बेमियादी ऋण भी कहते हैं।

दूसरे शब्दों में, शोध्य ऋण वे होते हैं, जिनका भुगतान सरकार को ब्याज सहित एक निश्चित अवधि तक कर देना पड़ता है। इसके विपरीत अशोध्य ऋणों के सम्बन्ध में ऐसा कोई वादा सरकार नहीं करती। इस प्रकार अशोध्य ऋणों में सरकार केवल ब्याज का भुगतान करती है और मूलधन के भुगतान की चिन्ता नहीं करती है।

अशोध्य ऋणों के लाभ:

1. अशोध्य ऋणों का ऋण भार कम होता है क्योंकि इस भार को भविष्य के लिए टाला जा सकता है।
2. देश में दीर्घकालीन आर्थिक संकट उत्पन्न होने पर शोध्य ऋणों की तुलना में अशोध्य ऋण अधिक सहायक होते हैं क्योंकि अशोध्य ऋणों के भुगतान की अवधि बहुत लम्बी होती है और इस अवधि के दौरान देश अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकता है।
3. अशोध्य ऋणों के भुगतान की समस्या सरकार के सामने ज्वलंत रूप में नहीं होती क्योंकि इन ऋणों की अदायगी की कोई विशेष तिथि नहीं होती और सरकार आसानी से इन ऋणों के ब्याज का भुगतान करती रहती है।
4. अशोध्य ऋण प्रायः दीर्घकालीन होते हैं, जिनका प्रयोग आर्थिक विकास की दीर्घकालीन परियोजनाओं में किया जाता है। दूसरे शब्दों में अशोध्य ऋण आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन एकत्रित करने में सक्षम हैं।

अशोध्य ऋणों से हानियाँ:

अशोध्य ऋणों में भुगतान की विशेष समस्या नहीं रहती जिससे फिजूलखर्ची को बढ़ावा मिलता है तथा मितव्ययिता के सिद्धान्त की उपेक्षा होती है।

अशोध्य ऋणों में व्यक्तियों का धन लम्बे समय तक सरकार के पास जमा रहता है, जिससे निजी क्षेत्र का विनियोग घट जाता है, जिसका पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अशोध्य ऋणों में ब्याज की दर ऊंची होती है जिसके कारण भुगतान का भार न केवल वर्तमान पीढ़ी पर पड़ता है बल्कि भावी पीढ़ी को भी इस भार को वहन करना पड़ता है।

शोध्य ऋण और अशोध्य ऋण में अंतर

1. शोध्य ऋण की दशा में मूलधन तथा ब्याज दोनों का भुगतान किया जाता है जबकि अशोध्य ऋण में केवल ब्याज का भुगतान करना पड़ता है।
2. अशोध्य ऋण उन व्यवस्थाओं हेतु लेना चाहिए जिनसे निरन्तर आय प्राप्त होती रहे, जबकि शोध्य ऋण किसी भी कार्य के लिए लिया जा सकता है।
3. शोध्य ऋण समय के दृष्टिकोण से अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन होते हैं, जबकि अशोध्य ऋण सदैव के लिए अर्थात् कालरहित होते हैं।
4. अशोध्य ऋणों का भार भावी पीढ़ी पर पड़ता है और शोध्य ऋण का भार केवल वर्तमान पीढ़ी पर।
5. अशोध्य ऋणों का प्रचलन आजकल नहीं है क्योंकि इनका भार नागरिकों पर सदैव पड़ता रहता है। जब तक ऋण राशि का भुगतान नहीं हो जाता तब तक सरकार नियमित रूप से ब्याज का भुगतान करती रहती है और सरकार कभी भी इस ऋण से मुक्त नहीं हो पाती है।

6 ब्याज के आधार पर ऋण: ब्याज के आधार पर भी लोक ऋण को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

1. **ब्याज सहित ऋण -** जिस ऋण की अदायगी में मूलधन के साथ ब्याज का भुगतान भी किया जाता है उसे ब्याज सहित ऋण कहते हैं। सामान्य रूप से ऋणों की यही प्रकृति होती है।
2. **ब्याज रहित ऋण -** जिस ऋण की अदायगी के समय केवल मूलधन की वापसी की जाती है तथा ब्याज का भुगतान नहीं किया जाता है ऐसे ऋण को ब्याज रहित ऋण कहते हैं। ऋण लेते समय ही यह निश्चित कर लिया जाता है कि इस ऋण पर ब्याज नहीं लिया जाएगा। कुछ विशेष परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं द्वारा इस प्रकार के ऋण दिए जाते हैं।

7 विपणन योग्य और विपणन अयोग्य ऋण (Marketable and Non-Marketable Debt) - विक्रय योग्य अथवा विपणन योग्य ऋण वे हैं, जिनमें सरकारी प्रतिभूतियों को स्वतन्त्रतापूर्वक खरीदा व बेचा जाता है। आजकल अधिकांश ऋण इसी श्रेणी के हैं। ऐसे ऋण जिन्हें उन सरकारी प्रतिभूतियों के आधार पर प्राप्त किया गया हो, जिन्हें खुले बाजार में बेचा जा सकता है, जैसे - डाकखाने के बचत पत्र। परन्तु कुछ ऋण विपणन योग्य नहीं होते।

8 सकल ऋण एवं शुद्ध ऋण (Gross and net Debt) - किसी समय विशेष में सरकार के जितने ऋण होते हैं, उन सबके योग को सकल ऋण कहा जाता है। यदि सरकार ऋणों का भुगतान करने के लिए कोई विशेष कोष एकत्र करती है तो उस कोष को कुल ऋण राशि में से निकाल कर जो कुछ शेष बचत है वह शुद्ध ऋण कहलाता है।

1.11 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. निम्न पर टिप्पणी लिखें -

अ. लोक ऋण से अभिप्राय।

ब. ऋण और कर में भेद।

स. लोक ऋण के प्रमुख उद्देश्य।

द. निजी ऋण तथा लोक ऋण में भेद।

य. आन्तरिक एवं बाह्य ऋण मे अन्तर।

र. शोध्य एवं अशोध्य ऋण

1.12 सारांश (Summary)

आप देख चुके हैं कि लोक ऋण से सम्बन्धित इस इकाई में लोक ऋण के अर्थशास्त्र एवं वर्गीकरण को समझाया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तावना, उद्देश्य, लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति, व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक ऋणों में अन्तर, लोक ऋण बनाम कराधान, लोक ऋण में वृद्धि के कारण, लोक ऋण का औचित्य, विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व, लोक ऋण के प्रति दृष्टिकोण के अन्तर्गत क्लासिकल विचारधारा, केन्सीयन विचारधारा तथा केन्सोत्तर विचारधारा के अध्ययन के साथ लोक ऋण का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण दिखाया गया है। इस तरह इस इकाई शीर्षक के अन्तर्गत लोक ऋण से सम्बन्धित प्राथमिक बातों को स्पष्ट किया गया है जिससे लोक ऋण का अर्थ समझने के साथ-साथ लोक ऋण के विचारधारा के इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान होता है।

लोक ऋण के वर्गीकरण को अनेक आधारों पर प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत आन्तरिक एवं बाह्य ऋण, उत्पादक एवं अनुत्पादक ऋण, ऐच्छिक एवं अनिवार्य ऋण, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण, शोध्य तथा अशोध्य ऋण, ब्याज सहित तथा ब्याज रहित ऋण, विपणन योग्य एवं अयोग्य ऋण तथा सकल एवं शुद्ध ऋणों को समझाया गया है। आवश्यकतानुसार ऋणों के वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले शीर्षकों के बीच अन्तरों को दिखाये जाने के साथ-साथ उनके महत्व को भी समझाया गया है। संक्षेप में, आप कह सकते हैं कि इस इकाई शीर्षक के अध्ययन से लोक ऋण से सम्बन्धित प्राथमिक जानकारी प्राप्त होती है, जिसके द्वारा अगले इकाईयों लोक ऋण के प्रभाव एवं भार तथा लोक ऋण भुगतान की विधियों एवं प्रबन्धन को समझने में सुगमता होगी।

1.13 शब्दावली (Glossary)

- व्यय का आधिक्य Excess of spending
- संचयी आधिक्य Comulative Excess
- एक खास बिन्दु At a point of time
- प्रवाह चर Flow Variable
- असाधारण वित्त Extra Ordinary finance

- आय सृजन Revenue Generator
- आन्तरिक ऋणों का भार Burden of internal debt
- बाह्य ऋणों का भार Burden of internal debt
- ब्याज रहित ऋण Non Interest bearing debt
- ब्याज सहित ऋण Burden of internal debt

1.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers forPractice Questions)

1.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) ***Public Finance—Theory and Practice***, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) ***Lectures on Public Economics***, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) ***Handbooks of Public Economics***, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
- Buchanan, J.M. (1970) ***The Public Finances***, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) ***Public Finance and Fiscal Policy***, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) ***Principles of Public Finance***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
- Goode, R. (1986) ***Government Finance in Developing Countries***, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) ***Public Finance***, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) ***Modern Public Economics***, Routledge, London
- Mcnutt,P. (2002) ***The Economics of Public Choice***, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) ***Modern Public Finance***, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) ***Public Choice***, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) ***The Theory of Public Finance***, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo

- Sury, M.M. (2010) ***Finance Commissions and Fiscal Federalism in India***, New Century Publications, New Delhi

1.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

1.17 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लोक ऋण क्या होता है? व्यक्तिगत तथा लोक ऋण में भेद बताइये।
2. लोक ऋण की परिभाषा दीजिए एवं उसके उद्देश्य और महत्व बताइए।
3. लोक ऋण के महत्व व आवश्यकता की विवेचना कीजिए। कर की तुलना में ऋण की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
4. लोक ऋण क्या है? इसके विभिन्न रूपों की व्याख्या कीजिए।
5. लोक ऋण क्या होता है? व्यक्तिगत तथा लोक ऋण का भेद बताइए। लोक ऋण के उद्देश्यों का बताइये।
6. लोक ऋण का वर्गीकरण कीजिए और बताइए कि आर्थिक विकास हेतु आन्तरिक ऋण या बाह्य ऋण में से किसे प्राथमिकता दी जाए।

इकाई - 2 लोक ऋण के प्रभाव एवं भार

(Effects and Burden of Public Debts)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 लोक ऋण के प्रभाव

- **2.3.1 उत्पादन पर प्रभाव**
- **2.3.2 उपभोग पर प्रभाव**
- **2.3.3 वितरण पर प्रभाव**
- **2.3.4 विनियोग पर प्रभाव**
- **2.3.5 व्यापार क्रिया और रोजगार पर प्रभाव**

2.4 लोक ऋण भार की अवधारणा

2.5 लोक ऋणों के भारों के प्रकार

- **2.5.1 आन्तरिक ऋण का भार**
- **2.5.2 बाह्य ऋण का भार**
- **2.5.3 लोक ऋण भार सम्बन्धी मौजूदा धारणा**

2.6 लोक ऋण के भार का हस्तान्तरण

- **2.6.1 लोक ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण**
- **2.6.2 लोक ऋण के भार का हस्तान्तरण एवं आर्थिक विकास**
- **2.6.3 विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व**

2.7 लोक ऋण की सह्यता तथा इष्टतम लोक ऋण

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले इकाई में आप लोक ऋण से तात्पर्य एवं लोक ऋण के प्रकारों का अध्ययन कर चुके हैं। जिसके अन्तर्गत लोक ऋण से सम्बन्धित सभी प्राथमिक बातें- लोक ऋण से तात्पर्य, लोक ऋण के उद्देश्य, लोक ऋण एवं कर, लोक ऋण की उपयोगिता तथा विभिन्न आधारों पर लोक ऋण के वर्गीकरण को समझाया गया है।

इस इकाई में लोक ऋण के प्रभाव एवं भार का अध्ययन किया जायेगा। इस इकाई के अन्तर्गत लोक ऋण के प्रभाव के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लोक ऋण का उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनियोग तथा व्यापार क्रिया एवं रोजगार पर प्रभाव स्पष्ट किया जायेगा। तत्पश्चात् लोक ऋण के भार की अवधारणा, आन्तरिक तथा बाह्य ऋण भार, राजा चेल्याह की मौजूदा अवधारणा के साथ-साथ लोक ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण बताया जायेगा। जिसमें रिकार्डो-पीगू प्रमेय, नव-क्लासिकल अवधारणा, BDK प्रमेय, बुकानन विश्लेषण तथा **प्रो. मसग्रेव** के विचारों को समझा जायेगा। साथ ही लोक ऋण के भार के हस्तान्तरण एवं आर्थिक विकास को स्पष्ट करते हुए विकासशील देशों में लोक ऋण के महत्व को समझा जायेगा। तत्पश्चात् लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) एवं इष्टतम लोक ऋण की व्याख्या को स्पष्ट किया जायेगा।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- ✓ लोक ऋण के प्रभाव एवं भार के अर्थ को समझने के साथ- साथ इनके बीच के अन्तर को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के विभिन्न प्रभावों के साथ साथ लोक ऋण की उपादेयता को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के आन्तरिक एवं बाह्य ऋण भार को समझते हुए इनके प्रभावों से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण एवं लोक ऋण तथा आर्थिक विकास के सम्बन्धों को समझ सकेंगे।
- ✓ विकासशील देशों में लोक ऋणों के महत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) तथा इष्टतम लोक ऋण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 लोक ऋण के प्रभाव (Effects of Public Debt)

करारोपण और सार्वजनिक व्यय के समान लोक ऋण के भी आर्थिक प्रभाव होते हैं क्योंकि इसमें भी क्रय-शक्ति का हस्तान्तरण होता है। उदाहरण के लिए, जब सरकार ऋण लेती है तो सरकारी प्रतिभूति खरीदने वाले के पास से सरकार को मुद्रा का हस्तान्तरण होता है और विपरीत स्थिति में सरकार यह मुद्रा जिन व्यक्तियों पर व्यय करती है, उनके पास मुद्रा का हस्तान्तरण होता है। इस प्रकार सार्वजनिक ऋणों के प्रभावों का क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि जब लोक ऋण प्राप्त किया जाता है तब उसके कुछ अलग प्रभाव पड़ते हैं और जब लोक ऋण की राशि को व्यय किया जाता है तब उसके अलग प्रभाव पड़ते हैं।

दूसरे शब्दों में, किसी देश का लोक ऋण उस देश की अर्थव्यवस्था को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। लोक ऋण न तो अपने में अच्छा है, न बुरा। जहाँ तक सार्वजनिक ऋणों के आर्थिक प्रभावों की मात्रा तथा

स्वभाव का प्रश्न है वह अनेक तथ्यों पर निर्भर करता है जैसे ऋण निर्गमन का उद्देश्य, ऋण लेने की शर्तें तथा दशायें, ऋण का ढ़ाँचा, ऋण के विभिन्न स्त्रोत, लोक ऋण नीति तथा देश की आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियाँ। ऋण प्राप्त करते समय लोक ऋण के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें सार्वजनिक आय और व्यय दोनों का ही सम्भिश्रण रहता है। अतः लोक ऋण देश की अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित करते हैं – पहला ऋण प्राप्त करते समय तथा दूसरा ऋण का उपयोग करते समय।

जब सरकार ऋण प्राप्त करती है तो उसका प्रभाव प्रायः करारोपण जैसा होता है और जब ऋण से प्राप्त राशि को व्यय करती है तो इसका प्रभाव सार्वजनिक व्यय के समान होता है। यदि हम लोक ऋण व्यवस्था के संचालन को एक समुचित क्रिया मान लें तो हमें लोक ऋण से होने वाले दोनों ही प्रकार को प्रभावों का अध्ययन करना होगा।

इसी तरह लोक ऋण से उत्पन्न आर्थिक प्रभावों की व्याख्या को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला ऐसे प्रभाव जो लोक ऋण की प्राप्तियों, निर्गमन तथा दूसरा प्राप्ति राशि के व्यय से सम्बन्धित हैं तथा ऐसे प्रभाव जो सार्वजनिक ऋणों के बने रहने से सम्बन्धित हैं। पहले प्रकार के प्रभाव को प्रक्रियात्मक या प्रारम्भिक प्रभाव (Processing or Preliminary Effects) तथा दूसरे प्रकार के प्रभाव को सम्पति प्रभाव (Asset effect) तथा हस्तान्तरण प्रभाव (Transfer effect) कहते हैं।

इस प्रकार प्रारम्भिक प्रभाव लोक ऋण के निर्गमन तथा उससे प्राप्त धन के व्यय से सम्बन्धित है। यह प्रभाव मुख्य रूप से ऋण के स्वभाव तथा उद्देश्य पर निर्भर करता है। लोक ऋण के प्रारम्भिक प्रभाव को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः आय प्रभाव (Revenue effect) तथा व्यय (Expenditure effect)। जब सरकार लोक ऋण के माध्यम से आय प्राप्त करती है तो इसके फलस्वरूप लोगों को अपन बजट परिवर्तित करना पड़ता है, यद्यपि इसके कारण प्रत्यक्ष रूप से उपभोग में कटौती नहीं होती क्योंकि सामान्यतया सार्वजनिक ऋणों में लोग संचित बचत से विनियोग करते हैं। पर इतना निश्चित है कि चाहे व्यक्तिगत उपभोग व्यय में कमी आये या नहीं पर जब लोक ऋण के द्वारा मुद्रा प्राप्त की जाती है तो सम्पूर्ण व्यय में कमी अवश्य आती है। यही लोक ऋण का आय प्रभाव है।

आय प्रभाव के साथ ही सार्वजनिक ऋणों से व्यय प्रभाव भी उत्पन्न होते हैं क्योंकि इसके फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती हैं जिससे सभी लोग लाभान्वित होते है। व्यय प्रभाव का स्वभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि लोक ऋण का क्या उपभोग किया जा रहा है। जहाँ तक आय प्रभाव तथा व्यय प्रभाव अर्थात् प्रारम्भिक प्रभाव का प्रश्न है लोक ऋण करारोपण से उत्पन्न होने वाले प्रभाव के लगभग समान हैं, पर करारोपण की तुलना में सार्वजनिक ऋणों की विविधता इस बात में निहित है कि जब एक बार लोक ऋण ले लिया जाता है तो जब तक इसका अन्तिम रूप से भुगतान नहीं कर लिया जाता है तब तक यह अर्थव्यवस्था में बना रहता है।

एच. सी. मर्फी के अनुसार, करारोपण की तरह लोक ऋण उसी वित्तीय वर्ष में नहीं समाप्त हो जाता जिसमें ऋण लिया जाता है। लेनदारों (जिन्होंने सरकार को ऋण दिया है) के हाथ में यह एक स्थायी सम्पत्ति हो जाती है। सम्पत्ति होने के कारण जो प्रभाव सृजित होता है उसे हम सम्पत्ति या धन प्रभाव कहेंगे। सार्वजनिक ऋणों के सम्बन्ध में सरकार का यह दायित्व है कि वह ऋण पर ब्याज तथा उसके मूलधन का भुगतान करे जिसके फलस्वरूप आय का हस्तान्तरण होता है। यह लोक ऋण का हस्तान्तरण प्रभाव है। इन सभी प्रभावों को ध्यान में

रखते हुए अब हम उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनियोग तथा व्यापार क्रिया एवं रोजगार पर लोक ऋणों के प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

2.3.1 उत्पादन पर प्रभाव (Effect on production)

लोक ऋण का उत्पादन पर निम्न प्रभाव पड़ता है:

1) **कार्य करने एवं बचत करने की योग्यता पर प्रभाव (Effect on ability to work and save)** लोक ऋण कार्य करने एवं बचत करने की योग्यता को दो प्रकार से प्रभावित करता है:

   (अ)यदि सरकार ऋणों से प्राप्त राशि को ऐसी योजनाओं पर व्यय करती है जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है तो इससे लोगों की कार्य करने एवं बचत करने की शक्ति में वृद्धि होती है। यदि ऋणों को गरीबों की आय बढ़ाने पर खर्च किया जाता है तो इससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। फलस्वरूप कार्य करने की शक्ति में वृद्धि होती है।

   (ब) लोक ऋण के प्रभाव को इस दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए कि मूलधन की अदायगी और ब्याज के भुगतान के लिए सरकार जो कर लगाती है, उसका क्या प्रभाव पड़ता है। यदि ऋण उत्पादक कार्यों पर खर्च किया जाता है तो कर लगाने की आवश्यकता ही नहीं है। पर यदि ब्याज का भुगतान करने के लिए कर लगाया जाता है अथवा सरकार ब्याज का भुगतान करने के लिए वह व्यय रोक देती है जिससे उत्पादन प्रोत्साहित होता तो इसका कार्य करने तथा बचत करने की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2) **कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर प्रभाव (Effect on Desire to Work and Save)** यदि समग्र रूप से देखा जाय तो सार्वजनिक ऋणों का कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सम्भव है कि लोग सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदना एक सुरक्षित विनियोग समझें तथा अधिक बचत करने को प्रोत्साहित हों। किन्तु मूलधन और ब्याज के भुगतान के लिए जो कर लगाए जाते हैं, उनका निश्चित ही कार्य करने तथा बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्योंकि लोगों को ब्याज के रूप में एक निश्चित आय प्राप्त होती है, अतः सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने वालों की कार्य करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3) **साधनों के स्थानान्तरण पर प्रभाव (Effect on transfer of resources)** लोक ऋण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव साधनों के स्थानान्तरण पर पड़ता है। जब सरकार ऋण लेती है तो निजी व्यक्तियों के पास से मुद्रा का हस्तान्तरण सरकार को होता है। यदि इस राशि को ऐसे उद्यमों पर व्यय किया जाता है जिससे उत्पादन बढ़ता है अथवा निजी व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित होते हैं तो ऐसे लोक ऋण को न्यायोचित कहा जा सकता है। किन्तु यदि चालू घाटे की पूर्ति अथवा शुद्ध व्यय के लिए ऋणों का प्रयोग किया जाता है तो ऐसे स्थानान्तरण से उत्पादन हतोत्साहित होता है।

संक्षेप में,लोक ऋण के कारण कहाँ तक उत्पादन या उत्पादन क्षमता प्रभावित होगी यह दो शक्तियों पर निर्भर करेगी-सम्पत्ति प्रभाव जो एक लगान भोगी वर्ग को जन्म देगा तथा दूसरा हस्तान्तरण प्रभाव जिसके कारण ब्याज तथा मूलधन के भुगतान के दायित्व को पूरा करने के लिए अधिक मात्रा में

कर लगाना होगा। **प्रो. काल्डोर** का यह मत है कि लोक ऋण के कारण कहाँ तक उत्पादन क्षमता प्रभावित होगी यह लोक ऋण की मात्रा तथा ब्याज सम्बन्धी दायित्व के ऊपर निर्भर नहीं करेगी बल्कि राष्ट्रीय आय के अनुपात में ब्याज के दायित्व के ऊपर निर्भर करेगी। यदि राष्ट्रीय आय की तुलना में ब्याज की मात्रा अधिक तेजी से बढ़ रही हो तो उत्पादन क्षमता में कमी आयेगी। **डोमर** भी अपने लोक ऋण के बोझ के सम्बन्ध में दिये गये दृष्टिकोण में यही प्रतिपादित करते हैं। इसके विपरीत यदि राष्ट्रीय आय के अनुपात में ब्याज दर में कमी हो रही है तो लोक ऋण से उत्पादन क्षमता तथा उत्पादन बढ़ेगा।

2.3.2 उपभोग पर प्रभाव (Effect on Consumption)

जब लोग सरकारी प्रतिभूतियाँ अपनी पिछली बचतों से क्रय करते हैं तो उनके वर्तमान उपभोग में कमी नहीं आती अर्थात् उनका वर्तमान उपभोग यथास्थिर रहता है। यदि लोग सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद अपनी वर्तमान आय में से करते हैं तो उनका उपभोग व कार्यक्षमता कम हो जाएगी। इसी प्रकार, सरकार द्वारा ऋणों को चुकाने की दृष्टि से किए गए करारोपण का भी उपभोग पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्योंकि कर लगने से लोगों की आय व उपभोग का स्तर कम हो जाता है। स्मरण रहे, समृद्धिकाल में चुकाए गए ऋणों का उत्पादन व उपभोग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इस काल में आय व कीमतें ऊँची होने के कारण ऋण का भार कम प्रतीत होता है।

दूसरे शब्दों में, हम अधिक स्पष्ट रूप में यह कह सकते है कि जहाँ तक अर्थव्यवस्था के उपभोग के ऊपर लोक ऋण के पड़ने वाले प्रभावों का प्रश्न है यह लोक ऋण के प्रारम्भिक प्रभाव, सम्पत्ति प्रभाव तथा हस्तान्तरण प्रभाव के संयुक्त प्रभाव के ऊपर निर्भर करेगा। लोक ऋण के कारण वर्तमान उपभोग शायद ही प्रभावित हो क्योंकि जब कभी सरकार जनता से ऋण लेती है तो यह ऐच्छिक होता है, जो चाहे उधार दे या नहीं दे। सामान्यतया लोग बचत में से उधार देते हैं, उपभोग में कटौती करके नहीं। उसी स्थिति में वर्तमान उपभोग में कमी आ सकती है, जब किसी आपातकालीन स्थिति में सरकार लोगों को ऋण देने के लिए बाध्य कर दे। लोक ऋण वर्तमान उपभोग को तो शायद ही प्रभावित करता हो पर भविष्य के उपभोग को अवश्य प्रभावित करता है। इस प्रकार जहाँ करारोपण वर्तमान उपभोग को प्रभावित करता है, लोक ऋण भावी उपभोग को प्रभावित करता है। क्योंकि सार्वजनिक ऋणों के कारण सम्पत्ति प्रभाव तथा हस्तान्तरण प्रभाव सृजित होता है और ये दोनों ही भावी उपभोग को प्रभावित करते हैं।

सरकार ऋण के मूलधन तथा ब्याज के भुगतान के लिए उतरदायी होती है पर सरकार का दायित्व जनता का दायित्व है। कहने का अभिप्राय यह है कि सरकार मूलधन तथा ब्याज के भुगतान के लिए कर लगायेगी जिसके कारण उपभोग में कमी आयेगी। उपभोग में कहाँ तक कमी या वृद्धि होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि कर किससे लिया जा रहा है तथा ब्याज के रूप में किसको दिया जा रहा है। यदि कर का ढाँचा ऐसा हो कि अधिकांश कर गरीबों से लिए जायें जिन्हें ब्याज के रूप में भी कुछ भी नहीं मिले तो उपभोग में कमी आयेगी। पर यदि कर अत्यन्त ही प्रगतिशील हो तो जिनको ब्याज के रूप में आय प्राप्त होगी, उनसे कर भी ले लिया जायेगा। उपभोग में कमी नहीं आयेगी।

उपभोग के ऊपर सम्पत्ति प्रभाव भी होता है। सम्पत्ति का उपभोग के ऊपर दो प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है। पहला लोक ऋण देने वाले के हाथ में एक सम्पत्ति है, जैसे- जैसे सम्पत्ति बढ़ती जाती है, उपभोग की प्रवृति बढ़ सकती है क्योंकि संपत्ति उसे सन्तुष्टि प्रदान करेगी। दूसरा यह कि लोक ऋण देने वाले को एक निश्चित आय मिलती रहेगी फलस्वरूप लोगों में बचत की प्रवृति बढ़ सकती है। अर्थात् उपभोग की प्रवृति कम हो सकती है। उपभोग के ऊपर व्यय का भी प्रभाव पड़ेगा क्योंकि जब सरकार लोक ऋण के द्वारा प्राप्त राशि को व्यय करती है तो अर्थव्यवस्था में आय का सृजन होता है। गुणक प्रभाव के कारण उसमें और तीव्र वृद्धि होती है, फलस्वरूप उपभोग में वृद्धि होगी। इस प्रकार लोक ऋण के कारण वर्तमान उपभोग तो अप्रभावित रहेगा पर भावी उपभोग में परिवर्तन हो सकता है जो सम्पत्ति प्रभाव, हस्तान्तरण प्रभाव तथा व्यय प्रभाव के स्वभाव पर निर्भर करेगा।

2.3.3 वितरण पर प्रभाव (Effect on Distribution)

लोक ऋण के अन्तर्गत क्रय- शक्ति का एक समूह से दूसरे समूह को स्थानान्तरण होता है। यदि यह क्रय-शक्ति धनी वर्ग से निर्धन वर्ग के प्रति स्थानान्तरित होती है तो आय के वितरण में सुधार होता है यदि इसके विपरीत क्रय- शक्ति निर्धन वर्ग से धनी वर्ग की ओर स्थानान्तरित होती है तो इसका आय के वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। व्यवहार में सरकारी प्रतिभूतियाँ निर्धन वर्ग की अपेक्षा धनी वर्ग द्वारा अधिक खरीदी जाती हैं। अतः ऐसी दशा में ऋण का भुगतान करने के लिए सरकार द्वारा जो कर लगाए जाते हैं उनका भार निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है। इस प्रकार सार्वजनिक ऋणों की सामान्य प्रकृति असमानता को बढ़ाने की होती है जिसे डाल्टन ने प्रत्यक्ष वास्तविक भार (Direct Real Burden) कहा है।

इस सम्बन्ध में **फिण्डले शिराज** का कहना है कि, ***''सार्वजनिक ऋणों की प्रबृति आय को करदाताओं से ऋणदाताओं के पक्ष में हस्तान्तरण करने की होती है।''*** यदि सरकारी ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों अथवा निम्न आय वर्ग के लोगों के आर्थिक कल्याण के लिए किया गया है तो इससे आय के समान वितरण को बढ़ावा मिलने लगता है। इसके विपरीत यदि सरकारी ऋण अनुत्पादक कार्यों यथा- युद्ध के संचालन तथा आकस्मिक संकटों के लिए प्राप्त किए गए हैं तो उनका भार अवश्य ही निर्धन वर्ग के लोगों को सहना पड़ेगा। यही नहीं यदि लोक ऋण अधिक मात्रा में अल्प बचतों के माध्यम से लिया जाता है तो इससे जो ब्याज प्राप्त होता है वह अपेक्षाकृत कम आय वाले वर्ग को मिलता है क्योंकि वे ही लोग अल्प बचत में पैसा जमा करते हैं। इससे आय की असमानता कम होती है।

विकासशील देशों में अप्रत्यक्ष करों की प्रधानता होने के कारण ऋण के भुगतान का अधिक भार निर्धन वर्ग पर ही पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोक ऋण धन के वितरण को कई तरह से प्रभावित करते हैं परन्तु जब तक इस ऋण का कुल प्रभाव, धन के वितरण को निर्धन वर्ग के पक्ष में करने का नही होता है तब तक लोक ऋण सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं समझा जा सकता।

युद्ध के लिए जो ऋण लिए जाते हैं, उनका भार करदाताओं पर अधिक पड़ता है। युद्ध के समय मूल्य-स्तर ऊँचा रहने से ऊँचे कर लगाए जाते हैं परन्तु युद्ध के बाद भी करों की यही मात्रा बनी रहती है, जबकि कीमतें गिर जाती हैं। किन्तु ब्याज की दर में कमी नहीं होती। अतः इससे आय की असमानता बढ़ती है। संक्षेप में, यदि लोक

ऋण को उत्पादक कार्यों पर व्यय किया जाता है तो इसका वितरण पर प्रतिगामी (Regressive) प्रभाव नहीं पड़ता।

2.3.4 विनियोग पर प्रभाव (Effect on Investment)

सामान्यतया लोक ऋण विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। सरकार लोक ऋण निजी व्यक्तियों की बचतों से प्राप्त करती है जिसका निजी विनियोग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है क्योंकि व्यक्तियों के पास संचित धन कम हो जाने से उनकी विनियोग की प्रेरणा हतोत्साहित होती है।

सरकार द्वारा नए बॉण्ड को जारी करने के कारण यदि ब्याज दर में वृद्धि होती है तो विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। ब्याज दर में जितनी अधिक वृद्धि होगी, विनियोग में उतनी ही अधिक कमी की आशा करनी चाहिए। किन्तु, यदि धन प्रभाव के कारण उपभोग में अत्यधिक वृद्धि होती हैं, तो विनियोग पर प्रतिबन्धक प्रभाव हल्का ही पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त जब सरकार बैंको से ऋण प्राप्त करती है तो बैंको की साख निर्माण की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बैंकों से सरकार द्वारा लिया गया ऋण जनता की अतिरिक्त क्रय शक्ति और निजी विनियोग को प्रभावित नहीं करता किन्तु यदि ब्याज दर स्थिर है तथा बॉण्डो में ब्याज का विशेष आकर्षण नहीं है तो निजी विनियोग में कमी होने की सम्भावना न्यूनत्तम हो जाती है। दूसरे शब्दों में विनियोग पर साधारणतः सार्वजनिक ऋणों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परन्तु ब्याज दर में परिवर्तन के अतिरिक्त विनियोग पर अन्य प्रकार से भी प्रभाव पड़ते हैं। यदि सरकारी प्रतिभूतियाँ ऐसे वाणिज्य बैंकों तथा अन्य संस्थाओं को बेची जाती हैं जिनके पास अतिरिक्त रिजर्व नहीं है तो विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेंगा।

1.3.5 व्यापार क्रिया और रोजगार पर प्रभाव (Effect on Business Activity and Employment)

सरकार सार्वजनिक ऋणों के द्वारा देश में रोजगार एवं आर्थिक दशा ओं में वांछित परिवर्तन ला सकती है। राज्य व्यापार तथा उद्योग, रोजगार तथा मूल्य स्तर को अपने व्यय द्वारा नियमित करती है और इस व्यय के लिए सार्वजनिक ऋणों द्वारा धन प्राप्त करने को अर्थव्यवस्था में विशेष स्थान तथा महत्व दिया जाता है।

जब सरकार गैर-बैंकिंग स्त्रोतों से ऋण लेती है तो इसका मुद्रा-स्फीति विरोधी (Anti-inflationary) प्रभाव होता है। यदि सरकार बैंकिंग स्त्रोतों से ऋण लेती है तो साख का विस्तार होता है तथा इसका वैसा ही प्रभाव होता है, जिस प्रकार अतिरिक्त मुद्रा निर्गमन का। जब सरकार देश के केन्द्रीय बैंक से ऋण लेती है तो देश में चलन की मात्रा बढ़ती है और यह घाटे की वित्त व्यवस्था का आधार बनता है। यदि इन कोषों को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय किया जाता है तो इससे उत्पादन और रोजगार की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। यदि देश का केन्द्रीय बैंक खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय करता है तो इससे साख का विस्तार होता है।

मन्दीकाल में, जब चारो तरफ निराशा और उदासीनता का वातावरण छा जाता है, उत्पादन व आय का स्तर गिर जाता है, बेरोजगारी बढ़ जाती है, विनियोग कम होने लगते हैं, साख संस्थाओं की स्थिति खराब हो जाती है, उस समय सरकार ऋणों द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करके रोजगार के अवसर उत्पन्न करती है।

इससे व्यक्तियों के पास धन पहुँचने से उनकी क्रय शक्ति बढ़ जाती है। माँग बढ़ने से मूल्य बढ़ने लगते है और व्यापार जगत में फिर से स्फूर्ति आ जाती है। इस प्रकार मंदी का प्रकोप समाप्त हो जाता है। **कीन्स** ने इसे **'नल विस्फोटक क्रिया (Pump Priming)'** कहा है और मन्दीकाल के लिए इसे बहुत महत्वपूर्ण बताया है। इसी तरह, मुद्रा स्फीति की दशा में सरकार लोगों से ऋण लेकर पास से क्रयशक्ति खींच लेती है जिससे वस्तुओ की मांग में कमी आने से मूल्य स्तर गिरने लगता है और सरकार अपने उद्देश्य में सफल हो जाती है।

2.4 लोक ऋण भार की अवधारणा (Concept of the burden of Public Debt)

लोक ऋण के भार से तात्पर्य उन लागतों या कठिनाइयों से है जो समाज को उस समय वहन करनी पड़ती है जब लोक व्यय की वित्त-व्यवस्था कर राजस्व के स्थान पर लोक ऋण द्वारा की जाती है। लोक ऋण का भार एक अत्यन्त ही विवादास्पद विषय है। विवाद के प्रमुख दो मुद्दे हैं- भार की धारणा तथा भावी पीढ़ी पर भार का स्थानान्तरण।

वणिकवादी अर्थशास्त्रियों (mercantile economists) के ही समय से लोक ऋण सम्बन्धी व्याख्या सबसे विवादास्पद रही है। 1930 में कीन्सियन क्रान्ति के बाद ऐसा लगा जैसे यह विवाद समाप्त हो गया है पर 1958 में जेम्स एम. बुकानन (James M Buchanan) की पुस्तक '***Principles of public debt'*** के प्रकाशन ने इस समस्या को पुनः जीवित कर दिया है और अब भी हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं आ सके हैं।

लोक ऋण भार की समस्या पर विचार करने के पूर्व यह उचित होगा कि हम यह स्पष्ट कर दें कि लोक ऋण के कारण उत्पन्न भार दो प्रकार का होता है-प्रारम्भिक या वित्तीय (Primary or Financial) भार तथा द्वितीयक या वास्तविक (Secondary or Real) भार। वित्तीय भार से आशय लोगों की आय की क्षति से है जो उस समय उत्पन्न होती है जबकि ऋण से सम्बन्धित व्ययों, ब्याज आदि को पूरा करने के लिए कर लगाया जाता है। इस प्रकार राष्ट्रीय मौद्रिक आय का कितना भाग ब्याज के रूप में है, यह वित्तीय भार को स्पष्ट करता है। इस प्रकार के करारोपण के कारण लोगों की कार्य करने की इच्छा तथा क्षमता पर जो प्रभाव पड़ता है वही ऋण का वास्तविक भार है।

संक्षेप में, पारम्परिक विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर पर सन्तुलन में रहती है, वहीं केन्सीय विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि अनैच्छिक बेरोजगारी साम्यावस्था में भी रहती है। इसलिए केन्सीय धारणा यह मानकर चलती है कि प्रभावोत्पादक माँग सृजन के लिए जो लोक ऋण लिए जाते हैं वह समाज पर कोई भार नहीं डालते, क्योंकि ऐसे ऋण से निजी क्षेत्र में बेकार पड़ी बचत को क्रियाशील किया जाता है तथा आय एवं रोजगार का सृजन होता है। लर्नर ने भी ऐसा ही विचार प्रस्तुत किया। उनकी यह सलाह है कि स्फीति काल में ऋण का भुगतान किया जाना चाहिए। डोमर एक कदम और आगे जाते हैं तथा आर्थिक विकास के साथ केन्सीय विचारधारा को जोड़ देते हैं। डोमर के अनुसार लोक ऋण तभी भार बन सकता है जब अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर ऋण पर भुगतान किए जाने वाले ब्याज की वृद्धि दर से कम रहती है।

2.5 सार्वजनिक ऋणों का भार (Burden of Public Debt)

लोक ऋण का भार इस बात पर निर्भर करता है कि ऋण किस स्रोत से लिया गया है। **डाल्टन** ने लोक ऋण के भार को दो भागों में विभाजित किया है- 1. आन्तरिक ऋण का भार तथा 2. बाह्य ऋण का भार

2.5.1 आन्तरिक ऋण का भार (Internal Debt Burden)

आन्तरिक ऋण वह है जो किसी देश की सीमाओं के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं से घरेलू मुद्रा में लिया जाता है। जिनका घरेलू मुद्रा में ही भुगतान एवं ब्याज की अदायगी करनी होती है। आन्तरिक ऋण का समाज पर सम्पूर्ण रूप में प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं पड़ता क्योंकि ब्याज और ऋण की अदायगियों के लिए लगाया गया कर एक वर्ग के व्यक्तियों की ओर से दूसरे वर्ग के व्यक्तियों की ओर क्रय शक्ति का केवल स्थानान्तरण करता है। आन्तरिक ऋण भार को प्रदर्शित करने वाले मुख्य बिन्दु हैं:

(1) यदि ऋणदाता और करदाता एक ही हैं तो समाज पर सामान्यतः कोई शुद्ध भार नहीं पड़ता परन्तु यदि ऋणदाता एवं करदाता विभिन्न आय वाले वर्गों से सम्बन्ध रखते हैं तो आन्तरिक ऋण भार समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय के वितरण को प्रभावित करता है।

(2) आन्तरिक ऋणों का प्रत्यक्ष वास्तविक भार कम पड़ता है यदि ऋण निर्धन वर्ग से लिये जाते हैं तथा उसके भुगतान के लिए सरकार धनी वर्ग पर कर लगाती है।

(3) आन्तरिक ऋणों का समाज पर कोई मौद्रिक भार नहीं पड़ता क्योंकि सरकार जनता से ही ऋण लेती है और जनता पर ही कर लगाकर प्राप्त आय से ऋणों की अदायगी करती है। इस प्रकार आन्तरिक ऋण में धन का पुनर्वितरण होता है।

(4) आन्तरिक ऋण भार अर्थव्यवस्था पर अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार उत्पन्न करता है और यह प्रभाव तब अनुकूल होता है जब ऋण राशि को विकासोन्मुख कार्यों में व्यय किया जाता है।

2.5.2 बाह्य ऋण का भार (External Debt Burden)

बाह्य ऋण की प्रकृति आन्तरिक ऋण से भिन्न होती है क्योंकि इन बाहरी ऋणों की अदायगी एवं ब्याज का भुगतान विदेशी मुद्रा में ही किया जाता है। बाह्य ऋण देश की सीमाओं के बाहर स्थित व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त होते हैं। आन्तरिक ऋण ऐच्छिक या अनिवार्य हो सकता है। बाह्य ऋण हमेशा ऐच्छिक होता है, केवल उन विशेष परिस्थितियों को छोड़कर जब सैनिक कार्यवाही के द्वारा दूसरे देश को उधार दने के लिए बाध्य किया जाए। आन्तरिक ऋण की स्थिति में देश के अन्दर सम्पत्ति का हस्तान्तरण होता है। बाह्य ऋण की हालत में पहले विदेश से देश से अन्दर सम्पत्ति का स्थानान्तरण होता है। बाद में, ऋण को वापस करते समय मूलधन मय ब्याज का भुगतान करने में विपरीत दिशा में स्थानान्तरण होता है। बाह्य ऋण भार से सम्बन्धित मुख्य बिन्दु निम्न हैं-

(1) बाह्य ऋणों का वास्तविक भार देश के आर्थिक कल्याण में कमी करता है। जब देश के नागरिकों को विदेशी भुगतान के बदले में देश की वस्तुओं और सेवाओं का परित्याग करके उन्हें निर्यात करना पड़ता है।

(2) बाह्य ऋण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उत्पादन की इसी कमी के कारण अप्रत्यक्ष मौद्रिक एवं वास्तविक भार अधिक हो जाता है क्योंकि बाहरी ऋणों के शोधन के लिए भारी मात्रा में करारोपण किया जाता है जिसका कार्य करने, बचत करने एवं विनियोग करने की इच्छा एवं शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त बाहरी ऋणों के भुगतान के लिए सरकार सार्वजनिक व्ययों में अनेक कटौतियां करती है जिसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2.5.3 लोक ऋण के भार सम्बन्धी मौजूदा धारणा (Current Attitude of the Burden of Public Debt)

1950 के दशक से लोक ऋण में वृद्धि को खतरनाक समझा जाने लगा। इसका प्रथम कारण यह है कि लोक ऋण में वृद्धि के फलस्वरूप निजी निवेश में भी कमी हो जाती है। किन्तु दूसरा एवं अधिक महत्वपूर्ण कारण इस मान्यता के कारण है कि लोक ऋण के वित्त पोषण के आधार पर किया गया अधिकांश लोक व्यय अनुत्पादक पाया जाता है। 1987 में **पोजनर (**Michael Posner**)** ने स्पष्ट रूप से बताया कि मन्दी के समाधान के लिए अनुत्पादक पूँजी परियोजनाओं (unproductive capital projects) पर केन्स ने लोक व्यय में जिस असीमित वृद्धि की बात कही वह सहने योग्य नहीं है। लोक ऋण का वह भाग चिन्ता का विषय है जिस पर ब्याज चुकाने के लिए पूर्ण रूप से या अधिकांश में कर राजस्व पर निर्भर करना पड़ता है। इसी सन्दर्भ में **प्रो. डान्डेकर (V. M. Dandekar- Economic and Political Weekly, April 10, 1993, p. 69)** का कहना है कि "***जब ब्याज का भुगतान उधार लेने की क्षमता को पार कर जाता है, देश ऋण जाल (debt Trap) में फंस जाता है।"***

प्रो. चेल्याह (Pro. Chelliah) का कहना है कि निम्न उद्देश्यों के लिए लोक ऋण को उचित समझा जा सकता है:

(1) कर की दर के उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए लोक ऋण की आवश्यकता हो सकती है। अलाभकर पूँजी निर्माण व्यय अक्सर भारी मात्रा में करना होता है। यदि ऐसे लोक व्यय का वित्त पोषण कर राजस्व से किया जाए तो कर की दर ऐसे पूँजी निर्माण व्यय के वर्ष में अधिक होगी तथा उस वर्ष में यह दर कम होगी जिस वर्ष ऐसा व्यय नहीं होगा। न केवल कर की दर ही कभी अधिक और कभी कम होगी, बल्कि ऊंची दर के वर्ष में ऐसी दर विकृति पैदा करेगी। अतः ऐसी पूँजी निर्माण का वित्त पोषण लोक ऋण के माध्यम से करना उचित होगा। उचित यह भी होगा कि ऐसी परियोजना (Project) के जीवनकाल में ही ऋण का भुगतान कर दिया जाये। यदि ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो ऐसी परिसम्पत्ति (Asset) की फिर से स्थापना (replacement) के लिए पर्याप्त मूल्यह्रास (depreciation) का प्रावधान करना चाहिए।

(2) आर्थिक स्थिरता के लिए औद्योगिक देशों में चक्रीय मन्दी या बेरोजगारी को समाप्त करने में घाटे के वित्त पोषण का उपयोग किया गया है। इसलिए लोक ऋण के माध्यम से लोक व्यय में वृद्धि करना उचित ठहराया जा सकता है।

(3) युद्ध या अन्य संकटकालीन व्यय के वित्त पोषण के लिए भी लोक ऋण उचित समझा जा सकता हैं क्योंकि ऐसा नहीं करने पर कर में अत्यधिक वृद्धि करनी होगी।

(4) चालू व्यय के वित्त पोषण के लिए भी लोक ऋण को उचित ठहराया जा सकता है जिससे किसी भौतिक पूँजी का निर्माण तो नहीं होता है, किन्तु मानवीय पूँजी का निर्माण होता है या जिसका पूँजी की उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(5) लाभकर पूँजी निर्माण के लिए भी सरकार द्वारा ऋण लेना उचित ठहराया जा सकता है। निवेश के लिए उधार देने के लिए सरकार ऋण ले सकती है। अल्पविकसित देशों में पूँजी बाजार के विकसित न होने के कारण सरकार के लिए ऋण लेकर शेयर खरीदना भी उचित ठहराया जा सकता है।

प्रो. चेल्याह (Pro. Chelliah) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक '**Indian Economy: Problems and Prospects'** में यह स्पष्ट किया है कि भारत जैसे विकासशील देशों के लिए आदर्श स्थिति वह होगी जहाँ कर एवं गैर-कर राजस्व से आर्थिक सहायता (subsidy) अन्य हस्तान्तरण व्यय (other transfer expenditure) ऋण का भुगतान तथा चालू व्यय के अधिकांश का वित्त पोषण होता है तथा लोक ऋण का उपयोग सरकार के अलाभकर पूँजी निर्माण, सामाजिक पूँजी तथा उत्पादकता में वृद्धि करने वाले व्यय तथा वित्तीय निवेश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए होता है।

रिचर्ड बी. गुडे (Richard B. Goode) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Government Finance in Developing Countries** में माना है कि आन्तरिक ऋण, अधिकांशतः व्यावहारिकता (expediency) का परिणाम है क्योंकि सरकार कर लगाना ही अधिक पसन्द करती है, किन्तु ऐसा करना सुविधाजनक नहीं हो पाता है। पारम्परिक धारणा यह है कि निवेश व्यय का वित्त पोषण ऋण के द्वारा करना चाहिए, जबकि उपभोग व्यय (consumption or current expenditure) का नहीं। **रिचर्ड बी. गुडे (Richard B. Goode)** कहते हैं कि यह पारम्परिक विचारधारा निजी उद्यम (private enterprise) के वित्त पोषण की गलत उपमा (analogy) पर आधारित है। सरकार को समष्टि आर्थिक आवश्यकता के अनुसार ही लोक ऋण के औचित्य को तय करना चाहिए। ऐसा मान लेना उचित नहीं होगा कि विनियोग व्यय के वित्त पोषण के लिए लोक ऋण हमेशा बेहतर होता है। पारम्परिक धारणा की एक कमजोरी यह भी है कि वह मानकर चलती है कि विनियोग हमेशा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है तथा लोक उपभोग (public consumption) विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। वास्तविकता यह है कि न तो सभी पूँजी व्यय आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करते हैं और न ही सभी चालू व्यय अनुत्पादक होते हैं। इसलिए लोक ऋण के सम्बन्ध में ऐसा कहना अधिक उचित होगा कि ***"सरकार को उपभोग व्यय के लिए ऋण लेने से बचना चाहिए (Avoid borrowing to pay for government consumption expenditures)"***

2.6 लोक ऋण के भार का हस्तान्तरण (Transfer of Public Debt Burden)

2.6.1 लोक ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण (Transfer of Public Debt Burden to Future Generation)

सामान्यता ऐसा माना जाता है कि वर्तमान लोक ऋण का भार भावी पीढ़ियों पर टाल दिया जाता है। इस अर्थ में राष्ट्रीय ऋण हमारे बच्चों पर अनुचित बोझ डालता है, हमारे फिजूलखर्च के लिए उन्हें भुगतान करना होता

हैं। **लर्नर** ऐसे विचार से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि ***''बहुत कम लोगों को ऐसा बताने की जरूरत है कि यदि हमारे बच्चे या पोते-पोतियाँ राष्ट्रीय ऋण के कुछ अंश का भुगतान करते हैं तो ऋण का लाभ भी उन्हें ही मिलता है।''***

वास्तव में, लोक ऋण का भार भावी पीढ़ी पर पड़ता है अथवा नहीं, इस सन्दर्भ में अनेक विद्वानों ने परस्पर विराधी मत व्यक्त किए है। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों द्वारा व्यक्त किए गए विचार निम्नवत् हैं:

1 रिकार्डो-पीगू प्रमेय (Ricardo Pigou Theoram)-

रिकार्डो व पीगू की धारणा है कि यदि सरकार अपने व्यय को करों के माध्यम से सम्पन्न करती है तो पहली पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को मात्र कर रसीदें प्रदान करती है किन्तु यदि सरकार अपने व्यय को बॉण्ड जारी करके सम्पन्न करती है तो पहली पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को वसीयत के रूप में बॉण्ड प्रदान करती है। दूसरी पीढ़ी बॉण्ड प्राप्त करने के साथ-साथ भविष्य में राज्य द्वारा लिए गए ऋण के भुगतान के लिए करदान-क्षमता भी प्राप्त करती है। वस्तुतः द्वितीय पीढ़ी का कल्याण इस बात पर निर्भर नहीं करता कि उसे पहली पीढ़ी से कर की रसीदें मिलीं अथवा बॉण्ड। वह तो इस बात पर निर्भर करता है कि उसे पूँजी-संग्रह के रूप में क्या मिलता है? यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि प्रथम पीढ़ी से सरकार ने साधन किस प्रकार लिए हैं। यदि सार्वजनिक व्यय की पूर्ति करों से होती है तो उससे उपभोग में कमी होगी तथा अधिक मात्रा में पूँजी दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होगी।

यह कहा जा सकता है कि बॉण्डों द्वारा साधन संग्रहित करने में उपभोग में कमी नहीं होगी व इस कारण द्वितीय पीढ़ी को कम मात्रा में पूंजी संचय प्राप्त होगा। **रिकार्डो** एवं **पीगू** का मत है कि लोक ऋण का आगामी पीढ़ी पर इसी अर्थ में भार पड़ता है कि यदि सरकार अपने कार्यक्रमों को करारोपण के माध्यम से न सम्पन्न कर लोक ऋण के माध्यम से करती है तो उन्हें पूँजी संचय कम मात्रा में उपलब्ध होता है। जिससे मसग्रेव भी अपनी सहमति प्रकट करते हैं।

2 नव क्लासिकल प्रमेय (Neo-ClassicTheoram)

इस विचार के अनुसार जब पीढ़ियाँ परस्पर व्याप्त (overlapping) नहीं है, तब पूँजी स्टॉक में कमी के बिना ऋण के भार को भावी पीढ़ियाँ पर टाला नहीं जा सकता है। यह नव-क्लासिकल विचारधारा है। इस विचारधारा (मॉडल) में इस बात पर बल दिया जाता है कि जब सरकार किसी परियोजना ;चतवरमबजद्ध को शुरू करती है, तब निजी क्षेत्र से साधन सार्वजनिक क्षेत्र में स्थानान्तरित होते हैं, चाहे इसकी वित्त व्यवस्था कर द्वारा हो अथवा ऋण द्वारा। लोग सामान्यतः ऐसा मान लेते हैं कि जब परियोजना के लिए वित्त कर के माध्यम से आता है, तो करदाता अधिकांश कर राजस्व का भुगतान उपभोग में कटौती करके करते हैं। दूसरी ओर ऋण द्वारा वित्त प्राप्त करने की स्थिति में, इस फण्ड को व्यक्तियों तथा फर्मों के द्वारा अपनी परियोजनाओं के लिए माँगे गए फण्ड के साथ स्पर्धा करनी होती है। इसलिए ऐसा सामान्यतः मान लिया जाता है कि ऋण का अधिकांश प्रभाव निजी विनियोग पर पड़ता है। यह मान्यता जहाँ तक सही है, ऋण द्वारा लोक व्यय की वित्त व्यवस्था के कारण पीढ़ी को पूँजी का कम स्टॉक प्राप्त होता है। इसलिए भावी पीढ़ी की वास्तविक आय कम होगी। यही ऋण का इस पीढ़ी पर भार है। यह मान्यता कि लोक ऋण के कारण निजी विनियोग में कमी आती है, नव-क्लासिक विश्लेषण में काफी महत्व

की है। इसे ही कभी-कभी **"भीड़ से बाहर निकालना प्रभाव (Crowing out Effect)"** कहा जाता है। जब सार्वजनिक क्षेत्र निवेश के लिए जमा साधनों से फण्ड प्राप्त करता है, निजी निवेश को इस जमा से बाहर निकाल दिया जाता है। ऐसा ब्याज की दर में वृद्धि के द्वारा होता है। जब सीमित जमा से फण्ड प्राप्त करने के लिए सरकार भी प्रतियोगी हो जाती है, ब्याज दर बढ़ जाती है। इस स्थिति में निजी निवेश महंगा हो जाता है तथा इसकी मात्रा घट जाती है।

3 BDK प्रमेय (BDK Theoram)

इस प्रमेय के **प्रो. बॉवेन (W. G. Bowen), प्रो. डेविस (R. G. Davis)** तथा **प्रो. कॉफ (H. D. Kopf)** ने अपने विचार लेख '***The Public Debt: A Burden on Future Generation'*** (American Economic Review, Vol. 50, pp 701-06 and Vol 51 pp 141-43) में दिये हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त को BDK प्रमेय (BDK Thesis) के नाम से जाना जाता है। इस प्रमेय के अनुसार ऋण व्यवस्था के फलस्वरूप समाज का उपभोग, ऋण की मात्रा के अनुपात में ही कम हो जाता है। उपभोग में यह कमी उस वर्ष होती, है जब प्रथम बार ऋण लिया जाता है क्योंकि लोग उपभोग में कमी करके ही सरकार से बॉण्ड आदि क्रय करते हैं। इन लोगों ने एक-पीढ़ी का जीवन काल 44 वर्ष मानते हुए स्पष्ट किया कि 44 वर्ष के उपरान्त स्वतः ही समाज के एक समुदाय के उपभोग में कमी हुई थी। यह क्रिया प्रति 44 वर्ष बाद घटित होगी व उपभोग में वृद्धि पुरानी पीढ़ी द्वारा होगी व उपभोग में कमी नई पीढ़ी को होगी। इस तरह यदि प्रथम पीढ़ी उपभोग में कमी करे भी तो दूसरी पीढ़ी उपभोग में वृद्धि करेगी। दूसरी पीढ़ी जितनी मात्रा में उपभोग में वृद्धि करेगी, प्रथम पीढ़ी उतनी ही मात्रा में कमी। इसका अर्थ यह हुआ कि पहली पीढ़ी 43 वर्ष तक अपने उपभोग स्तर में कोई परिवर्तन नहीं पाएगी तथा सार्वजनिक व्यय का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यदि सरकार ऋण दूसरी पीढ़ी के जीवन काल में चुका देती व यदि सरकार से प्राप्त समस्त राशि सीधे उपभोग पर व्यय भी कर दी जाती तो भी दूसरी पीढ़ी को अपने जीवन काल में उपभोग में कमी सहन करनी पड़ती है, इस तरह बावेन, डेविस व कॉफ के अनुसार इस पीढ़ी पर भार पड़ेगा। उनके अनुसार, समाज के उपभोग में केवल एक बार कमी आती है व आगे वाले वर्षो में उपभोग स्तर पर या पूँजी की उपलब्धि पर किसी तरह का अन्तर नहीं आता। राज्य के व्यय करने या न करने पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके बावजूद भी दूसरी व तीसरी पीढ़ी पर ऋण का भार रहता है। उनका कथन है कि प्रारम्भिक वर्ष में उपभोग को स्थगित करने से पहली पीढ़ी के उपभोग स्तर में जो कमी आती है, अर्थात् प्रथम वर्ष से 44 वर्ष तक उपभोग को स्थगित करते रहना पड़ता है, यह त्याग इस पीढ़ी को सहन करना पड़ता है व इसकी क्षतिपूर्ति नहीं हो पाती। पीढ़ी को 44 वर्ष के अन्त में उपभोग स्तर बढ़ाने का मौका मिलता है तो वह प्रथम वर्ष में उपभोग में कमी करने का प्रतिफल है किन्तु अन्य वर्षो में जो स्तर कम रहता है उसकी क्षतिपूर्ति कभी नहीं हो पाती। यही तर्क सभी पीढ़ियों के सम्बन्ध में लागू होता है व प्रत्येक पीढ़ी को भार वहन करना पड़ता है।

जब तक राज्य द्वारा लिया गया ऋण भुगतान नहीं कर दिया जाता तब तक प्रत्येक पीढ़ी को उपभोग स्थगित करते रहने के रूप में त्याग करके भार वहन करना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि दूसरी पीढ़ी यद्यपि पूँजी संचय में किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं करती तथापि वह भार वहन कर रही है। यही BDK प्रमेय है।

वास्तव में, दूसरी पीढ़ी को कम मात्रा में पूँजी-'सचय मिलेगा, इसका कारण यह है कि यदि सरकार पहली पीढ़ी से ऋण लेकर व्यय नहीं करती तो इस पीढ़ी को 44 वें वर्ष में अधिक उपभोग प्रदान करने के लिए नई पीढ़ी को अपने उपभोग में कमी करनी पड़ती है और इस रूप में नई पीढ़ी को कम पूँजी संचय मिलेगा, उस स्थिति की तुलना में जिसमें कि राज्य कोई व्यय नहीं करता। इस तरह, बावेन डेविस व कॉफ के अनुसार भी नवीन पीढ़ी को वसीयत के रूप में कम पूँजी संचय उपलब्ध होगा। उनका कथन है कि ***"चाहे ऋण व्यवस्था (उपभोग) को कम करे या (निवेश) को, यह भार पीढ़ी दर पीढ़ी अन्तरण में परिणत हो सकता है।"***

संक्षेप में, इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत भार को विभिन्न पीढ़ियों के करदाताओं के जीवनकालीन उपभोग में कटौती के रूप में देखा जाता है। किसी भी समय समाज में अनेक पीढियों के लोग साथ-साथ रहते हैं। कर राजस्व के कुल भार से तात्पर्य होता है प्रत्येक पीढ़ी के करदाताओं के जीवनकालीन उपभोग में कमी। लोक ऋण की स्थिति में ऐसा सम्भव है कि पीढ़ी I उपभोग में होने वाली कटौती को भावी पीढ़ी II एवं III को कुछ अंश में टाल दे। ऋण लेने के समय भावी पीढ़ी II एवं III मौजूद नहीं थी, किन्तु भविष्य में ऋण सेवा के समय उपस्थित रहती है। जब ऋण को अदा किया जाता है, पीढ़ी I ऋण की रकम का उपयोग उपभोग पर करती है तथा पीढ़ी II एवं III ऋण सेवा के लिए कर भुगतान करती हैं। दूसरे शब्दों में, पुरानी पीढ़ी अपने उपभोग में वृद्धि करती है जबकि नयी पीढ़ियों के उपभोग में कमी होती है। कारण यह है कि ऋण की वापसी के समय पुरानी पीढ़ी सेवा मुक्त (retire) हो जाती हैः अतः इस पर कर नहीं लगाया जाता है। इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उपभोग में कटौती के रूप में ऋण के भार को उन पीढ़ियों को वहन करना पड़ता है जो ऋण की वापसी के समय जीवित रहती है। इस पूरे विश्लेषण में विनियोग की दर में कटौती की कोई बात नहीं की जाती है।

4 प्रो0 बुकानन का विश्लेषण (Prof. J. M.Buchanan Analysis)

प्रो. जे. एम. बुकानन ने अपना विश्लेषण अपनी पुस्तक '***Principles of Public Debt'*** में 1958 में प्रस्तुत किया। वस्तुतः 1930 तथा 1940 के दशकों में ऋण के भार के सम्बन्ध में वाद- विवाद दो विपरीत विचारधाराओं के मध्य (ऋण भार भावी पीढ़ी पर पड़ेगा या नहीं) चलता रहा। एक विचारधारा यह मानती रही कि बेरोजगारी को कम करने के लिए बजट में होने वाले घाटे की वित्त व्यवस्था के लिए किए गए ऋण का भार भावी पीढ़ी पर पड़ेगा। घाटे की वित्त व्यवस्था के समर्थक यह तर्क देते रहे कि ऐसा नहीं होगा।

प्रो. बुकानन ने इस सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है कि यदि सार्वजनिक व्यय का प्रबन्ध ऋण प्राप्त करके किया जाएगा तो इसका भार भावी पीढ़ी पर अन्तरित होगा। यदि यह व्यय कर व्यवस्था द्वारा किया जायेगा तो इसका भार अन्तरित नहीं होगा। यदि पूर्ण रोजगार की दशा में ऋण व्यवस्था द्वारा साधनों को निजी उपयोग से सार्वजनिक उपयोग के लिए अन्तरित किया जाएगा तो प्रारम्भ में तो किसी भी व्यक्ति को कोई भार अनुभव नहीं होगा। परन्तु जब इस ऋण का कर-व्यवस्था द्वारा भुगतान किया जाएगा तो प्रत्येक व्यक्ति को त्याग का अनुभव होगा। इससे किसी भी व्यक्ति को लाभ की अनुभूति नहीं होगी। बुकानन के अनुसार व्यक्ति ऋण को निजी पूँजी निर्माण में कमी करके प्रदान करते हैं। उनके अनुसार लोग स्वेच्छा से बॉण्ड खरीदते हैं। इससे किसी को कोई त्याग नहीं करना पड़ता परन्तु भावी पीढ़ी को कम पूँजी संचय प्राप्त होगा। इस तरह दूसरी पीढ़ी पर प्रथम पीढ़ी

के निर्णय का प्रभाव पड़ेगा। यदि पहली पीढ़ी ऋण प्रदान करने की अपेक्षा उपभोग में कमी करने का निर्णय लेती है तो वह दूसरी पीढ़ी के लिए अधिक उत्तम होगा।

इस तरह बुकानन की धारणा है कि भावी पीढ़ी को ऋण का भार वहन करना होगा क्योंकि जब ऋण वापस किया जाएगा तो जिन्होंने कर दिया है, वे तो त्याग का अनुभव करेंगे ही किन्तु जिन्होंने बॉण्ड में विनिमय किया है, वे भी लाभ का अनुभव नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें तो पूर्व में दिए गए ऋण के बदले में ही राशि मिलेगी।

बुकानन का यह विश्लेषण पीगू व रिकार्डो के विश्लेषण के काफी समीप मालूम पड़ता है क्योंकि यदि पहली पीढ़ी उपभोग में कमी करके धन संग्रह करेगी तो इससे भावी पीढ़ी को अधिक पूँजी संचय मिलेगा। इसके विपरीत जब यही साधन संग्रह ऋण व्यवस्था के माध्यम से किया जाएगा तो उससे पूँजी संचय कम मात्रा में होगा।

5 प्रो. मसग्रेव का विश्लेषण (Prof. Musgrave Analysis)

प्रो. मसग्रेव ने ऋण के प्रभावों के सम्बन्ध में विभिन्न पीढ़ियों के मध्य समानता (Intergeneration) का विचार प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि यदि ऋण व्यवस्था द्वारा व्यय कार्यक्रम सम्पन्न किया जाएगा तो इनका भार सभी पीढ़ियों पर बँट जाएगा व उन पर समान भार पड़ेगा। कर व्यवस्था द्वारा यह सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें तो भार एक ही पीढ़ी को वहन करना पड़ेगा।

मसग्रेव की धारणा है कि भावी पीढ़ी की आर्थिक स्थिति पर पूर्व पीढ़ी के निर्णयों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्य शब्दों में, पूर्व पीढ़ी द्वारा भावी पीढ़ी को वसीयत के रूप में पूँजी-संचय प्रदान करने की बात को मसग्रेव ने अपने विश्लेषण में महत्व नहीं प्रदान किया है।

संक्षेप में, उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूँजी संचय की वसीयत, ऋण व्यवस्था द्वारा सार्वजनिक व्यय सम्पन्न करने का एक महत्वपूर्ण पहलू है तथा यह निश्चित है कि प्रथम पीढ़ी के साधन संग्रह करने के निर्णयों का भावी पीढ़ी पर प्रभाव पड़ेगा। इस बात का विश्लेषण किए बिना ऋण-भार का विश्लेषण अधूरा रहेगा। इस संदर्भ में यह स्पष्ट है कि रिकार्डो व पीगू के प्राचीन विचार अभी भी प्रासंगिक हैं। एक और महत्वपूर्ण तथ्य जो ऋण भार के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए, वह यह है कि ऋण से प्राप्त साधनों के व्यय का अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है। यदि लोक ऋण से पूँजी का निर्माण होता है तथा उससे प्राप्त लाभ को ही ऋण प्रतिदान के लिए प्रयुक्त किया जाता है तो इससे भावी पीढ़ी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा व वर्तमान पीढ़ी भी अपने जीवन-काल में ब्याज सहित राशि वापस कर देगी।

2.6.2 लोक ऋण के भार का हस्तान्तरण एवं आर्थिक विकास (Transfer Burden of Public Debt and Economic Development)

वर्तमान में अधिकांश देशों में लोक ऋण की मात्रा बढ़ती जा रही है। परन्तु ऋण के भार सम्बन्धी पारम्परिक विश्लेषण में ऋण की बढ़ती मात्रा को राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ नहीं देखा जाता है। जब इसे आर्थिक विकास के सन्दर्भ में देखा जाता है तो हम नहीं कहते हैं कि प्रत्येक अगली पीढ़ी को ऋण के बढ़ते भार को वहन करना पड़ेगा। लोक ऋण के भार को अकसर राष्ट्रीय आय के उस प्रतिशत के रूप में देखा जाता है जिसकी जरूरत ब्याज के भुगतान के लिए पड़ती हैं। इस स्थिति में ऋण का भार बढ़ता है या घटता है, यह दो बातों के परस्पर सम्बन्ध पर निर्भर करेगा। एक है आर्थिक विकास अर्थात् राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर तथा दूसरा ब्याज के

भुगतान की वृद्धि दर। इस तरह देखने पर ऐसी सम्भावना भी हो जाती है कि हार्रसमान ऋण का भार बढ़ता जाए तथा वृद्धिमान ऋण का भार कम होता जाए। वस्तुतः विकासशील राष्ट्र में ऋण की समस्या मुख्य रूप से राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर में तेजी लाना है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के कारण लोक ऋण पर ब्याज के भुगतान के लिए जिस कर राजस्व की आवश्यकता है उसका भार अर्थव्यवस्था पर असह्य नहीं होना चाहिये।

प्रो. ई. डी. डोमर की व्याख्या-

लोक ऋण के हस्तान्तरण एवं आर्थिक विकास सम्बन्धी अवधारणा को प्रो. ई. डी. डोमर ने अपने लेख ***'The Burden of the Debt and National Income'*** में प्रस्तुत किया गया। इस लेख में उन्होंने लोक ऋण के भार को राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में व्यक्त किया है। उन्होंने उन शर्तों को बताया है जिनके अनुसार हम जान सकते हैं कि भार में कब वृद्धि होगी और कब कमी। इसके लिए उन्होंने निम्न समीकरण दिये हैं:

$$t = i \times \frac{b}{G}$$

जहां t = राष्ट्रीय आय का अनुपात जिसे कर के रूप में लिया जाता है

i = ऋण पर ब्याज राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में

b = बजट का घाटा राष्ट्रीय आय अनुपात में

G = राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर

उपरोक्त समीकरण के आधार पर यह बताया जा सकता है कि कब ऋण के भार में वृद्धि होगी तथा कब कमी। इसे समझने के लिए कुछ उदाहरण लें।

स्थिति 1

i = 3 %; G = 3 %; b = 3%

ऋण सेवा के लिए ज का मूल्य 3% होगा।

स्थिति 2

i = 3 %; G = 6 %; b = 3%

यदि i तथा b स्थिर रहे, तो विकास की दर G के दूगनी होने पर ऋण सेवा के लिए केवल 1.5 प्रतिशत t की आवश्यकता होगी।

स्थिति 3

i = 3 %; G = 6 %; b = 1.5%

इस स्थिति में i तथा b के स्थिर रहने पर आर्थिक विकास की दर के आधा हो जाने पर 6 प्रतिशत t की जरूरत होती है, अर्थात ऋण का भार बढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में, ऋण सम्बन्धी अवधारणा जिस बात को सुनिश्चित करता है वह यह है कि लोक व्यय इस अर्थ में उत्पादक है कि वह राष्ट्रीय आय की वृद्धि में योगदान करता है। इसलिए लोक ऋण में वृद्धि अपने आप चिन्ता का विषय नहीं है। देखना है लोक व्यय के मौजूद आबंटन को ताकि इसका अधिकांश भाग राष्ट्रीय आय की वृद्धि में योगदान करे। इस हेतु **प्रो. सैम्युलसन** तथा **प्रो. नारडस** ने भी बड़ी मात्रा में लोक ऋण को अच्छा नहीं माना है। जिसकी व्याख्या आगे की गयी है।

लोक ऋण के भार तथा प्रभाव पर सैम्युलसन तथा नॉरडस के विचार (Concept of Samuelson and Nordhaus on the Burden and Effects of Public Debt)

प्रो0. पाल ए. सैम्युलसन तथा प्रो. डब्लू डी. नॉरडस ने लोक ऋण के भार तथा प्रभाव को समझाने के लिये सर्वप्रथम पहले लोक ऋण तथा बजट घाटे के अन्तर को समझाया है क्योंकि इनके अन्तर कभी-कभी उलझन पैदा कर देते हैं। इनके अनुसार ऋण टब के अन्दर जमा जल है, जबकि घाटा टब के अन्दर प्रवाहित होता जल। लोक ऋण (government or public debt) सरकारी दायित्व का भण्डार (stock of liabilities of govermnent) है। घाटा नए ऋण का प्रवाह है जिसका सृजन उस समय होता है जब सरकार राजस्व प्राप्ति से अधिक व्यय करती है। मान लें कि 2012 में भारत सरकार का घाटा 25,000 करोड़ रूपए था। लोक ऋण के भण्डार में यह राशि जुड़ जाएगी। इसके विपरीत मान लें कि 2010 में सरकार के बजट में 20,000 करोड़ रूपए का अतिरेक (surplus) था। उस वर्ष के लोक ऋण में इस राशि के बराबर कमी हुई।

युद्ध, आर्थिक मन्दी जैसी संकटकालीन परिस्थितियों में बजट में घाटा एक वास्तविक स्थिति है, किन्तु पिछले करीब तीन दशकों में शान्तिकालीन परिस्थितियों में बड़ी मात्रा में बजट घाटा आधुनिक आर्थिक इतिहास की एक अनोखी विशेषता है। इसलिए प्रायः सभी देशों में ऋण/सकल घरेलू उत्पाद अनुपात शान्ति काल में भी बढ़ रहा है।

इस हेतु कुछ लोगों का कहना है कि बड़े बजट घाटे के कारण भावी पीढ़ियों पर भार पड़ता है। कुछ अन्य लोगों का कहना है कि ब्याज दर या निवेश पर घाटे के प्रभाव का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। तीसरे वर्ग का कहना है कि घाटा अर्थव्यवस्था के लिए अनुकूल है, विशेषकर मन्दी के समय। इस संघर्ष का समाधान क्या है? सर्वप्रथम, हम ऐसा विश्वास करना छोड़ दें कि लोक ऋण बुरा है, क्योंकि इससे निजी ऋणकर्ता (कर्जदार) को सजा मिलती है। दूसरी ओर हमें यह स्वीकारना होगा कि लोक ऋण की बड़ी मात्रा के कारण वास्तव में समस्याएं उत्पन्न होती हैं तथा कम मात्रा में लोक ऋण से लाभ प्राप्त होते हैं।

प्रो. सैम्युलसन तथा प्रो. नॉरडस का मानना है कि बड़ी मात्रा में लोक ऋण का शायद सर्वाधिक गम्भीर परिणाम यह है कि देश की निजी सम्पत्ति के भण्डार में पूँजी का विस्थापन होता है। इस कारण आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाएगी तथा लोगों के जीवन स्तर में गिरावट आ जाएगी।

यहाँ लोक ऋण सम्बन्धी यांत्रिकी विशेष महत्वपूर्ण है जिसके माध्यम से ऋण पूँजी को प्रभावित किया जा सकता है। लोग कई उद्देश्यों से धन का संचय करते हैं, जैसे अवकाश प्राप्ति के बाद जीवनयापन के लिए, बच्चों की शिक्षा के लिए, भवन निर्माण के लिए आदि। व्यक्तियों द्वारा धारण किए गए धन को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है पहला, सरकारी ऋण तथा दूसरा मकान, वित्तीय सम्पत्ति जैसे- शेयर आदि के रूप में जिन्हें निजी पूँजी कहा जा सकता है।

सरकारी ऋण का यह प्रभाव होता है कि लोग निजी पूँजी के स्थान पर सरकारी ऋण का संचय करते हैं। इससे निजी पूंजी का विस्थापन लोक ऋण द्वारा होता है। लोगों के कुल सम्पत्ति संचय की मात्रा निश्चित (fixed) होती है। इसलिए वे जितनी अधिक मात्रा में सरकारी बॉण्ड खरीदेंगे उतनी ही मात्रा में कारखाने, मकान आदि निजी पूंजी की मात्रा में कमी होगी। यदि लोक ऋण में 100 इकाइयों की वृद्धि होती है, तो निजी सम्पत्ति में 100 इकाइयों

की कमी होगी। यह निजी-पूंजी का शत प्रतिशत (100 प्रतिशत) विस्थापन कहलाता है। इसे ही दीर्घकालीन 100 प्रतिशत क्राउडिंग आउट (crowding out) कहा जाता है, किन्तु व्यवहार में 100 प्रतिशत विस्थापन नहीं होता है। बड़े पैमाने पर लोक ऋण के कारण ब्याज दर में वृद्धि हो सकती है तथा घरेलू बचत में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है। इनके अतिरिक्त, घरेलू पूँजी के स्टॉक को कम करने के स्थान पर सरकार विदेशों से ऋण ले सकती है। कितनी मात्रा में पूँजी का विस्थापन होगा, यह उत्पादन की स्थिति तथा घरेलू परिवारों एवं विदेशियों के बचत-सम्बन्धी आचरण पर निर्भर करेगा। इन तथ्यों को नीचे चित्र 2.1 में प्रस्तुत किया गया है।

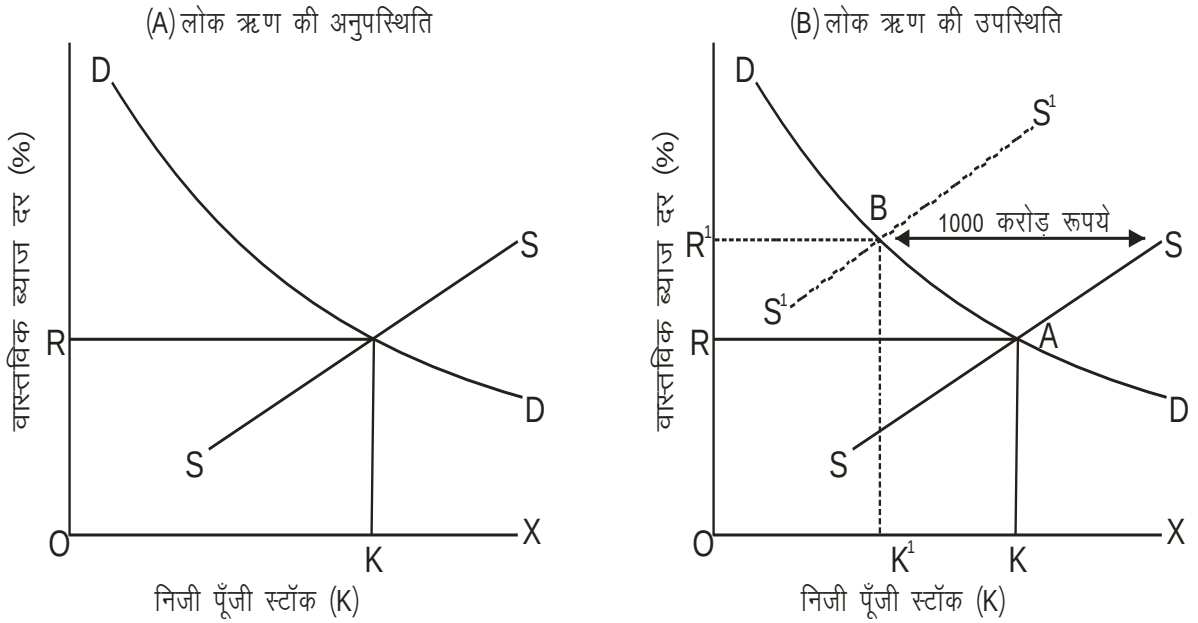

चित्र 2.1 लोक ऋण द्वारा निजी पूँजी का विस्थापन

DD पूँजी का माँग वक्र है, जबकि SS और S^1S^1 पूँजी की पूर्ति की रेखाएं हैं। फर्म के द्वारा पूँजी की माँग की जाती है जबकि व्यक्ति एवं परिवार निजी एवं लोक सम्पत्तियों में बचत करके पूंजी की आपूर्ति करते हैं। चित्र 2.1 (A) में लोक ऋण की अनुपस्थिति में सन्तुलन की स्थिति को दिखाया गया है। पूँजी का स्टॉक OK है तथा साम्य ब्याज दर OR रहती है।

चित्र 2.1 (B) में 1,000 करोड़ रूपए के लोक ऋण के प्रभाव को दिखाया गया है। ऋण के कारण शुद्ध पूँजी ;दमज बंचपजंसद्ध वक्र बाई ओर खिसक जाती है। उसे S^1S^1 वक्र द्वारा दिखाया गया है। इस स्थिति में सन्तुलन बाई ओर खिसक जाता है - A से B की ओर। ब्याज दर ऊँची हो जाती है- OR से बढ़कर OR^1 तथा पूँजी का स्टॉक KK^1 मात्रा के बराबर कम हो जाता है। चित्र 2.1 एक संकेत मात्र है, क्योंकि ऐसा कहना सम्भव नहीं है कि पूँजी का विस्थापन ठीक-ठीक कितनी मात्रा में होगा।

लोक ऋण एवं आर्थिक विकास (Public Debt and Economic Development)-

प्रो. सैम्यूएलसन तथा **प्रो. नॉरडॉस** का कहना है कि बड़ी मात्रा में लोक ऋण दीर्घकालीन आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव डालता है। इसके तीन प्रमुख कारण निम्न हैः

(1) समय के साथ ऋण के परिणाम में वृद्धि होने पर निजी पूँजी का विस्थापन (displacement) होता रहता है। लोग, सरकारी ऋणपत्र, मकान, शेयर, इक्विटी, बॉण्ड आदि खरीद कर बचत करते हैं। सरकारी ऋण में

वृद्धि होने पर लोग सरकारी ऋणपत्र अधिक मात्रा में खरीदते हैं तथा निजी कम्पनियों के शेयर, इक्विटी, बॉण्ड आदि कम खरीदते हैं। इसलिए सरकारी ऋण में अधिक परिमाण में वृद्धि तथा निजी पूँजी स्टॉक में कमी होती हैं। इससे राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर घट जाती है।

(2) बड़े पैमाने पर ऋण ब्याज चुकाने तथा मूलधन की वापसी के लिए अतिरिक्त कर लगाने की आवश्यकता होती है। कर में वृद्धि का क्षमता तथा योग्यता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे भी राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर धीमी पड़ जाती है।

(3) बाह्य ऋण में वृद्धि का भी बुरा प्रभाव राष्ट्रीय आय पर पड़ता है क्योंकि राष्ट्रीय उत्पति का बड़ा हिस्सा विदेशी ऋण पर ब्याज तथा मूलधन चुकाने के लिए चला जाता है। इससे राष्ट्रीय आय में कमी होती है। इसलिए **सैम्युलसन** तथा **नॉरडस** का कहना है कि ***''इन सभी प्रभावों को एक साथ लेने पर यही कहा जायेगा कि उत्पत्ति तथा उपभोग की वृद्धि धीमी पड़ जायेगी। ऐसा बड़ी मात्रा से सरकारी ऋण तथा घाटा की अनुपस्थिति मे नहीं होगा।''***

इस स्थिति की व्याख्या चित्र 2.2 में की गई है। चित्र में ठोस रेखाएं पूँजी तथा उत्पत्ति की वृद्धि की उस स्थिति को दर्शाती है जब सरकारी बजट सन्तुलित रहता है तथा कोई ऋण नहीं लिया जाता है, जब सरकारी बजट में घाटे के कारण ऋण लिया जाता है तब निजी पूंजी का विस्थापन होता है और साथ ही ऋण पर ब्याज चुकाने के लिए अतिरिक्त कर लगाए जाते हैं। राष्ट्रीय आय का एक भाग विदेशी ऋण पर ब्याज अदा करने के लिए देश के बाहर चला जाता है। इसलिए कुल पूँजी के स्टॉक में वृद्धि नहीं होती है। इसे चित्र में टूटी रेखा के द्वारा दिखाया गया है। इसी के अनुकूल टूटी रेखा उत्पति के हा्रस को दर्शाती है। इस प्रकार बड़ी मात्रा में सरकारी ऋण आर्थिक विकास के लिए हानिकारक है।

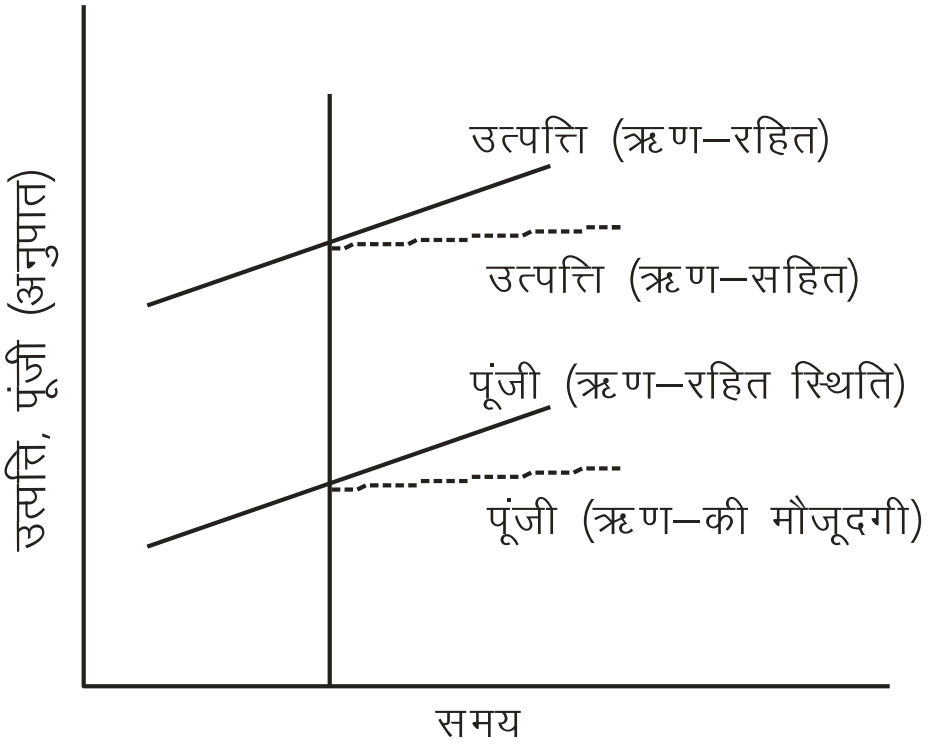

चित्र 2.2 ऋण एवं उत्पत्ति, पूंजी अनुपात

उपरोक्त विश्लेषण में यह मान लिया गया है कि उत्पत्ति की मात्रा पूंजी के स्टॉक से निर्धारित होती है। अधिक पूंजी अधिक उत्पत्ति तथा कम पूंजी कम उत्पत्ति। उत्पत्ति के घटने के दो कारण हैः (1) अधिक ऋण के कारण पूंजी का विस्थापन। (2) ऋण पर ब्याज के भुगतान के लिए करों में वृद्धि करने से कार्यकुशलता में कमी आती है। इससे उत्पत्ति घट जाती है।

2.6.3 विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व (Importance of Public Debt in Developing Countries)

विकासशील देशों में लगातार बढ़ते विकास व्यय के लिए वित्त जुटाना एक अत्यधिक कठिन समस्या है। वित्तीय साधनों को जुटानें के सन्दर्भ में ही कर की भूमिका पर बल दिया जाता है। किन्तु, करारोपण की भी सीमाएं हैं। इन सीमाओं के अतिक्रमण के पश्चात् आर्थिक प्रेरणा सम्बन्धी गम्भीर समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। इसलिए वित्तीय साधनों को जुटानें के सिलसिले में लोक ऋण के उपयोग की बात कही जाती है। लोक ऋण की दो विशेषताएं हैं- स्वैच्छिक प्रकृति तथा भुगतान की प्रत्याशा। इन्हीं कारणों से इसके सम्बन्ध में आर्थिक प्रेरणाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कम सम्भावना रहती है।

एक विकासशील देश में अपने आप बिना सरकारी समर्थन के पूर्ण रोजगार की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसीलिए विकासशील देशों में लोक ऋण का क्षेत्र काफी विस्तृत है। लोक ऋण द्वारा ऐसी बचत को उत्पादक कार्यों के लिए जुटाया जा सकता है जो इसकी अनुपस्थिति में संचय कर ली जाती है या जमीन तथा बहुमूल्य धातुओं जैसे अनुत्पादक व्यय पर खर्च कर दी जाती है। लोक ऋण द्वारा सार्वजनिक विनियोग के स्तर को ऊँचा किया जा सकता है। इस कारण कुल विनियोग का स्तर भी ऊँचा हो जाएगा जो सिर्फ करारोपण की स्थिति में सम्भव नहीं हो सकता।

एक अन्य तरीके से भी लोक ऋण आर्थिक विकास में योगदान देता है। व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का एक भाग परिसम्पत्ति के रूप में रखना चाहता है जिससे सुरक्षित आय प्राप्त हो। इसके आधार पर विनियोगकर्ता जोखिमपूर्ण व्यवसाय में अधिक धन लगा सकते हैं। स्थिर आय प्रदान करने वाले सरकारी बॉण्ड में विनियोग के कारण जो विश्वास पैदा हुआ उसी ने ब्रिटेन तथा अमेरीका में हिस्सा पूंजी (equity capital) के विस्तार में सहायता पहुँचायी।

लोक ऋण के स्तर का निर्धारण जिन कारकों से होता है वे हैं व्यक्तियों तथा व्यवसायियों के उधार देने की योग्यता एवं इच्छा तथा सरकार की कर लगाने की शक्ति तथा इच्छा। निम्न समीकरण द्वारा ऋण के उच्चत्तम स्तर को बताया जा सकता है:

$$D = \frac{Y_1 - C}{r}$$

जहां D = राष्ट्रीय ऋण की अधिकत्तम मात्रा, C = साधारण सरकारी क्रियाओं पर स्थिर व्यय, t = कर की दर तथा राष्ट्रीय आय (Y) का उच्चतम अनुपात तथा r = सरकारी ऋण पर ब्याज दर।

2.7 लोक ऋण की सह्यता तथा इष्टतम लोक ऋण (Sustainability of Public Debt and Optimal Public Debt)

लोक ऋण सीमा के अन्दर नहीं रहने पर घाटे के वित्त पोषण की प्रत्येक विधि से समष्टि असन्तुलन (macro economic imbalance) का सृजन हो सकता है। एक-सीमा के पश्चात् मुद्रा को छापने पर मुद्रास्फीति की सृष्टि होगी, विदेशी विनियम के उपयोग से विदेशी विनियम संकट का सृजन होगा जो विदेशी ऋण संकट को जन्म दे सकता है। आन्तरिक ऋण उस समय विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर सकता है, जब ब्याज की वास्तविक दरें (real interest rates) बढ़ते लगती है जिस कारण ऋण पर ब्याज का बोझ बढ़ने लगता है। ऋण पर ब्याज के बढ़ते भार के कारण और अधिक ऋण लेना पड़ेगा जो स्थिति को विस्फोटक बना देगा।

स्टैनले फिशर (Stanley Fishcher) का एवं विलियम इस्टरली (William Easterly) का कहना कि घाटा सहने योग्य है या नहीं, यह दो बातों पर निर्भर है-घाटे के आकार तथा अर्थव्यवस्था की विकास दर। विकास की दर में तीव्रता आने पर घाटे के आकार में वृद्धि हो सकती है। इस तर्क के आधार पर इसकी व्याख्या की जा सकती है कि क्योंकि भारत, मलेशिया, पाकिस्तान, तथा थाइलैण्ड जैसे देशों में जहाँ 1980-86 के मध्य विकास दर 5 प्रतिशत या उससे अधिक थी, बड़ी मात्रा में बजट घाटे को एक अंक में स्फीति के साथ कायम रखा जा सका। इसके विपरीत, अर्जेन्टीना तथा ब्राजील जैसे देशों में जहाँ विकास की दर प्रायः शून्य थी, बजट घाटे के कारण मुद्रास्फीति की दर चार अंको में रही। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि उन देशों में जहाँ विकास की दर ऊंची रहती है, बजट घाटे के आकार का कोई महत्व नहीं है। निष्कर्ष यह निकालना चाहिए कि जब तक आर्थिक विकास की दर ऊंची रहती है, बजट घाटे की मात्रा अधिक हो सकती है।

अंततः फिशर तथा इस्टरली अपने लेख में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ऋण की वहनीयता (sustainability) वास्तविक ब्याज दर तथा विकास की वास्तविक दर के साथ-साथ कर तथा लोक व्यय की कुशलता (effciency) पर भी निर्भर करती है। उन्होंने यह भी बताया कि ऐसा कहना सही नहीं होगा कि हर स्थिति में बजट घाटे से बचना चाहिए। संयत (moderate) मात्रा में बजट घाटे का वित्त पोषण ऊंची दर पर स्फीति, विनिमय संकट या ऋण में विस्फोटक वृद्धि की अनुपस्थिति में सम्भव है, लेकिन बड़ी मात्रा में बजट घाटा आर्थिक विकास तथा समष्टि आर्थिक स्थिरता के लिए खतरा है।

यहाँ ऋण-शोध क्षमता (solvency) तथा ऋण- सह्यता (sustainability) में अन्तर करना आवश्यक होगा। राष्ट्रीय आय की तुलना में आन्तरिक ऋण का उच्च स्तर या निर्यात आय की तुलना में बाह्य ऋण का ऊँचा स्तर तथा सरकारी बजट में लगातार बड़ी मात्रा में घाटे के कारण ऋणदाता के मन में सरकार तथा अर्थव्यवस्था की ऋण- शोध क्षमता के प्रति ऐसा सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि वे ऋण दायित्व का निर्वाह नहीं कर सकेंगे। सन्देह की यह स्थिति संकट को जन्म दे सकती है तथा ऋण के द्वारा घाटे का वित्त पोषण असह्य हो सकता है, क्योंकि सरकारी बाण्ड बाजार में बिकेंगे ही नहीं।

इसी तरह प्रो. मिहिर रक्षित (Mihir Rakshit) ने अपने लेखों **'Economics of the Government Budget Constraint'** एवं **'Budget Deficit Sustainability, Solvency and Optimality'** में लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) तथा उसके उच्चतम स्तर (optimality) का विश्लेषण किया है।

उनका कहना है कि क्योंकि लोक नीति का उद्देश्य सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों को प्रोत्साहित करना होता है, इसलिए बजट कार्यक्रम को इस आधार पर चुनना होगा कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर इसका योगदान बना रहे। दूसरे शब्दों में, लोक वस्तुओं का सिद्धान्त सरकारी उपभोग व्यय की अधिकतम कल्याणकारी मात्रा के निर्धारण के नियम को प्रतिपादित करता है।

सामान्यता लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) सम्बन्धी शर्तों का सम्बन्ध दीर्घकाल से होता है। अल्पकाल में अशिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव, बाजार सुविधाओं की कमी तथा परिवहन और संचार अवरोधों को दूर करने के लिए सरकार को बड़ी मात्रा में व्यय करने की जरूरत होती है। अल्प एंव मध्यम काल में, इस व्यय के एक बड़े भाग का वित्त पोषण लोक ऋण द्वारा ही होगा। रक्षित का कहना है कि जिस अर्थव्यवस्था में माँग-अपर्याप्तता (demand- deficiency) रहती है, वहाँ ऋण द्वारा लोक व्यय का वित्त पोषण आवश्यक है। ऐसे लोक व्यय से निजी निवेश की मात्रा बढ़ेगी (crowd in private invesment) इसलिए प्रकार निजी निवेश का बाहर जाना (crowding out) तथा ऋण सहायता दोनों ही सामान्यतः पूर्ण रोजगार प्राप्त अर्थव्यवस्था की ही समस्या है। रक्षित इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत जैसे विकाशील देशों के लिए अल्प एवं मध्यम कालीन ऋण लेना सामान्यतः इष्टतम होगा। लेकिन जैसे-जैसे आर्थिक ढाँचा अधिक सन्तुलित हो जाये तथा विकास की गति बढ़े लोक निवेश का अनुपात सकल घरेलु उत्पाद (GDP) में घटना चाहिये। दीर्घकालीन वहनीयता (sustainability) के साथ-साथ राजकोषीय नीति को धीरे-धीरे समाप्त करना (phasing out) भी आवश्यक है।

2.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. निम्न पर टिप्पणी लिखें।

(अ) लोक ऋण एवं कार्य करने की योग्यता पर प्रभाव।

(ब) लोक ऋण का उपभोग पर प्रभाव।

(स) लोक ऋण भार की अवधारणा।

(द) लोक ऋण भार की मौजूदा अवधारणा या राजा चेल्याह के विचार।

(य) लोक ऋण भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण।

(र) BDK प्रमेय।

(ल) लोक ऋण भार पर सैम्युलसन तथा नारडस के विचार।

(व) ऋण एवं आर्थिक विकास।

2.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के विश्लेषण से आप जान चुके हैं कि लोक ऋण के प्रभाव एवं भार की व्याख्या करते समय अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं है। निश्चित रूप से युद्ध, आर्थिक मन्दी, अन्य संकट कालीन स्थितियों में सरकार अपने कर, शुल्क, व्यवसायिक आय जैसे स्त्रोतों से अपना भारी व्यय पूरा नहीं कर सकती जिससे उसे घाटे का बजट बनाना पड़ता है। इस व्यय को पूरा करने हेतु आन्तरिक तथा बाह्य ऋण लेना पड़ता है। चूंकि सार्वजनिक व्यय को मय ब्याज चुकाना पड़ता है अतः इसका प्रभाव एवं भार करों के प्रभाव एवं भार से अलग होता है।

प्रस्तुत इकाई में, लोक ऋण के प्रभाव एवं भार की व्याख्या अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत की गयी है। प्रस्तावना, उद्देश्य, लोक ऋण के प्रभाव के अन्तर्गत उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनियोग तथा व्यापार क्रिया एवं रोजगार पर प्रभावों की व्याख्या की गयी है। तत्पश्चात् लोक ऋणों के भार की व्याख्या के अन्तर्गत ऋणभार की अवधारणा, आन्तरिक तथा बाह्य ऋण भार को स्पष्ट करते हुये **प्रो. राजा चेल्याह** द्वारा दी गयी लोक ऋण भार सम्बन्धी मौजूदा धारणा को समझाया गया है। पुनः लोक ऋण के भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण, सम्बन्धी रिकार्डो-पीगू प्रेमय, नव क्लासिकल प्रमेय, BDK प्रमेय, प्रो. बुकानन एवं प्रो. मसग्रेव के विश्लेषणों को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात लोक ऋण एवं आर्थिक विकास सम्बन्धी प्रो. डोमर के समीकरणों को स्पष्ट करते हुए प्रो. सैम्युलसन तथा प्रो. नारडस के विचारों को बताया गया है। इस तरह लोक ऋण के आर्थिक विकास पर प्रभावों को समझाया गया है। तत्पश्चात् विकाशील देशों में लोक ऋण के महत्व की गणितीय व्याख्या करने के साथ-साथ लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) तथा इष्टतम लोक ऋण की फिशर एवं इस्टरली तथा प्रो. रक्षित की व्याख्या स्पष्ट की गयी है।

संक्षेप में, यह पाया गया है कि विकासशील देशों में लोक ऋण एक सामान्य प्रक्रिया है परन्तु आर्थिक ढाँचा जैसे-जैसे सन्तुलित होता जाये तथा विकास की गतिशीलता बढ़ते क्रम में हो, लोक निवेश का अनुपात सकल घरेलू उत्पादन (GDP) में घटना चाहिये। दूसरे शब्दों में, लोक ऋण वहनीयता (sustainability) की सीमा से आगे नहीं होना चाहिये अन्यथा लोक ऋण बढने पर विकास की गति धीमी होती जायेगी। जिससे अन्ततः अर्थव्यवस्था में मन्दी की दशा आ जायेगी।

2.10 शब्दावली (Glossary)

- प्रक्रियात्मक या प्रारम्भिक प्रभाव - Processing or Preliminary Effects
- सम्पत्ति प्रभाव-Asset Effect
- हस्तान्तरण प्रभाव-Transfer Effect
- आय प्रभाव-Revenue Effect
- व्यय प्रभाव-Expenditure Effect
- स्फीति विरोधी-Anti - Inflationary
- नल विस्फोटक क्रिया-Pump Priming
- बाह्य प्रभाव-External Effect
- स्थापन-Replacement
- व्यावहारिकता-Expediency Effect
- भीड़ से बाहर निकालना प्रभाव-Crowding- Out Effect
- सरकारी दायित्व का भण्डार-Stock of Liabilities of Government
- विस्थापन-Displacement
- समष्टि आर्थिक असुन्तलन-Macro Economic Imbalance

- सह्यता-Sustainability
- ऋण-शोध क्षमता-Debt Solvency
- माँग- अपर्याप्तता-Demand Deficiency

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) ***Public Finance—Theory and Practice***, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) ***Lectures on Public Economics***, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) ***Handbooks of Public Economics***, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
- Buchanan, J.M. (1970) ***The Public Finances***, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) ***Public Finance and Fiscal Policy***, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) ***Principles of Public Finance***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
- Goode, R. (1986) ***Government Finance in Developing Countries***, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) ***Public Finance***, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) ***Modern Public Economics***, Routledge, London
- Mcnutt, P. (2002) ***The Economics of Public Choice***, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) ***Modern Public Finance***, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) ***Public Choice***, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) ***The Theory of Public Finance***, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) ***Finance Commissions and Fiscal Federalism in India***, New Century Publications, New Delhi

2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

2.14 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण के प्रभावों की विवेचना करें।
2. लोक ऋण के भार से आप क्या समझते है? आन्तरिक ऋण के विभिन्न प्रकार के भार की विवेचना करें।
3. क्या लोक ऋण का भार भावी पीढ़ी पर टाला जाता है ? इस सम्बन्ध में विभिन्न विचारों की विवेचना करें।
4. भार के हस्तान्तरण तथा आर्थिक विकास के मध्य के सम्बन्ध की जांच करें।
5. विकासशील देशों में लोक ऋण की भूमिका की विवेचना करें।
6. आन्तरिक लोक ऋण के विभिन्न प्रभावों का परीक्षण करें।
7. लोक ऋण की वहनीयता (sustainability) तथा इष्टतम लोक ऋण सम्बन्धी वर्तमान विचारधारा की विवेचना करें।
8. लोक ऋण का उत्पादन एवं वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट कीजिये।
9. लोक ऋण के आर्थिक प्रभावों पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई - 3 लोक ऋण भुगतान की विधियाँ एवं प्रबन्धन

(Methods of Payment and Management of Public Debt)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 लोक ऋण भुगतान

3.3.1 लोक ऋण के भुगतान या शोधन की विधियाँ

3.3.2 लोक ऋण के स्रोत

3.3.3 विकासशील देशों में विदेशी ऋण का महत्व

3.3.4 लोक ऋण में लघु बचतों का महत्व

3.3.5 सार्वजनिक ऋणों की सीमाएं

3.4 लोक ऋण का प्रबन्धन

3.4.1 लोक ऋण प्रबन्धन के सिद्धान्त

3.4.2 ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति

3.4.3 ऋण प्रबन्धन की समस्याएं

3.4.4 अल्पविकसित देशों में ऋण प्रबन्ध की समस्याएं

3.5 अभ्यास प्रश्न

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

इकाई में लोक ऋण के प्रभाव एवं भार को जान चुके हैं। इस इकाई में लोक ऋण भुगतान की विभिन्न विधियाँ एवं प्रबन्धन का अध्ययन करेंगे। इसके अन्तर्गत लोक ऋण भुगतान की विभिन्न विधियाँ - बजट अतिरेक, ऋण परिशोधन कोष, पूँजीकर, अवधिक वार्षिकी, ब्याज दर में ह्रास, ऋण अस्वीकृति, मुद्रा स्फीति द्वारा लोक ऋण का त्याग तथा ऋण रूपान्तरण का अध्ययन करते हुए इसके पक्ष विपक्ष का अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात् ऋण से सम्बन्धित आन्तरिक तथा बाह्य ऋणों के विभिन्न स्रोतों को समझते हुए उनके महत्व को समझ सकेंगे। मुख्यतः विकासशील देशों में लघु बचत के महत्व को समझने के साथ लोक ऋण के बाह्य तथा आन्तरिक सीमाओं को समझेंगे। पुनः ऋण प्रबन्धन से सम्बन्धित धनात्मक, तटस्थ तथा ऋणात्मक प्रबन्धन को समझते हुए अल्पविकसित देशों में लोक ऋण प्रबन्धन का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्याय के उपरान्त आप

- ✓ लोक ऋण भुगतान की विभिन्न विधियों को समझ सकेंगे।
- ✓ वास्तविक ऋण भुगतान तथा ऋण परिवर्तन एवं ऋण निषेध के अन्तर को समझते हुए इनके द्वारा भुगतान से उत्पन्न समाज की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को समझ सकेंगे।
- ✓ आन्तरिक तथा बाह्य ऋण स्त्रोतों को जान सकेंगे।
- ✓ विकासशील देशों में बाह्य तथा आन्तरिक ऋण के महत्व को जान सकेंगे।
- ✓ विकासशील राष्ट्रों में आन्तरिक ऋणों के अन्तर्गत लघु बचतों द्वारा समता मूलक विकास की अवधारणा को जान सकेंगे।
- ✓ सार्वजनिक ऋणों की सीमाओं को जान सकेंगे।
- ✓ ऋण प्रबन्धन का अर्थ समझते हुए इससे सम्बन्धित प्रो. टेलर तथा प्रो. राल्फ के विचारों को जान सकेंगे।
- ✓ ऋण प्रबन्धन से सम्बन्धित धनात्मक, तटस्थ तथा ऋणात्मक ऋण प्रबन्धन को जान सकेंगे।
- ✓ ऋण प्रबन्धन की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ विकासशील राष्ट्रों में ऋण प्रबन्धन की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।

3.3 लोक ऋण भुगतान (Payment or Redemption of Public Debt)

3.3.1 लोक ऋण के भुगतान या शोधन की विधियाँ (Methods of Payment or Redemption of Public Debt)

सामान्यतया सरकार जब ऋण लेती है तो उसी समय यह भी निश्चित कर लिया जाता है कि ऋण का भुगतान किस तरह से किया जायेगा। लोक ऋणों का भुगतान इसलिये भी जरूरी है, क्योंकि इस पर सरकार की साख निर्भर रहती है और ऋणों का भुगतान जब तक नहीं हो जाता तब तक उनका भार वर्तमान तथा भावी पीढ़ी पर निरन्तर पड़ता रहता है।

सामान्यतया बाह्य अथवा विदेशी ऋण का भुगतान केवल आवश्यक विदेशी विनिमय अर्थात् विदेशी मुद्रा द्वारा अथवा सम्बन्धित देश को निर्यात बढ़ा कर ही किया जा सकता है। इसका देश के आंतरिक करारोपण से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि विदेशी ऋणों का उपयोग उन उद्योगों में किया जाय जिनकी उत्पादन क्षमता अधिक हो तथा जिनसे निर्मित माल का निर्यात किया जा सके। निर्यात योग्य माल का अतिरेक उन वस्तुओं का होना चाहिए जिन्हें सुगमतापूर्वक विदेशों में बेचा जा सके। पुराने विदेशी ऋणों का भुगतान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेन्सियों तथा अन्य स्रोतों से भी ऋण प्राप्त किया जा सकता है, जबकि आन्तरिक ऋणों का भुगतान देश के अन्तर्गत देश की मुद्रा में करना होता है। लोक ऋण के भुगतान प्रमुख विधियाँ निम्न है:

1 बजट अतिरेक (Budget Surplus)

सरकार अपने ऋणों का भुगतान करने के लिए बजट आधिक्य या बजट अतिरेक कर प्रयोग कर सकती है। बजट में आधिक्य तब होता है जब सरकार अपनी आय के मुकाबले व्यय कम करे और इस प्रकार होने वाली बचत को ऋण के भुगतान में प्रयोग करे। आजकल सरकारों के बजट में आधिक्य या बचत के स्थान पर घाटा होने की अधिक सम्भावना होती है। अतः ऋण शोधन की यह विधि अधिक कारगर नहीं सिद्ध हो पाती।

2 निक्षेप निधि अथवा ऋण परिशोधन कोष (Sinking Fund)

सरकार द्वारा नियोजित ढंग से ऋण में शोधन करने का यह सबसे उत्तम तरीका है। इस विधि के अन्तर्गत जब कोई ऋण निर्गमित किया जाता है तो उसके भुगतान के लिए सरकार एक कोष का निर्माण कर लेती है, जिसे ऋणशोधन कोष कहते हैं। इस कोष में सरकार प्रतिवर्ष निश्चित राशि जमा करती जाती है और अन्त में जब ऋण का भुगतान करना हो तो इस कोष से धन निकाल कर ऋण का भुगतान कर देती है। इस प्रकार के ऋण कोषों का निर्माण सरकार कर, ऋण, विनियोग से प्राप्त मौद्रिक आय तथा नये नोटों के निर्गमन के द्वारा कर सकती है, पर इसमें नोटों के निर्गमन तथा ऋणों के द्वारा ऋण कोष का निर्माण करना ठीक नहीं। ऋण के द्वारा कोष का निर्माण करना तथा उससे भुगतान करना तो ऋण का वास्तव में भुगतान नहीं हुआ बल्कि एक ऋण के स्थान पर दूसरे ऋण का निर्गमन ही हुआ। यह विधि तो हीनार्थ प्रबन्धन ही है, जिससे अर्थव्यवस्था में मूल्यों के बढ़ने की प्रवृत्ति आ जाती है। इसके स्थान पर यदि सरकार अपनी राजकीय आय में से कुछ बचाकर कोष में डालती जाय तो यह विधि अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी।

प्रो. डाल्टन ने शोधन कोषो को दो भागों में बांटा है - (1) निश्चित शोधन कोष (2) अनिश्चित शोधन कोष। निश्चित कोष वह है, जिसमें सरकार अपने वार्षिक आय में से एक निश्चित रकम प्रतिवर्ष जमा करती रहती है। इसके विपरीत अनिश्चित कोष उसे कहते हैं, जिसमें डाली जाने वाली धनराशि अनिश्चित और अनियमित होती है। अनिश्चित कोष का आकार अर्थात् उसमें जमा होने वाली राशि इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार के बजट में अतिरेक कितना है। यदि बजट में बचत अधिक होती है तो कोष में अधिक राशि डाल दी जाती है और बचत के न होने पर उस वर्ष कोष में कुछ भी नहीं डाला जाता।

ऋण परिशोधन कोष की स्थापना के आधार(Bases of Debt Sinking Fund)-

इस कोष की स्थापना मुख्यतः तीन आधारों पर की जाती है:

(1) ऋण के भुगतान की अवधि - ऋण के भुगतान का समय जितना कम होता है आर्थिक दृष्टि से वह उतना ही अच्छा समझा जाता है, क्योंकि इससे सरकार व समाज पर पड़ने वाला भार जल्दी समाप्त हो जाता है। उल्लेखनीय है कि अनुत्पादक ऋणों जैसे युद्ध सम्बन्धी ऋणों की भुगतान अवधि कम से कम होनी चाहिए। इसी प्रकार उत्पादक ऋणों का भुगतान, पूँजीगत वस्तुओं के जीवनकाल अर्थात् उनके नष्ट होने तक अवश्य हो जाना चाहिए।

(2) परिशोधन कोष के भुगतानों का वितरण - अवधि को तय करने का बाद यह निश्चित करना पड़ता है कि भुगतान का ढंग क्या रखा जाए अर्थात् भुगतान कोषों को इस अवधि पर किस प्रकार फैलाया जाय? भुगतान की तीन विधियाँ हो सकती हैं - (1) बढ़ते हुए वार्षिक भुगतान (2) निश्चित या समान भुगतान तथा (3) घटते हुए वार्षिक भुगतान। इन तीनों विधियों में से अन्तिम विधि सबसे अच्छी समझी जाती है क्योंकि ऋण की जितनी अधिक मात्रा प्रतिवर्ष कम होती जायेगी, कोष में जमा की जाने वाली रकम और ऋण-भार दोनों घटते जाएंगे। इसका एक लाभ यह भी होता है कि इन कोषों का वित्तमंत्री द्वारा अन्य कार्यों के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकेगा, जिसका खतरा प्रायः बना रहता है।

(3) विभिन्न प्रकार के ऋणों के भुगतान की व्यवस्था - परिशोधन-कोष का प्रयोग किसी ऋण विशेष के लिए अथवा विभिन्न प्रकार के ऋणों के भुगतान के लिये भी किया जा सकता है। चूँकि सभी प्रकार के ऋण एक-सी प्रकृति के नहीं होते, अर्थात् उनकी अवधि, भुगतान की विधि तथा ब्याज दर में अन्तर पाया जाता है। इसलिये जब कभी सरकार को एक समय में कई ऋणों का एक-साथ भुगतान करना पड़ता है, तब सरकार के सामने तीन विकल्प हो सकते हैं - (1) परिशोधन कोष को बिल्कुल स्वतंत्र छोड़ दें, या (2) उसे किसी ऋण-विशेष के लिये निश्चित कर दें अथवा (3) कोष का कुछ भाग किसी ऋण-विशेष के लिये निर्धारित कर दें और शेष भाग को स्वतंत्र छोड़ दें, अर्थात् इस भाग का उपयोग सरकार अपनी इच्छानुसार कर ले। वास्तव में तीसरा तरीका ही सबसे अच्छा है। क्योंकि इसमें एक तरफ सरकार कोष का सर्वोपयुक्त ढंग से उपयोग कर सकती है, तो दूसरी तरफ उसे मनमानी करने की पूरी स्वतंत्रता भी नहीं मिल पाती। यदि सरकार को कोष के प्रयोग के लिए पूर्णतः स्वतंत्र छोड़ दिया जाये तो कोष का सही उपयोग कभी भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि सरकार को विश्व का सबसे खर्चीला प्राणी माना जाता है।

3. पूँजी कर (Capital Levy)

सरकार अपने अत्यधिक बढ़े ऋणों के भुगतान हेतु कोई विशेष कर या पूँजी कर लगा सकती है। इस कर का आशय वास्तव में जल्दी से जल्दी ऋण भार से मुक्ति पाना है, जिसके लिए सामान्य करारोपण के अलावा अलग से कर लगाये जाते हैं। यह कर व्यक्तियों की सम्पत्ति तथा आय के ऊपर लगाया जाता है, जिसका आधार प्रगतिशील होता है। सर्वप्रथम सम्पत्ति की न्यूनतम कर रहित सीमा निर्धारित की जाती है और इस सीमा के ऊपर वाले प्रत्येक व्यक्ति पर बढ़ती दर से करारोपण किया जाता है। रिकार्डो व उसके अनुयायी पूँजी कर के प्रबल समर्थक थे, जिसका समर्थन करते हुए **डाल्टन** कहते हैं कि ***"ऋण को सरलतापूर्वक निपटाने हेतु पूँजी कर***

अपने गुणों के कारण सबसे अच्छी नीति है। वह (डाल्टन) इसे 'ऋण परिशोधन कर' भी कहते हैं। यह कर सभी तरह की पूँजी पर लगाया जा सकता है।" यह कर संभवतः एक पीढ़ी पर एक बार लगाया जाता है तथा इससे प्राप्त आय से ऋण का भुगतान किया जाता है। हाब्सन, पीगू, एजवर्थ अन्य इसके समर्थक थे, जबकि अन्य इसके प्रबल विरोधी थे। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद इंगलैण्ड में इस कर का प्रस्ताव रखा गया था किन्तु इसने काफी विवाद को जन्म दिया। परन्तु बाद में जर्मनी, इटली तथा अन्य देशों में पूँजी कर लगाया गया।

3.1 पूँजी कर के पक्ष में तर्क - पूँजी कर के पक्ष में निम्न तर्क दिए जाते हैं:

1) युद्धकाल में उद्योगपति, व्यवसायी, व्यापारी, आदि जैसे धनी वर्गों को कीमत वृद्धि के कारण विशाल लाभ प्राप्त होता है। इसलिए युद्धोत्तर काल में इन वर्गों पर प्रगतिशील पूंजी कर लगाकर युद्धकालीन ऋण का भुगतान करना चाहिए।
2) युद्धकाल में लोक ऋण की मात्रा में बहुत अधिक वृद्धि होती है। युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् यदि इसे तुरन्त वापस नहीं कर दिया जाए तो इसका भार असहनीय हो सकता है। तुरन्त वापसी का एक ही तरीका है, प्रगतिशील पूँजी कर।
3) पूँजी कर के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क दिया जाता है कि इससे करों के भार में कमी होगी तथा इसके फलस्वरूप करारोपण में कमी होगी।
4) पूँजी कर के पक्ष में यह भी कहा जाता है कि यह करदान योग्यता पर आधारित है अतः इससे आय के वितरण में समानता मिलेगी।

3.2 पूँजी कर के विपक्ष में तर्क - पूंजी कर के विपक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं:

1) यह कहा जाता है कि पूँजी कर से देश की कार्यशील पूँजी का ह्रास होता है, अतः व्यापार एवं उत्पादन कर का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, किन्तु यह तर्क पूर्ण रूप से सही नहीं है, क्योंकि इसमें सम्पत्ति के अंश का हस्तान्तरण निजी व्यक्तियों से सरकार को होता है। अतः इसे पुनर्वितरण कहा जा सकता है न कि पूँजी का ह्रास।
2) पूँजी कर की सम्भावना को देखते हुए लोग पूँजी देश के बाहर रख सकते हैं। इस कदम से देश के आर्थिक विकास को नुकसान पहुँच सकता है।
3) यह भी कहा जाता है कि पूँजी कर से बचत और मितव्ययिता हतोत्साहित होती है। परन्तु इस तर्क में भी वजन नहीं है, क्योंकि पूँजी कर सिर्फ एक ही बार लगाया जाता है, बार-बार नहीं। अतः इससे बचत में अधिक अवरोध पैदा नहीं होता।

4 अवधिक वार्षिकी (Terminable Annuity)

ऋण शोधन की इस विधि का सबसे अधिक समर्थन **ग्लैडस्टोन** ने किया। इसके अन्तर्गत ऋण की अवधि में देय मूलधन तथा ब्याज की राशि को किश्तों में बाँट दिया जाता है तथा प्रतिवर्ष इसका भुगतान कर दिया जाता है। इस रीति के अन्तर्गत ऋण का भार प्रति वर्ष कम होता रहता है और अवधि के समाप्त होने पर ऋण का शोधन पूरा हो चुका होता है। इससे सरकार पर ऋण का भार इकट्ठा नहीं हो पाता तथा सरकार की साख अच्छी बनी रहती है। यह विधि सामान्यतया स्थायी तथा दीर्घकालीन ऋणों के लिए अपनायी जाती है।

5 ब्याज दर में ह्रास (Reduction in the Rate of Interest)

वित्तीय संकट के समय सरकार कभी-कभी कानून का सहारा लेकर ब्याज की दर में कटौती की एकतरफा घोषणा कर सकती है। इससे ब्याज की मात्रा घट जाएगी और ऋण का भार घट जाएगा। साधारण परिस्थिति में ऐसी विधि की सहायता नहीं ली जाती है। इसे ऋण के भुगतान की असामान्य (Extraordinary) विधि के रूप में ही समझना चाहिए।

6 ऋण अस्वीकृति (Debt Repudiation)

ऋण के भुगतान का यह सबसे अधिक आसान तरीका है। इस विधि के अन्तर्गत सरकार ऋण तथा ब्याज का भुगतान करने से अस्वीकार कर देती है। इस तरीके को सामान्य परिस्थितियों में अपनाया नहीं जा सकता क्योंकि ऐसा करने पर सरकार की साख समाप्त हो जाती है तथा भविष्य में उसे ऋण प्राप्त नहीं हो सकता। इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब सरकार ने विदेशी ऋण को वापस करने से इनकार कर दिया है। कम्युनिस्ट क्रान्ति के पश्चात् 1917 में रूस ने इसी विधि को अपनाया। डाल्टन इसे ऋण शोधन के तरीके के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह ऋण के शोधन का तरीका नहीं हैं, बल्कि जबरदस्ती ऋण को नष्ट करना है या किसी दूसरे की सम्पत्ति को हड़पना है इस प्रकार के ऋण शोधन के तरीके का प्रयोग सरकार ही कर सकती है क्योंकि वह एक प्रभुता सम्पन्न संस्था है, कोई व्यक्ति नहीं कर सकता है सामान्यतया कोई भी सरकार ऋण शोधन के इस तरीके का प्रयोग नहीं करती है क्योंकि इससे सरकार से जनता का विश्वास उठ जाता है।

यद्यपि कि ऋणशोधन का यह तरीका सरल तो है पर अन्यायपूर्ण है। विदेशी ऋणों के भुगतान के लिए तो इस रीति को नहीं अपनाया जा सकता है क्योंकि कभी-कभी ऐसी स्थिति में युद्ध तक छिड़ जाते हैं। रूस की क्रान्ति के बाद वहाँ की साम्यवादी सरकार ने इस रीति का प्रयोग किया था जबकि उसने सरकार द्वारा लिए गये ऋणों का भुगतान करने से इन्कार कर दिया। जिसके फलस्वरूप रूस को बाद में बहुत सी आर्थिक हानियाँ उठानी पड़ी थी।

7 मुद्रा स्फीति द्वारा लोक ऋण का त्याग (Debt Repudiation through Inflation)

कभी-कभी सरकार मुद्रा-स्फीति के कारण छिपे रूप में ऋण की अदायगी करती है। यह इस पर निर्भर करता है कि ऋण जारी करने के समय स्फीति का पूर्वानुमान किया गया था या नहीं तथा इस पूर्वानुमान को मौद्रिक ब्याज दर में शामिल किया गया था या नहीं। अल्पकालिक ऋण की स्थिति में स्फीति को ब्याज में शामिल कर लिया जाता है। दीर्घकालिक ऋण में इसकी सम्भावना कम रहती है। यदि किसी देश के लोक ऋण का अधिकांश अल्पकालिक ऋण हो तो स्फीति ऋण अदायगी का महत्वपूर्ण माध्यम नहीं हो सकती है।

8 ऋण रूपान्तरण (Debt Conversion)

ऋण परिवर्तन ऋण शोधन की सबसे प्रचलित विधि है। इस नीति के अन्तर्गत सरकार वर्तमान ऋणों को वास्तविक रूप में भुगतान नहीं करती बल्कि पुराने ऋणों को नये ऋणों में परिवर्तित कर देती है। सरकार इस नीति का प्रयोग विशेष रूप से तब करती है, जब ऋण को चुकाने की तिथि तो निकट आ जाती है परन्तु सरकार ऋण का भुगतान करने में असमर्थ रहती है। इस प्रक्रिया को ऋण का नवीनीकरण भी कहा जा सकता है। सामान्यतया यह देखा जाता है कि सरकार ऋण परिवर्तन को एच्छिक कर देती है अर्थात छूट देती है कि जो चाहे वह ऋण को दूसरे ऋण में परिवर्तित करे और जो न चाहे अपने ऋण को भुगतान नकद रूप में प्राप्त कर ले। **व्यूहलर** के अनुसार,

''साधारण ब्याज की दरों में आयी कमी से लाभ उठाकर, अपने ब्याज के भार को कम करने के उद्देश्य से वर्तमान ऋणों को नए ऋणों में बदलने को ही ऋण परिवर्तन कहते हैं।''

ऋण शोधन की यह विधि अत्यन्त ही सरल तथा उत्तम है। विशेष रूप से उन अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ एक ओर पूँजी तथा कर-आय की कमी हो तथा दूसरी ओर मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति अत्यन्त ही बलवती हो। नए करारोपण के मौद्रिक तथा मनोवैज्ञानिक बोझ तथा आय के वितरण में उत्पन्न होने वाली विषमता से जनता बच जाती है। यह कहा जाता है कि यह ऋण शोधन का ढंग नहीं बल्कि ऋण के भुगतान को स्थगित करना मात्र है।

9 ऋण पुनः शोधन (Debt Refunding)

सामान्यतया लोग ऋण परिवर्तन तथा ऋण-पुनः शोधन के बीच भेद नहीं करते हैं पर यह ठीक नहीं है। ऋण परिवर्तन की स्थिति में ऋणदाता के ऋण का भुगतान उसी को नयी प्रतिभूति (ऋण-पत्र) देकर किया जाता है, इस प्रकार यह तो ऋण का नवीनीकरण है, जबकि ऋण पुनः शोधन के अन्तर्गत सरकार नयी राजकीय प्रतिभूतियों को पहले बाजार में निर्गमित करती है तथा उसकी विक्रय प्राप्ति से पुराने ऋणों का भुगतान कर देती है। इस स्थिति में यह कोई आवश्यक नहीं है कि पुराना ऋणदाता, ऋणदाता के रूप में बना रहे; यदि उसने भुगतान के लिए निर्गमित नयी प्रतिभूतियों को न खरीदा हो, पर ऋण परिवर्तन में ऋण-शोधन के बाद भी वही ऋणदाता बना रहता है। प्रायः नये ऋण कम ब्याजदर पर निर्गमित किये जाते हैं और प्राप्त राशि से ऊँची ब्याज दर वाले ऋणों का भुगतान कर दिया जाता है। ऋण शोधन की यह विधि इस दृष्टि से तो ठीक है कि इसमें ऋण के भुगतान के लिए करारोपण का सहारा नहीं लेना पड़ता पर यह विधि ठीक नहीं क्योंकि इससे सरकार के ऋणदायित्व में कमी नहीं आती।

इस प्रकार यह भी ऋण का स्थगन हुआ, शोधन नहीं। यह विधि ऋण परिवर्तन-विधि से इस दृष्टि से उत्तम है कि इसमें सामान्तया ब्याज दर या ब्याज की कुल देय राशि में कमी आ जाती है। इसके अन्तर्गत सामान्तया ऋणपत्र अपेक्षाकृत कम ब्याजदर पर निर्गमित किये जाते हैं परन्तु इसमें यह भय बना रहता है कि इसके कारण स्फीतिक प्रवृत्ति बल पकड़ सकती है। यदि नयी निर्गमित प्रभूतियों को जनता ने न खरीदा हो बल्कि केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंकों ने खरीदा हो, पर इस प्रकार का भय परिवर्तन विधि में नहीं है।

उपरोक्त ऋण भुगतान की विधियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 1 से 4 तक की विधियों (1. बजट अतिरेक, 2. निक्षेप निधि अथवा ऋण परिशोधन कोष; 3. पूँजी कर, 4. अवधिक वार्षिकी) के अन्तर्गत ऋणों का वास्तविक तथा ब्याज एवं मूलधन का तय दर पर भुगतान होता है। जबकि 5वीं विधि में ब्याज दर में ह्रास से ऋणदाता को नुकसान होता है। 6वीं विधि ऋण अस्वीकृति से ऋणदाता को कुछ भी प्राप्त नहीं होता तथा सरकार की साख बहुत गिर जाती है। 7वीं मुद्रा स्फीति विधि में भी ऋणदाता को हानि होती है जबकि 8वीं एवं 9वीं विधि (क्रमशः ऋण रूपान्तरण तथा ऋण पुनः शोधन) में सामान्तया ऋण का नया रूपान्तरण तथा स्थगन होता है। परन्तु ऋण चुकाने की उपरोक्त विधियों में से कौन सी विधि अपनायी जानी चाहिए, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह बात ऋण का भुगतान करने वाले देश की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। जिस देश में जैसी परिस्थिति होगी वह उसी के अनुरूप ऋण शोधन की विधि अपनाएगा।

3.3.2 लोक ऋण के स्रोत (Sources of Public Debt)

लोक ऋण को स्रोतों के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-(अ) आंतरिक ऋण तथा (ब) बाह्य ऋण।

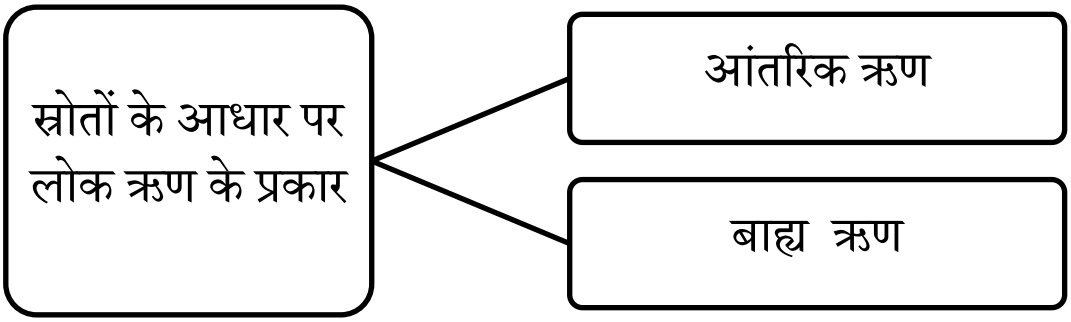

(अ) आंतरिक ऋण के स्रोत-

(1) व्यक्तियों द्वारा- राज्य बाण्डों (बन्ध पत्रों) व प्रतिभूतियों के माध्यम से व्यक्तियों से ऋण प्राप्त करता है। इसके फलस्वरूप साधन निजी उपभोग से हटकर सार्वजनिक उपभोग में चले जाते हैं। जब व्यक्ति राज्य को ऋण प्रदान करते हैं तो सामान्तया इसका प्रभाव उनकी आय के उस भाग पर पड़ता है जिसे वे बचाते हैं। राज्य जब लोक ऋण के माध्यम से लोगों की बचत को एकत्रित कर निवेश करता है तो इससे व्यक्तियों व समाज दोनों को लाभ होता है। व्यक्तियों को ब्याज प्राप्त हो जाता है तथा अर्थव्यवस्था की उत्पादकता बढ़ती है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में सामान्तया निम्न स्तर पर बचत करने वाले लोगों की बचतें निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। उन्हें एकत्र कर निवेश करने का समुचित प्रयास नहीं किया जाता। इस हेतु राज्य साधन संग्रह में सफलता हेतु कई छोटी बचत योजनायें लागू करता है।

(2) गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं- गैर - बैंकिंग वित्तीय संस्थायें जैसे-बीमा कम्पनियाँ, यू.टी.आई., डाकघर आदि भी राज्य के लिए ऋण प्राप्त करने के स्रोत हैं। यद्यपि इन संस्थाओं द्वारा निजी क्षेत्र में भी निवेश किया जा सकता है किन्तु उनकी कम विश्वसनीयता के कारण ये संस्थाएं सरकारी बाण्ड तथा प्रतिभूतियाँ क्रय करना अधिक सुरक्षित समझती हैं। इन संस्थाओं को सरकारी बाण्ड व प्रभूतियों पर यद्यपि ब्याज अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है फिर भी जोखिम से बचने के लिए ये संस्थाएं सरकार को ही ऋण देना पसंद करती हैं। यही नहीं इन कम्पनियों की सरकारी प्रतिभूतियाँ की अधिक क्रय मात्रा लोगों में इनकी विश्वसनीयता बढ़ाती है।

(3) व्यापारिक बैंक- व्यापारिक बैंकों द्वारा भी सरकार को ऋण उपलब्ध हो सकता है। ऋण प्रदान करने के लिए व्यापारिक बैंक साख-निर्माण का कार्य करते हैं तथा अपने नकद-कोष के आधार पर राज्य से प्रतिभूतियाँ आदि क्रय करते रहते हैं। जब तक बैंकिंग व्यवस्था से नकद धनराशि नहीं निकाली जाती, बैंकों के खातों में घटा-बढ़ी मात्र होती रहती है क्योंकि चेकों के माध्यम से भुगतान होता रहता है। यदि

अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान है तो अतिरिक्त मुद्रा निर्माण से स्फीति की दशा उत्पन्न होने का भय बना रहता है।

(4) केन्द्रीय बैंक- केन्द्रीय बैंक सरकारी ऋण प्राप्ति का सबसे प्रमुख स्रोत है। सरकारी प्रतिभूति के आधार पर केन्द्रीय बैंक सरकार को ऋण प्रदान करता है। क्योंकि केन्द्रीय बैंक सरकार के बैंक के रूप में कार्य करते हैं। अतः सरकार के खाते में ऋण के रूप में दी गयी राशि जमा कर दी जाती है। केन्द्रीय बैंक से लिए गए ऋण का अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी प्रभाव पड़ता है जिस पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना आवश्यक होता है।

इस तरह, ऋण के उपरोक्त स्रोतों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है- बाजार ऋण तथा गैर-बाजार ऋण। बाजार ऋण के अन्तर्गत उन ऋणों को रखा जाता है जो जनता से विनिमय के द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों अथवा बिलों को बेचकर प्राप्त किया जाता है। इन्हें मुद्रा तथा पूँजी बाजार में बेचा जाता है तथा इनकी बाजार कीमत का उल्लेख किया जाता है। जबकि वे ऋण जिन्हें गैर-विनिमय साध्य स्रोतों से प्राप्त किया जाता है जिन्हें बाजार में खरीदा अथवा बेचा नहीं जा सकता उसको गैर-बाजार ऋण कहा जाता है। ऐसे ऋण के उदाहरण हैं-राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र तथा डाकघर के बचत खाते में जमा राशि।

तैरता अथवा अस्थायी (Floating or Temporary) ऋण वह होता है जिसका भुगतान ऋण जारी होने के 12 महीने के अंदर ही किया जाता है। सामान्यतया अनिधिक ऋण (Unfunded Debt) को तैरता ऋण कहा जाता है। स्थायी अथवा निधिक (Permanent or Funded) ऋण वे होते हैं जिनका भुगतान ऋण जारी करने की तिथि से 12 महीने बाद होता है। इस तरह के ऋण दो प्रकार के हो सकते हैं-निश्चित अवधि के लिए या अनिश्चित अवधि के लिए। पहले को समाप्य निधिक ऋण (Terminable Funded- Debt) तथा दूसरे को असमाप्य निधिक ऋण (Interminable Funded- Debt) कहा जाता है।

मुद्रा तथा पूँजी बाजार एवं आर्थिक दशाओं में भिन्नता के फलस्वरूप विभिन्न विकासशील देशों में ऋण प्राप्त करने की भिन्न-भिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया वित्तीय संस्थाओं तथा आम जनता से ऋण प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी सरकारें कुछ विशेष परिस्थितियों में अनिवार्य ऋण ले सकती हैं अथवा अनिवार्य बचत योजना लागू कर सकती हैं।

(ब) बाह्य या अन्तर्राष्ट्रीय ऋण के स्रोत

आधुनिक आर्थिक विकास की प्रकृति व तीव्र गति से आर्थिक विकास की आवश्यकता तथा आंतरिक साधनों की सीमितता के कारण बाह्य ऋण विकासशील देशों के लिए एक अनिवार्यता है। इनके बिना ये देश अपना वांछित विकास नहीं कर सकते। यही कारण है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाएं उपलब्ध आंतरिक स्रोतों के साथ-साथ भारी मात्रा में अंतर्राष्ट्रीय स्रोतों से भी ऋण प्राप्त करने का प्रयास करती हैं।

विकासशील देशों की सरकारें अपने विकास कार्यक्रमों हेतु विकसित देशों की सरकारों से ऋण प्राप्त करती हैं, साथ ही अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं भी इन देशों को ऋण उपलब्ध कराती हैं। ये संस्थाएं हैं-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम, अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ आदि। इनके अतिरिक्त कुछ विशेष क्षेत्रों के विकास हेतु भी संस्थाओं जैसे-एशियन विकास बैंक आदि से भी ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

3.3.3 विकासशील देशों में विदेशी ऋण का महत्व (Importance of Foreign Debt in Developing Countries)

विकासशील देशों में विदेशी ऋणों का निम्न महत्व हो सकता है:

1. युद्ध के समय पर्याप्त आन्तरिक ऋण प्राप्त नहीं हो सकते हैं, इसलिए बाह्य ऋणों की सहायता ली जाती है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसने युद्ध के संचालन हेतु ऋण न लिया हो। द्वितीय विश्वयुद्ध में इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि अनेक देशों ने विदेशी ऋण लेकर युद्ध का संचालन किया था। आज भी युद्धों के संचालन के लिए विदेशी ऋणों की माँग बढ़ती जा रही है।
2. प्राकृतिक प्रकोपों जैसे भूकम्प, बाढ़, सूखा तथा तूफान के कारण देश में अपार जन-धन की हानि होती है। देश में इस क्षति की पूर्ति के लिए साधनों का अभाव रहता है। लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं रह जाती है कि वे स्वयं अपनी क्षतिपूर्ति कर सकें। स्वयं सरकार भी ऐसी दशा में अपने देश के नागरिकों से ऋण प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती। तब उसके सामने बाह्य ऋणों को प्राप्त करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं रह जाता।
3. आर्थिक विकास की समस्या विकसित देशों की अपेक्षा विकाशील देशों में अधिक है। ये देश में कृषि की प्रधानता, अधिक जनसंख्या, बचत व पूँजी की कमी, अशिक्षा, बीमारी व परम्परागत व्यापार के कारण साधनों के अभाव में अपने बलबूते पर अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकते हैं। इसलिए बाह्य ऋणों की सहायता के बिना इन देशों का आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। चूँकि इन देशों को धन के अतिरिक्त वैज्ञानिक, तकनीशियन, यन्त्र व मशीनों आदि को भी विदेशों से आयात करना होता है, ऐसी दशा में न चाहते हुए भी इन्हें विदेशी ऋण लेना आवश्यक होता है।
4. जब विकासशील देशों में मन्दी आती है तब इन देशों में बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा मुद्रा की मात्रा में कमी आ जाने से दीर्घकालीन विनियोगों को पूरा नहीं किया जा सकता है। इसलिए क्रयशक्ति को बढ़ाने वाले उद्योग-धन्धों के विकास के लिए विदेशी ऋणों का महत्व बढ़ जाता है।
5. विनाशकारी घटनाओं के घटने के कारण देश के सामने पुनर्निर्माण की समस्या उत्पन्न होती है, इसकी क्षतिपूर्ति के लिए देश को बहुत बड़े पैमाने पर धन व्यय करना पड़ता है। जैसे युद्ध के समय हवाई पट्टियों व रेलवे लाइनों की तोड़-फोड़, बन्दरगाहों के विनाश, बाँध व कल-कारखानों के ऊपर किये गये हवाई हमलों से देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ ही टूट जाती है। ऐसी दशा में बाह्य ऋणों का बहुत महत्व होता है।
6. विकासशील देशों में तकनीकी यन्त्रों का काफी अभाव होता है इसलिए विदेशी ऋणों की सहायता से इन यन्त्रों को आसानी से आयात किया जा सकता है।
7. विदेशी विनिमय के लिए भी बाह्य ऋणों की आवश्यकता पड़ती है। जिस देश में निर्यातों की अपेक्षा आयात अधिक होते हैं, वह देश आयातों का भुगतान करने के लिए ऋणों की सहायता लेता है।

विकासशील देशों के लिए विदेशी ऋणों का महत्व तो है परन्तु लगातार विदेशी ऋणों पर निर्भरता देश के लिए घातक हो सकती है, क्योंकि इससे विदेशी हस्तक्षेप बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष ब्याज के रूप में बहुत

बड़ी राशि का भुगतान करना पड़ता है। अतः लम्बे समय तक विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना अच्छा नहीं है। अतः विदेशी ऋणों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए:

1. ऋणों का प्रयोग शीघ्र उत्पादक क्षेत्रों में किया जाना चाहिए। साथ ही देनदार देश को निर्यात बढ़ाने तथा आयात को घटाने का प्रयास करना चाहिए।
2. निर्यातों में वृद्धि तथा आयातों में कमी का समय इस तरह व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि मूलधन व ब्याज का निर्धारित अवधि में शोधन हो जाय।
3. ऋण से सम्बन्धित व्यय (Service charges) अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा उनके शोधन में राष्ट्रीय आय की वृद्धि का एक बड़ा भाग देश से बाहर चला जाएगा।

इस तरह, बाह्य के पक्ष व विपक्ष में तर्कों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रायः ऋणों को लेना अनुचित नहीं है, क्योंकि लाभ और हानियाँ तो होती ही रहती हैं, परन्तु बाह्य ऋणों की हानियाँ की अपेक्षा लाभ अधिक है। इसलिए बाह्य ऋणों को त्यागा नहीं जा सकता।

3.3.4 लोक ऋण में लघु बचतों का महत्व (Importance of Small Savings in Public Debt)

विकासशील देशों के आंतरिक ऋणों में लघु-बचतों का विशेष महत्व होता है। ***''वास्तव में, विकासशील देशों में लघु-बचतें वह नींव है जिस पर आंतरिक लोक ऋण आधारित होता है।''*** भारत जैसे विकासशील देश में आज की वर्तमान प्रवृत्तियां यह इंगित करती हैं कि यहाँ कुल राष्ट्रीय आय की तुलना में लघु बचतों की राशि में वृद्धि होती जा रही है। यहाँ गाँवों एवं छोटे-छोटे नगरों तथा उपनगरों में बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं की शाखाओं का विस्तार किया जा रहा है ताकि ग्रामीणों एवं अन्य कम-आय वर्ग के लोगों के यहाँ जो निष्क्रिय बचतें पड़ी हुई हैं, उनका देश के विकास में प्रयोग किया जा सके। लोगों को तरह-तरह से प्रोत्साहित किया जा रहा है जिससे लोग डाकघरों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के लघु-बचत अभियान में भाग लेकर आर्थिक विकास में सहयोग करें।

यही नही, अल्प बचतों का वितरणात्मक महत्व भी है। यदि सरकार पूंजीपति वर्ग से ऋण प्राप्त करती है तो इससे धन की असमानता बढ़ती है क्योंकि ब्याज का भुगतान धनी वर्ग को किया जाएगा। इससे धनी वर्ग की आय बढ़ेगी। अल्प बचतों से ऋण प्राप्त होने पर धनी वर्ग को ब्याज नहीं मिल पाएगा। इसके अतिरिक्त छोटी बचतों के मध्यम एवं कम आय वर्ग से प्राप्त होने पर इस वर्ग की बचतों पर जो ब्याज दिया जाता है उस ब्याज के लिए धनिकों पर करारोपण किया जा सकता है। इस प्रकार ब्याज के रूप में दिए जाने वाले धन का हस्तान्तरण धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर होगा जिससे धन के वितरण की असमानता कम होगी।

छोटी बचतों को संगठित रूप से जुटाए जाने का एक अन्य लाभ भी है। इससे वस्तुओं की कीमतों को स्थिर रखा जा सकता है। जिस सीमा तक लोगों में छोटी बचत करने की आदत पड़ती है, उस सीमा तक मुद्रास्फीति के दुश्चक्र एवं ऊँची कीमतों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यही कारण है कि आज लगभग सभी विकासशील देशों में छोटी बचतों का बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं तथा लोगों को प्रेरित किया जा रहा है।

3.7 लोक ऋणों की सीमाएं (Limitations of Public Debt)

किसी भी देश की सरकार को मनमाने ऋण लेने की छूट नहीं होती है। ऋणों की भी एक सीमा होती है। यदि इस सीमा से बाहर जाने का प्रयत्न किया गया तो इसके परिणाम घातक हो सकते हैं। सार्वजनिक ऋणों के तीन स्रोत होते हैं- (अ) बाह्य ऋण (ब) आन्तरिक ऋण तथा (स) घाटे की वित्त व्यवस्था।

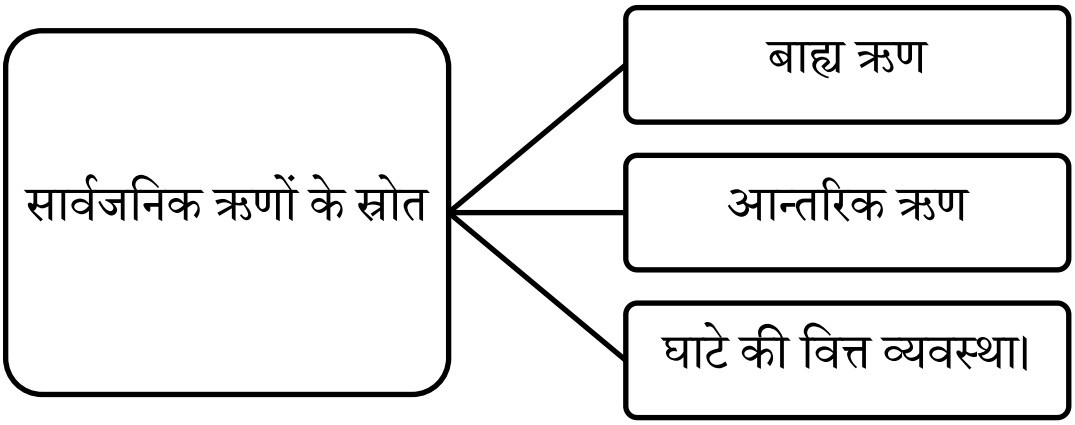

इन स्रोतों की अपनी-अपनी सीमा होती है। सार्वजनिक ऋणों की सीमाओं को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है:

(अ) बाह्य ऋण की सीमा - प्रायः यह कहा जाता है कि विदेशी ऋणों की सीमा सीमित होती है क्योंकि ऋण देने वाला राष्ट्र ऋण लेने वाले राष्ट्र को मनमाना ऋण नहीं दे सकता। ऋण देने से पूर्व ऋण देने वाले राष्ट्र की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति का सही-सही मूल्यांकन करेगा और यह देखेगा कि जो ऋण माँगा जा रहा है, वह किस प्रयोजन से माँगा जा रहा है और उसका उपयोग कहाँ किया जा रहा है। यदि ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों में किया जाता है, तब अधिक ऋण मिल सकता है। यदि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए लिया जा रहा है या ऋण देने वाले राष्ट्र के मित्र-राष्ट्र के साथ युद्ध करने के लिए लिया जा रहा है, तो ऋण देने वाला कम ऋण देगा या ऋण नहीं देगा।

(ब) आन्तरिक ऋणों की सीमा - आन्तरिक ऋण अपने देश के नागरिकों से प्राप्त किए जा सकते हैं। यदि देश में प्रजातन्त्र न हो और हम ऐसी कल्पना कर लें कि देश में निरंकुश शासक है, तब यह कहा जा सकता है कि आन्तरिक ऋणों को मनमाने ढंग से वसूला जा सकता है परन्तु प्रजातान्त्रिक देशों में तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः आन्तरिक ऋण की मात्रा निम्नलिखित परिस्थितियों पर निर्भर करेगी:

1. यदि देश के लोगों की बचत करने की शक्ति अच्छी है तब ऋण-प्राप्ति की सीमा ऊँची होगी। यदि बचत कम हो रही है तो ऋण प्राप्ति की सीमा कम होगी क्योंकि जो लोग ठीक ढंग से अपना ही भरण-पोषण नहीं कर पा रहे हों उनसे ऋण पाना आसान नहीं है।
2. ऋण की सीमा सरकारी नीति के ऊपर भी निर्भर करती है। यदि सरकार की नीति सार्वजनिक ऋणों को उत्पादन कार्यों में व्यय करने की है तो ऋण पर्याप्त मात्रा में मिल सकता है। इसके विपरीत,

यदि सार्वजनिक ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों में किया जाता है तो ऋण की सीमा न्यूनतम होगी।

3. जिस देश की सरकार की साख अच्छी होगी, उसकी ऋण प्राप्त करने की सीमा ऊँची होगी। यदि कोई सरकार पुराने ऋणों का ही भुगतान नहीं कर सकी है तो उसे नये ऋण भी नहीं मिलेंगे।
4. जिस देश में राजनीतिक अस्थिरता रहती है उसे ऋणों को प्राप्त करने में असुविधा होगी। जहाँ स्थिर सरकार होती है और वह सही अर्थों में जनता का प्रतिनिधित्व करती है, उस सरकार को आसानी से ऋण मिलेंगे।
5. राजनीतिक स्थिरता के साथ कुशल प्रशासन का भी ऋण-प्राप्ति की सीमा पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में कुशल प्रशासन है, समय पर ऋण व ऋण का ब्याज लौटाया जा रहा है तो ऋण अधिक मात्रा में मिल सकते हैं।

(स) घाटे की वित्त व्यवस्था की सीमा - वर्तमान समय में बजट घाटे बढ़ने लगे हैं, इसकी पूर्ति नोट छाप कर की जाती है जिसे हम 'हीनार्थ प्रबन्धन' (Deficit Finance) कह सकते हैं। समय-समय पर संसार के प्रत्येक राष्ट्र के द्वारा इस उपाय से अपने व्ययों की पूर्ति की गयी है। जब सरकार को अपने व्ययों की पूर्ति हेतु अन्य स्रोतों से आय तथा ऋण उपलब्ध नहीं होता है, तब वह स्वयं से भी ऋण ले लेती है, और इस ऋण की पूर्ति नोट छापकर कर ली जाती है। उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि राज्य चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, वह मनमाने ढंग से ऋण प्राप्त नहीं कर सकता है ऋणों के प्राप्ति की भी एक निश्चित सीमा होती है।

3.4 लोक ऋण का प्रबन्धन (Public Debt Management)

वर्तमान में,प्रत्येक विकासशील देश तीव्र आर्थिक विकास की लालसा से लोक ऋणों के परिमाण और संरचना में लगातार वृद्धि करता जा रहा है। इन देशों को आर्थिक विकास की अन्य समस्याओं के साथ-साथ ऋण के प्रबन्ध की समस्या का भी सामना करना पड़ रहा है। वास्तविकता यह है कि विकास के प्रारम्भिक चरणों में इन देशों ने आंतरिक व बाह्य दोनों ही प्रकार के ऋण भारी परिमाण में ले लिए तथा जब ऋणों के भुगतान का समय आया तो ये देश बड़ी विकट स्थिति में फँस गए क्योंकि इन देशों ने ऋण प्रबन्धन उचित ढंग से नहीं किया था। वस्तुतः आर्थिक विकास के लिए प्राप्त ऋणों का उपयुक्त प्रबंध करना प्रत्येक देश के लिए आवश्यक होता है। लोक ऋण के प्रबंध से तात्पर्य यह है कि सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करने तथा ऋणों का शोधन करने की नीतियों का देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए बल्कि इससे स्थिरता के साथ आर्थिक विकास में सहायता मिलनी चाहिए।

तकनीकी भाषा में, लोक ऋण के प्रबन्ध से तात्पर्य टे°जरी की उन क्रियाओं से है जिनके माध्यम से लोक ऋण को कायम रखा जाता है। ऋण प्रबन्ध की समस्या उस समय भी उठेगी जब लोक ऋण में कोई शुद्ध वृद्धि (Net Increase) नहीं होती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि ऋण प्रबन्ध की समस्या इसलिए उठती है क्योंकि ऋण स्थायी नहीं होते हैं, बल्कि उन्हें वापस करना होता है। चूंकि ऋण अस्थायी होते हैं इसलिए पुराने ऋण के भुगतान तथा नए ऋण को प्राप्त करने का प्रश्न उठता है। वापसी (returning), प्रवर्तन (Flotation) तथा निवृत्ति

(retiring) के कार्य इस प्रकार किए जाने चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था को अधिकतम आर्थिक लाभ मिले या न्यूनतम आर्थिक हानि हो। ऐसी सावधानी बरतने का कारण है कि बुरे ऋण प्रबन्धन के आर्थिक प्रभाव काफी गम्भीर हो सकते हैं।

दूसरे शब्दों में, ऋण की प्राप्ति, वापसी का कार्य इस प्रकार किया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था को अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त हो अथवा न्यूनतम आर्थिक हानि हो। यदि सरकार सार्वजनिक ऋणों की वापसी हीनार्थ प्रबंधन की सहायता से करती है तो इसके प्रभाव स्फीतिजनक हो सकते हैं। ऊँचे करारोपण भी कीमतों में वृद्धि करते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में ऋण का प्रबंध इस तरह किया जाना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति अथवा मुद्रा अवस्फीति की दशा न उत्पन्न हो तथा समाज पर कर का भार कम से कम पड़े। इसके लिए ऋण की संरचना, परिपक्व ऋणों के भुगतान अवधि, दी जाने वाली ब्याज की दर आदि पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इस तरह, लोक ऋण -प्रबंधन सार्वजनिक ऋणों की संरचना सम्बन्धी विशेषताओं के निर्धारण से है।

3.4.1 लोक ऋण प्रबन्धन के सिद्धान्त (Principles of Public Debt Management)

लोक ऋण प्रबन्धन से सम्बन्धित अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचार दिये हैं। कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार निम्न हैं-

प्रो. फिलिप ई. टेलर (Prof. Philip E. Taylor)

प्रो. फिलिप ई. टेलर (Prof. Philip E. Taylor) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक '***Economics of Public Finance'*** में लोक ऋण प्रबन्धन के निम्न तीन मुख्य सिद्धान्त दिये हैं:

1) लोक ऋण प्रबन्धन इस तरह होना चाहिए जिससे सरकार को बाजार से ऋण की आवश्यक राशि प्राप्त हो जाए और ऐसा करते समय बाजार पर अनावश्यक दबाव भी न पड़े। साथ ही, ब्याज के रूप में लागत न्यूनतम हो।

   इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण का प्रबन्ध इस तरह होना चाहिए कि सरकार को आवश्यक ऋण राशि भी प्राप्त हो जाय तथा इस राशि पर ब्याज की दर भी कम से कम देना पड़े। ऋण पर ब्याज का भुगतान सरकार अपने बजट से करती है जिसके लिए अतिरिक्त कर लगाना पड़ता है। इस तरह के भुगतान में आय सृजन की क्षमता कम रहती है, अतः आर्थिक विकास की दर घट जाएगी। अच्छे ऋण प्रबंध के अंतर्गत ब्याज की दर न्यूनतम रहती है साथ ही ब्याज दर की संरचना लोगों के अधिमान ढाँचे के भी अनुकूल रहती है। इसके लिए कुल ऋण की मात्रा को समान रखते हुए सरकारी ऋण की एक ही समय में खरीद तथा बिक्री की जाती है। इस क्रिया से निवेशकर्ताओं के विभिन्न वर्गों की आवश्यकताएं पूरी हो जाती है। इसका एक अन्य लाभ यह भी है कि ऋण एक ही वर्ग के हाथों में केन्द्रित नहीं हो पाता। इस नीति के माध्यम से सरकार को अधिक अनुकूलतम ब्याज दर प्राप्त करन में सुविधा होती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भी मूल्य स्थायित्व जरूरी है। मूल्य वृद्धि से सरकारी बॉण्ड का वास्तविक मूल्य घट जाएगा और वे लोगों को आकृष्ट नहीं कर सकेंगे। इस स्थिति में सरकार को ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाएगा।
2) लोक ऋण प्रबन्धन स्थिर आर्थिक विकास के उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होना चाहिये, अवरोधक नहीं। स्थिर आर्थिक विकास के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किए जाने वाले ऋण प्रबंध में अत्यधिक

लोच होनी चाहिए। मंदी काल में जब बड़े पैमाने पर बेरोजगारी विद्यमान रहती है, सरकार को इस तरह ऋण प्राप्त करना चाहिए जिससे इसका वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग पर संकुचनकारी प्रभाव न पड़े। अन्य शब्दों में, उन लोगों से ऋण नहीं लेना चाहिए जिनकी सीमांत उपभोग प्रवृत्ति ऊँची रहती है। ऐसे समय उचित यह होगा कि बैंकों से ऋण लिया जाय। इसके विपरीत, स्फीतिकाल में बैंकों से कम से कम ऋण लेना चाहिए।

3) ऋण की संरचना ऐसी होनी चाहिए जिससे असुविधाजनक स्थिति में सरकार को ऋण लेने की कम से कम आवश्यकता पड़े। अनुपयुक्त अवसर के समय ऋण की आवश्यकता को कम करने के लिए यह उचित होगा कि ऋण के भुगतान की अवधि बढ़ा दी जाय। इसका सबसे अच्छा उदाहरण ब्रिटिश कन्सोल्स (British Consols) हैं। कन्सोल्स के भुगतान की तिथि नहीं निर्धारित होती, इस पर एक निश्चित दर से ब्याज का भुगतान किया जाता है। ऐसे ऋण की वापसी अथवा पुराने ऋणों को नए ऋणों में बदलने की प्रक्रिया सरकार अपनी सुविधा के अनुसार तय करती है।

यद्यपि कि उपरोक्त विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि यदि इन सिद्धान्तों पर अलग-अलग विचार किया जाता है तब किसी तरह की कठिनाई उपस्थित नहीं होती परन्तु यदि इन्हें एक साथ लागू करने का प्रयास किया जाता है तब काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अल्पकालीन ऋण सस्ते होते हैं परन्तु इन ऋणों की सहायता से स्थिर विकास के उद्देश्य को पूरा करना कठिन होगा, विशेषकर समृद्धिकाल में। मंदी काल में ऐसे ऋणों से बेरोजगारी को दूर करने में सहायता अवश्य मिल सकती है।

प्रो. राल्फ (Rolph Earl R.-

प्रो. राल्फ (Rolph Earl R.) **'Principles of Debt Management'** ने लोक ऋण हेतु निम्न पाँच सिद्धान्तों को आवश्यक माना है:

1. **प्रतिदेय ऋण का अनुकूलतम आकार-**प्रतिदेय ऋण की संरचना एवं आकार तब अनुकूलतम होता है जब प्रत्येक ऋण साधन की सीमांत उपयोगिता उसी सीमांत लागत के अनुपात में होती है।
2. **ऋण की उपयोगिता में परिवर्तन-**प्रत्येक प्रतिदेय ऋण की उपयोगिता व्यापार क्रिया के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। यदि व्यापार की गतिविधि में तेजी है तो ऋण की उपयोगिता बढ़ेगी। इसके विपरीत मंदी की दशा में ऋण की उपयोगिता घट जाएगी।
3. **ऋण की भुगतान अवधि-**ऋण की औसत भुगतान अवधि को ऋण की संरचना में कमी लाकर घटा दिया जाय तो इसके कारण निजी व्यय में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि ऋण की औसत भुगतान अवधि को उसकी संरचना में परिवर्तन लाकर बढ़ा दिया जाय तो इससे निजी व्यय में कमी होगी। इसके लिए निम्न दो शर्तों का होना आवश्यक है-

   (क) यदि प्रतिभूतियों की अवधि कम है तो उनमें नकदी या तरलता का गुण अधिक होना चाहिए।

   (ख) नकदी अथवा तरलता की सीमांत उपयोगिता धनात्मक होनी चाहिए।

   उपरोक्त दोनों शर्तों के पूरा होने पर राज्य द्वारा ऋण की औसत भुगतान अवधि को घटाने पर निजी व्यय में वृद्धि होगी।

4. ऋण की मात्रा-यदि लोक ऋण की संरचना को बदले बिना उसकी मात्रा घटा दी जाय तो निजी व्यय बढ़ जायेगा। इसके विपरीत, यदि उसकी संरचना को बिना बदले ऋण की मात्रा बढ़ा दी जाय तो इससे निजी व्यय घट जाएगा। इस तथ्य को रेखाचित्र 3.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

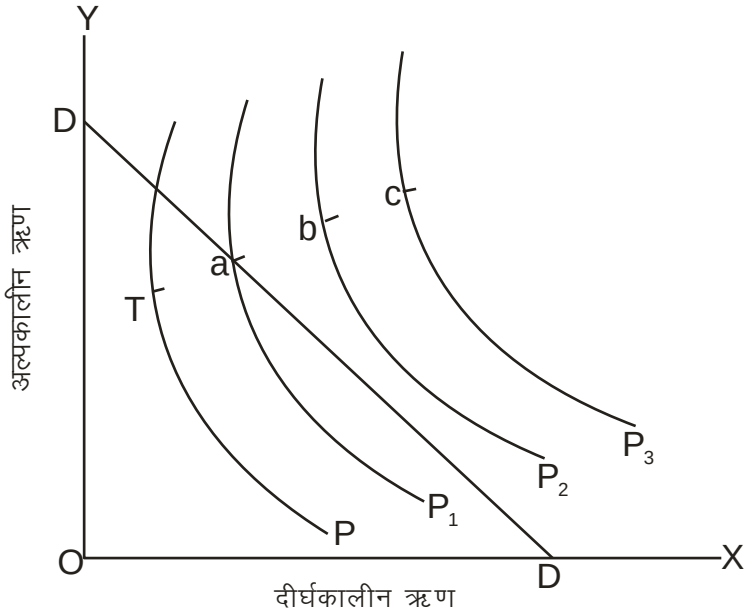

चित्र 3.1

चित्र में OX अक्ष पर दीर्घकालीन ऋण तथा OY अक्ष पर अल्पकालीन ऋण को प्रदर्शित किया गया है। DD रेखा निरंतर ऋण रेखा है। चित्र में P, P_1, P_2 तथा P_3 निजी आय को व्यक्त करने वाली सम आय रेखाएं हैं जो दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन ऋण के संयोग को प्रकट करती हैं। चित्र में पुराना ऋण पूर्व निर्धारित है।

मान लिया P_1 सम आय वक्र पर a बिन्दु पुराने ऋण को व्यक्त करता है जो कि पहले से था। अब यदि सरकार ऋण की संरचना में कमी किए बिना ऋण में कमी कर देती है तो उससे निजी व्यय बढ़ जाएगा। मान लीजिए अब ऋण में कमी करने के कारण दीर्घकालीन और अल्पकालीन ऋण का संयोग T बिन्दु द्वारा प्रदर्शित होता है। यह स्पष्ट है कि P वक्र P_1 से अधिक निजी व्यय को व्यक्त करता है। इसी तर्क के आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि b तथा c बिन्दु क्रमशः और भी कम निजी व्यय को व्यक्त करते हैं।

5. बैंकों के आरक्षित कोष का प्रभाव- यदि व्यापारिक बैंकों को आरक्षित कोष कम मात्रा में रखना है तो अन्य बातें समान रहने पर, ऋण की कमी के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्ति अधिक प्रभावी होगी। अतः सरकार द्वारा अधिक मात्रा में लिया गया ऋण अधिक उपयोगी होगा। इस तरह, बैंकों के आरक्षित कोष का भी ऋण की दीर्घकालीन या अल्पकालीन प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में ऋण प्रबन्धन के सभी सिद्धान्तों की मुख्य बातों को निम्न रूप से लिखा जा सकता है:

1. निवेशकर्त्ताओं की आवश्यकताओं की संतुष्टि होनी चाहिये। जिससे प्रत्येक स्थिति में उनका विश्वास बना रहे तथा राष्ट्र विकास की तरफ अग्रसर हो सके।

2. लोक ऋण की ब्याज सेवा लागत न्यूनतम होना चाहिए। जिससे सरकार को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध हो सके। साथ ही ऋणदाताओं को भी ऋण देने हेतु आकर्षित करना होगा।
3. आवश्यकतानुसार अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों का आपस में परिवर्तन सहज रूप में सम्भव हो सके तथा ऋणी एवं ऋणदाता ब्याज दर से सहमत हो सकें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घकालीन ऋण उस परिस्थिति में अच्छे होंगे जब ब्याज दरों के घटने की संभावनाएं न हों तथा ब्याज दर के घटने की उम्मीद रहने पर अल्पकालीन ऋण ही उचित होंगे। इसलिए **मसग्रेव** ने कहा है कि, ***''ऋण प्रबंध एक बारीक कला है जिसके लिए काफी पहले ही बाजार प्रत्याशा का समझदारी से मूल्यांकन करना पड़ता है।''***
4. लोक ऋण नीति का राजकोषीय नीति एवं मौद्रिक नीति के साथ समन्वय होना चाहिए क्योंकि सब मिलकर देश की आर्थिक नीति का निर्धारण करते हैं। भारी मात्रा में लिए गए लोक ऋण के कारण मौद्रिक एवं राजस्व नीति का प्रभाव घट जाता है। अतः इनका आपस में समन्वय होना चाहिए। सार्वजनिक ऋणों की वापसी, चालू ऋणों का रूपांतर (Conversion) तथा वे शर्तें जिन पर नवीन ऋण पत्रों का विक्रय किया जाता है-सभी को आर्थिक स्थिरता तथा प्रगति में योगदान देना चाहिए।
5. यदि कुल ऋण का एक बड़ा भाग अल्पकालीन ऋणों के रूप में है जो अधिकांशतया बैंक द्वारा लिया जाता है तो ऐसी दशा में ऋण की बड़ी मात्रा नकद रूप में बनी रहने की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में मुद्रा-स्फीतिजनक स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस तरह ऋणों की अत्यधिक तरलता मुद्रास्फीति के नियंत्रण को कठिन बना देती है। ऐसे ऋणों की खरीद भी मुद्रा स्फीति विरोधी उपाय के रूप में अधिक प्रभावशाली नहीं होगा।
6. ऋण प्रबंध स्थिर आर्थिक विकास के उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होना चाहिए। स्थिरता के साथ विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऋण प्रबंध में लोचशीलता का होना आवश्यक होता है। मंदी काल में जब बड़े पैमाने पर बेरोजगारी विद्यमान रहती है तब सरकार को इस तरह ऋण लेना चाहिए कि इसका वस्तुओं एवं सेवाओं की निजी मांग पर संकुचनकारी प्रभाव न पड़े। अतः ऋण उन लोगों से नहीं लेना चाहिए। जिनकी सीमांत उपभोग प्रवृत्ति ऊँची रहती है, ऐसे समय पर बैंकों से ऋण लिया जाना उचित होगा। मुद्रा स्फीति के समय विपरीत नीति अपनायी जानी चाहिए। ऐसे समय में बैंकों से ऋण न लेकर अधिक व्यय करने वालों से ऋण लिया जाना चाहिए।

3.4.2 ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति (Debt Management and Monetary Policy)

ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति के अंतर्गत ट्रेजरी के ऋण प्रबन्ध तथा केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। रैचफोर्ड (Ratchford), आल्विन हान्सेन (Alvin hensen), मीड (Meade) तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी यह तर्क प्रस्तुत किया कि बड़े परिमाण में लोक ऋण के कारण मौद्रिक नीति का प्रभाव घट जाता है। उदाहरण के लिए यदि मुद्रास्फीति पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए बैंक दर में वृद्धि की जाती है तो इससे बाण्ड की कीमत घट जाएगी। भविष्य में बाण्ड पर पूँजी हानि के रूप में और अधिक घाटा न हो, इसलिए बाण्ड के धारक इसे बेच कर मुद्रा प्राप्त कर लेगें। इससे दीर्घकालीन बॉण्ड के बाजार पर विपरीत प्रभाव

पड़ेगा। इससे बचने के लिए केन्द्रीय बैंक को स्फीतिविरोधी उक्त नीति का परित्याग करना पड़ेगा ताकि बॉण्डों की कीमत घट न सके। लेकिन **रूसा (Roosa)** ने भिन्न तर्क प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि जब लोक ऋण सभी प्रकार के लोगों से लिया जाता है तब लोक ऋण एवं मौद्रिक नीति में कोई विरोध नहीं रहता है। बैंक दर के बढ़ने पर बाण्ड को बेचकर मुद्रा प्राप्त नहीं की जाएगी क्योंकि बैंक अपने लेखा में पूँजी हानि (Capital Loss) दिखाना नहीं चाहेंगे। यदि कुछ व्यक्ति ऐसा करते भी हैं तो भी पूँजी हानि के कारण उपभोग पर अधिक खर्च नहीं करेंगे। इससे मौद्रिक नीति का प्रभाव बढ़ जाएगा, घटेगा नहीं।

मौद्रिक नीति एवं लोक ऋण नीति के मध्य विरोध है अथवा नहीं, इस समस्या की चाहे जो भी स्थिति हो, वास्तव में लोक ऋण प्रबंधन तथा आर्थिक स्थायित्व के उद्देश्य के मध्य समन्वय स्थापित होना आवश्यक है। इस हेतु निम्न तीन नीतियों का सुझाव दिया जा सकता है।

(1) सकारात्मक या धनात्मक प्रबन्धन (Positive Management)

(2) तटस्थ प्रबन्ध (Neutral Management)

(3) नकारात्मक या ऋणात्मक प्रबन्ध (Negative Management)

1 सकारात्मक या धनात्मक प्रबन्ध

रेडक्लिफट कमेटी (Radcliffe Committee) तथा मुद्रा एवं साख पर अमेरिकी आयोग (U.S. Commission on Money and Credit) ने मत व्यक्त किया है जब कम्पनी क्षेत्र (Corporate Sector) बड़ी मात्रा में बाण्ड क्रय करती है तो वह केन्द्रीय बैंक दर के माध्यम से इस क्षेत्र के आचरण को प्रभावित कर सकता है ऐसे बाण्ड की अनुपस्थिति में यह क्षेत्र केन्द्रीय बैंक के प्रभाव से स्वतंत्र रह जाएगा क्योंकि यह क्षेत्र ऋण पूंजी पर निर्भर नहीं करता है।

इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत टे्जरी इन तथ्य को स्वीकारता है कि लोक ऋण प्रबन्ध नीति अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकती है। अतः वह केन्द्रीय बैंक द्वारा अनुसरण की गयी मौद्रिक नीति का समर्थन करता है। इसके अन्तर्गत स्फीतिकाल में अतिरिक्त साख को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से अल्पकालीन प्रतिभूतियों को दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में परिवर्तन किया जाता है। इसके विपरीत मंदीकाल में ऋणों को अल्पकालीन ऋणों में परिवर्तित किया जाता है।

यह नीति लोक प्रबन्धन के प्रथम उद्देश्य के प्रतिकूल है, क्योंकि स्फीति काल में ब्याज दर में वृद्धि होती है। (सामान्यतः दीर्घकालीन बिल पर ब्याज अल्पकालीन प्रतिभूतियों की अपेक्षा ऊँची रहती है) अतः इस नीति के अन्तर्गत ब्याज के रूप में लोक ऋण का भार अधिकतम होगा, न्यूनत्तम नहीं।

2 तटस्थ प्रबन्धन

इस नीति के अंतर्गत ट्रेजरी मूल्यनीति को ध्यान में रखकर लोक ऋण का प्रबंध नहीं करती है। स्थायित्व (stabilization) की नीति केन्द्रीय बैंक के जिम्मे रहती है जबकि लोक ऋण प्रबंध ट्रेजरी के अधिकार क्षेत्र में होता है। ट्रेजरी अपनी नीति का निर्धारण तटस्थ भाव से करती है।

वस्तुतः, किसी भी सरकार के लिए वास्तविक तटस्थ नीति का अनुसरण करना कठिन है। यह आशा की जा सकती है कि लोक प्रबन्ध के कारण मुद्रा एवं साख बाजार पर न तो स्थिर और न ही अस्थिर प्रभाव पड़ेगा।

ऐसा तभी होगा जब पुराने ऋण की जगह नए ऋए इस प्रकार लिए जाएं कि सभी पुराने ऋणों का भुगतान हो जाए। यदि ब्याज दरों में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है तो इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए ब्याज दर की संरचना में कोई परिवर्तन करना पड़ेगा। ब्याज दर में परिवर्तन की स्थिति में ब्याज दर संरचना में न्यूनत्तम परिवर्तन करना होगा।

3 नकारात्मक या ऋणात्मक प्रबन्धन

इस नीति के अन्तर्गत ट्रेजरी का एक ही उद्देश्य होता है, ब्याज की दर को न्यूनतम रखना। जिससे राष्ट्रीय ऋण की लागत न्यूनत्तम रहे। अतः वह इस उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास करती है। जब मुद्रा एवं साख में कमी के कारण ब्याज दर में वृद्धि होती है तब ट्रेजरी दीर्घकालीन ऋण नहीं लेगी, जबकि मंदीकाल में इसके विपरीत की ही नीति अपनाई जाएगी क्योंकि इस अवधि में ब्याज की दर घटती है। यह नीति निम्न दृष्टिकोणों से अनुपयुक्त माना जाता है:

i. केन्द्रीय बैंक एवं ट्रेजरी सम्भवतः विपरीत दिशाओं में चलेंगे।
ii. न्यूनत्तम ब्याज लागत ही जब ऋण प्रबन्ध का उद्देश्य हो जाता है तब सर्वोत्तम तरीका यही होगा कि सम्पूर्ण ऋण का मुद्रीकरण (monetization) कर दिया जाए अर्थात् ऋण के स्थान पर मुद्रा स्थापित कर दी जाए।

3.4.3 ऋण प्रबन्धन की समस्याएं (Issues of Debt Management)

ऋण प्रबन्धन की मुख्य समस्यायें निम्न हैं:

1 दीर्घकालीन बनाम अल्पकालीन ऋण (Long Term vs. Short Term Loan) -

दीर्घकालीन ऋण के अन्तर्गत सामान्यतया ब्याज की एक निश्चित दर रहती है तथा सरकार इन्हें सुविधानुसार लौटाती है। इस ऋण की अवधि पूरी होने पर उसे नए ऋण में बदल दिया जाता है जबकि अल्पकालीन ऋण के फलस्वरूप बड़ी मात्रा में वापसी (Refunding) क्रिया की बार-बार आवश्यकता होती है। दीर्घकालीन ऋण का स्फीतिजनक प्रभाव कम पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसे ऋण को बड़े पैमाने पर बार-बार वापस करने की जरूरत नहीं पड़ती है, लेकिन इस प्रश्न का उत्तर यह है कि लोक ऋण दीर्घकालीन हो या अल्पकालीन, वापसी क्रिया को वार्षिक मात्रा के आधार पर नहीं किया जा सकता। यह कहा जा सकता है कि ऋण की भी मियाद संरचना (term structure) का चयन ब्याज को न्यूनतम करने के ख्याल से निर्धारित करना चाहिए। परिपक्वता (maturity) के अनुसार बॉण्ड पर ब्याज दर में अन्तर पाया जाता है। अतः वैसे बॉण्ड को चुनना चाहिए, जिन्हें विनियोगकर्ता खरीदने को तत्पर दिखें।

यद्यपि कि कई बार अल्पकालीन ब्याज दरें दीर्घकालीन ब्याज दरों से उपर भी दिखी हैं। अतः यह जरूरी नहीं है कि दीर्घकालीन ऋण ही उचित है क्योंकि अधिक दिन (वर्ष) व्यतीत होने के पूर्व ही ब्याज की दर घट सकती है, इन उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि दीर्घकालीन ऋण उस परिस्थिति में अच्छे होंगे, जब ब्याज दरों के घटने की संभावनाएं न हों तथा ब्याज दर घटने की उम्मीद रहने पर अल्पकालीन ऋण ही उचित होंगे। इसलिए **मसग्रेव** महोदय ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि ***''ऋण प्रबन्ध एक बारीक कला है, जिसके लिए काफी पहले ही बाजार प्रत्याशा का समझदारी से मूल्यांकन करना पड़ा है।(Debt management, therefore, is a fine art which requires a shrewd appraisal of market prospects for a considerable time ahead.)''***

2 तरलता (Liquidity) -

तरलता का प्रश्न सरकार की मुद्रापूर्ति की नियंत्रण शक्ति पर निर्भर होती है जिसके आधार पर सरकार ब्याज दर का नियमन करती है। सरकार लोक ऋण को मुद्रा में बदल सकती है, यानि ऋण नोट छापकर या केन्द्रीय बैंक से प्राप्त किया जा सकता है। इसे ऋण का मुद्रीकरण (debt monetization) कहा जाता है। ऋण का यह सबसे सस्ता माध्यम है, क्योंकि ऐसे ऋण पर ब्याज देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ऋण मुद्रीकरण के विरूद्ध कई तर्क दिए जाते हैं-(1) यह आय प्राप्त करने का सबसे ही सरल तरीका है। अतः इसका दुरूपयोग सम्भव है। ऋण की मात्रा उपयुक्त सीमा के ऊपर जा सकती है। (2) स्फीतिकाल में यह तरीका (मुद्रीकरण) उपयुक्त नहीं माना जा सकता। ऋण की अवधि जितनी छोटी होगी, उसका प्रसार सम्बन्धी प्रभाव उतना ही अधिक होगा। स्पष्ट है कि मुद्रीकरण अर्थात ऋण का मुद्रा-सृजन प्रभाव सर्वाधिक प्रसारकारी होगा। इसका कारण यह है कि ऋण की अवधि जितनी लम्बी होगी, ब्याज दर उतनी ही अधिक ऊँची होगी। इसे चित्र 3.2 में दिखाया गया है।

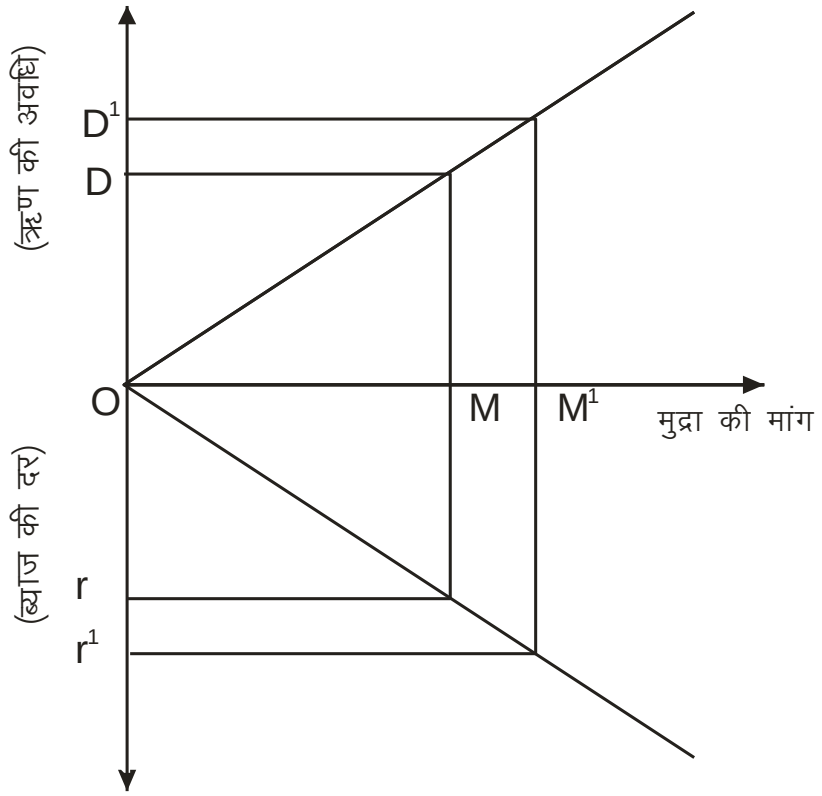

चित्र 3.2

चित्र से स्पष्ट है कि ऋण की अवधि जब OD से बढ़कर OD^1 हो जाती है तो मुद्रा की मांग OM से बढ़कर OM^1 हो जाती है, इस कारण ब्याज की दर Or से बढ़कर Or^1 हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मुद्रा के स्थान पर ऋण ग्रहण करने का अर्थ है, गैर-तरलता (illiquidity) को ग्रहण करना।

विनियोगकर्ता अपनी परिसम्पत्ति के पोर्टफोलियो (Portfolio of Assets) में गैर-तरलता में वृद्धि करने के लिए तभी तैयार होंगे जब उन्हें अधिक ब्याज दिया जाएगा, लेकिन ऊँची ब्याज पर निजी विनियोग की मांग घट जाती है। इसे स्फीतिकाल में उचित ही समझा जाएगा, लेकिन अत्यधिक दीर्घकालीन ऋण वित्तीय ढाँचे को

अत्यन्त लोचहीन बना देता है। साथ ही, यह अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा को घटा देता है। यह उपयुक्त नहीं समझा जा सकता। बेरोजगारी के समय ऋण की अवधि को कम करना उचित होगा।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि "***अल्पकालीन स्थायित्व नीति ही ऋण प्रबन्ध पर निर्णयात्मक प्रभाव डालती है। (It is the short-run stabilization policy which may act as the decisive factor in determining debt management policy.)"***

3 स्थिर क्रय शक्तिवाले बाण्ड (Constant Purchasing Power Bond)

बाण्डों के मूल्यों को स्थिर बनाये रखने हेतु 1950 के कोरिया युद्ध से उत्पन्न स्फीतिजनक स्थिति में यह प्रस्ताव रखा गया था कि ऐसे बाण्ड जारी किए जाएं जिनके मूल्य स्थिर रहें। अतः ऐसे बाण्ड का भुगतान मूल्य (Redemption value) जीवनस्तर सूचकांक में परिवर्तन के साथ-साथ बदलता रहेगा। ऐसा बॉण्ड स्फीति के कारण क्रयशक्ति में होने वाले ह्रास से विनियोगकर्ता को बचाता है, निजी बचत को प्रोत्साहित करता है तथा स्फीति को हतोत्साहित करता है। इजरायल, फ्रांस, आस्ट्रिया और फिनलैण्ड में इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित बाण्ड जारी किए गए हैं।

ब्याज दर सम्बन्धी इन विवादों के मध्य उचित नीति यह जान पड़ती है कि मुद्रा प्रसार के समय अल्पकालीन ऋण पर कम से कम भरोसा करना चाहिए। मन्दीकाल में ऋण नीति ऐसी होनी चाहिए ताकि पुनरुद्धार के लिए अपनायी गयी आसान साख नीति का निम्न दीर्घकालीन ब्याज नीति के साथ संघर्ष न हो।

4 ऋण प्रबन्धन की नयी तकनीक (New Technology of Debt (Managemant)-

वर्तमान में, स्फीति की स्थिति व्याप्त है और कोशिश होती है कि ऋण की अवधि को लम्बा किया जाए। इसके लिए अग्रिम वापसी (advance refunding) नामक नयी तकनीक की सहायता ली जाती है। परिपक्वता की तिथि के पूर्व ही पुरानी प्रतिभूतियों के स्थान पर नयी प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए कहा जाता है। नयी प्रतिभूतियां ऐसी होती हैं जिनसे दोनों को लाभ होता है। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य अल्प एवं मध्यकालीन प्रतिभूतियों को दीर्घकालीन में बदलना होता है।

ऋण प्रबन्ध की एक और नयी तकनीक के अन्तर्गत बॉण्ड पर अधिकतम ब्याज दर निर्धारित कर दी जाती है, लेकिन यह स्थायित्व नीति (stabilization policy) को लागू करने में अनावश्यक सीमा डाल देती है।

3.4.4 अल्पविकसित देशों में ऋण प्रबन्ध की समस्यायें (Problems of Debt Management in Developing Countries)

विकसित देशों का लक्ष्य मुख्यतः विकास में स्थिरता बनाये रखना है। अतएव इस हेतु विकसित देशों में लोक ऋण प्रबन्धन के उद्देश्य निम्न होते हैं:

i. सरकार द्वारा पर्याप्त धन आकृष्ट करना।
ii. ब्याज के रूप में कम लागत।
iii. परिपक्वता की उपयुक्त संरचना को बनाए रखना तथा
iv. आर्थिक स्थायित्व को कायम रखना।

जबकि विकासशील देशों में इन उद्देश्यों में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता होती है। पूर्ण विकसित मुद्रा एवं पूँजी बाजार की अनुपस्थिति में न्यूनतम ब्याज लागत के उद्देश्य को पूरा करना कठिन हो सकता है। रोजगार को ऊँचे स्तर पर कायम रखने के लिए कुल मांग को पर्याप्त रखने का अल्पकालीन उद्देश्य विशेष महत्व नहीं रखता। अधिक उपयोगी नीति आर्थिक विकास की दर में तेजी लाती है।

यद्यपि विकसित देशों में प्रयुक्त होने वाला ऋण प्रबन्धन तकनीक विकासशील देशों में भी प्रयोग की जा सकती है परन्तु उनमें लचीलापन कम रहता है। विकसित देशों में केन्द्रीय बैंक प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा एवं पूँजी बाजार में क्रय-विक्रय के माध्यम से अर्थव्यवस्था में तरलता की स्थिति, ब्याज की दर तथा लोक ऋण के ढाँचे में उचित परिवर्तन कर सकता है। अल्पकालीन ऋण के अनुपात में वृद्धि होने से बैंकिंग व्यवस्था की तरलता में वृद्धि होती है। विकासशील देशों में भी केन्द्रीय बैंक इन क्रियाओं को सम्पन्न कर सकती है, परन्तु ऐसे देशों में राष्ट्रीय ऋण का आकार प्रायः छोटा होता है तथा मुद्रा एवं पूँजी बाजार तथा वित्तीय संस्थानों की स्थिति अल्पविकसित एवं कमजोर होती है। इन दशाओं में मौद्रिक नीति के यंत्र के रूप में लोक ऋण प्रबंधन अधिक प्रभावी नहीं होता।

अल्पविकसित देशों में न्यूनतम ब्याज लागत नीति के साथ पर्याप्त मात्रा में ऋण आकृष्ट करने की नीति के साथ उचित सामंजस्य नहीं पाया जाता। न्यूनत्तम लागत नीति के लिए सस्ती मुद्रा नीति की आवश्यकता होती है जबकि ऋण की धनराशि को आकर्षित करने के लिए बाण्डों एवं प्रतिभूतियों पर ब्याज की दर में बढ़ोत्तरी करना आवश्यक होता है।

3.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. टिप्पणी लिखें

अ. लोक ऋण का कार्य करने की योग्यता पर क्या प्रभाव होता है?

ब. लोक ऋण का उपभोग पर प्रभाव स्पष्ट करें।

स. आन्तरिक ऋण भार से क्या समझते हैं?

द. सार्वजनिक ऋणों के लाभ बताइए।

य. ऋण परिशोधन कोष से क्या समझते हैं?

र. लोक ऋण का उत्पादन पर प्रभाव।

ल. लोक ऋण का वितरण पर प्रभाव।

3.6 सारांश (Summary)

इस इकाई के अन्तर्गत प्रस्तावना तथा उद्देश्यों के साथ-साथ लोक ऋण के भुगतान की विधियों तथा प्रबन्धन से सम्बन्धित अनेक बातों को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

जैसा कि आप देख सकते हैं कि इकाई के प्रथम मुख्य शीर्षक लोक ऋण के भुगतान की विधियाँ के अन्तर्गत बजट अतिरेक, ऋण परिशोधन कोष, पूँजी कर, अवधिक वार्षिकी, ब्याज दर में ह्रास, ऋण अस्वीकृति, मुद्रा स्फीति द्वारा लोक ऋण का त्याग, ऋण अस्वीकृति, ऋण रूपान्तरण, ऋण पुनः शोधन को स्पष्ट किया गया है। इसी तरह लोक ऋण के आन्तरिक स्रोतों के अन्तर्गत व्यक्तियों, गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं, व्यापारिक बैंकों, केन्द्रीय बैंक तथा बाह्य ऋणों के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय स्रोतों की व्यापक चर्चा की गयी है।

विकासशील देशों में विदेशी ऋण के महत्व को स्पष्ट करने हेतु युद्ध संकट की स्थिति में आर्थिक विकास करने, मन्दी दूर करने, पुनर्निर्माण हेतु नयी तकनीक प्राप्त करने एवं विदेशी विनिमय की कमी की स्थितियों को समझा गया है। तत्पश्चात् आन्तरिक ऋण हेतु विकासशील राष्ट्रों में लघुबचत के महत्व को स्पष्ट करते हुए लोक ऋण की सीमाओं को समझाया गया है।

इस इकाई शीर्षक के दूसरे भाग में लोक ऋण प्रबन्धन के अर्थ को स्पष्ट करने के साथ लोक ऋण प्रबन्धन के प्रो. टेलर तथा प्रो. राल्फ के सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए ऋण प्रबन्धन से सम्बन्धित सिद्धान्तों की संक्षिप्त व्याख्या की गयी है। तत्पश्चात् ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति से सम्बन्धित धनात्मक, तटस्थ एवं ऋणात्मक प्रबन्धन, ऋण प्रबन्धन की समस्याओं के अन्तर्गत दीर्घकालीन बनाम अल्पकालीन ऋण प्रबन्धन, तरलता द्वारा स्थिर क्रय शक्ति वाले बाण्ड एवं ऋण प्रबन्धन की नयी तकनीक तथा अल्पविकसित देशों में ऋण प्रबन्धन की समस्याओं को बताया गया है। इस प्रकार शीर्षक से सम्बन्धित बिन्दुओं को क्रमवार स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

3.7 शब्दावली (Glossary)

- शोधन-Redemption
- पूँजीकर-Capital Levy
- अवधिक वार्षिक-Terminal Annuity
- परिवर्तन-Conversion
- पुनः शोधन-Refunding
- तैरता अथवा अस्थायी-Floating or Temporary
- परिपक्वता एवं वितरण-Maturity and Distribution
- मुद्रीकरण-Monetization
- गैर-तरलता-Illiquidity
- परिसम्पत्ति के पोर्ट फोलियो-Portfolio of Assets

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers forPractice Questions)

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) ***Public Finance—Theory and Practice***, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) ***Lectures on Public Economics***, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) ***Handbooks of Public Economics***, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam

- Buchanan, J.M. (1970) ***The Public Finances***, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) ***Public Finance and Fiscal Policy***, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) ***Principles of Public Finance***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
- Goode, R. (1986) ***Government Finance in Developing Countries***, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) ***Public Finance***, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) ***Modern Public Economics***, Routledge, London
- Mcnutt, P. (2002) ***The Economics of Public Choice***, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) ***Modern Public Finance***, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) ***Public Choice***, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) ***The Theory of Public Finance***, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) ***Finance Commissions and Fiscal Federalism in India***, New Century Publications, New Delhi

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक ऋण के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए तथा लोक ऋण के भुगतान के तरीके बताइए।
2. लोक ऋणों के भुगतान की विभिन्न विधियाँ कौन-कौन सी हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. लोक ऋण क्या है? लोक ऋण के शोधन की विभिन्न रीतियों को समझाइए।
4. लोक ऋण के स्वरूप कौन-कौन से हैं? इसके भुगतान की विभिन्न विधियों का विवेचन कीजिए।
5. लोक ऋण प्रबंध पर एक लेख लिखिए।
6. लोक ऋण के प्रबंध के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं? क्या सभी की पूर्ति एक साथ सम्भव है ?

7. लोक ऋण के प्रबंध तथा मौद्रिक नीति के मध्य सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
8. लोक ऋण के प्रबंध से आप क्या समझते हैं? लोक ऋण के प्रबंध के कौन-कौन से सिद्धांत हैं? विकासशील देशों में लोक ऋण प्रबंध की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
9. एक विकासशील अर्थव्यवस्था में लोक ऋण के महत्व की विवेचना कीजिए। लोक ऋण में लघु बचत के महत्व को बतलाइए।

इकाई -4 संघीय वित्त के सिद्धान्त और समस्याएं

(Theory and Problems of Federal Finance)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 संघीय वित

4.3.1 एकात्मक वित्त

4.3.2 संघीय वित्त

4.4 संघीय वित्त के सिद्धांत

4.4.1 स्वतन्त्रता का सिद्धांत

4.4.2 स्वतन्त्रता पर्याप्त एवं लोच का सिद्धांत

4.4.3 स्वतन्त्रता एकरूपता का सिद्धांत

4.4.4 स्वतन्त्रता प्रशासनिक कुशलता का सिद्धांत

4.5 संघीय वित्त की समस्याएं

4.6 अभ्यास प्रश्न

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप पिछली इकाई में लोक ऋण के प्रभाव एवं भार ,लोक ऋण भुगतान की विभिन्न विधियाँ एवं प्रबन्धन को जान चुके हैं। इस इकाई में आप संघीय वित्त के प्रकार, सिद्धांत और समस्याओं को जान सकेंगे।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ संघीय वित्त का क्या आशय है?
- ✓ संघीय वित्त के प्रमुख प्रकार क्या है?
- ✓ संघीय वित्त के सिद्धांत कौन कौन से है?
- ✓ संघीय वित्त की समस्याएं कौन सी है?

4.3 संघीय वित्त

सर्वप्रथम यह जान लें कि संघात्मक राज्य में सरकार दो सत्ताओं में विभाजित होती है।

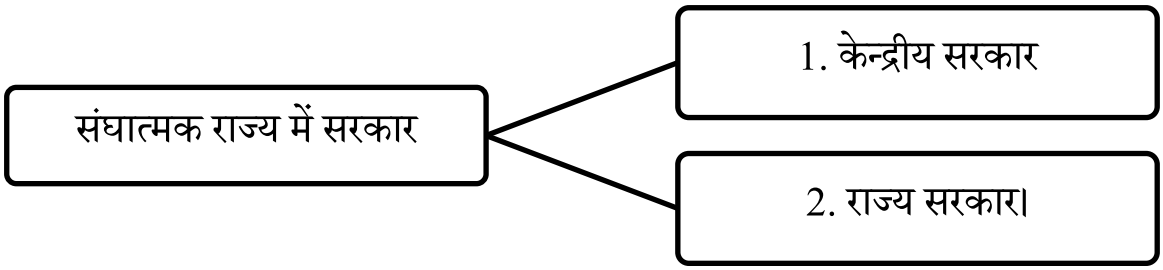

केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच कार्यों का विभाजन होता है। विभाजन का मुख्य आधार यह होता है कि जो कार्य सम्पूर्ण देश के लिए महत्वपूर्ण होते है या जिन्हें पूरे देश के लिए प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है वह केन्द्र के पास होते है। उदाहरण: विदेशी मामले प्रतिरक्षा, संचार साधन, विदेशी व्यापार तथा करेंसी केन्द्रीय सरकार के विषय हैं क्योंकि इनका राष्ट्रीय महत्व है।

दूसरी तरफ जो कार्य क्षेत्रीय आधार पर भली भांति सम्पन्न हो उन्हें राज्यों को सौप दिया जाता है। उदाहरण: सामान्यतः शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा कृषि इत्यादि राज्य सरकारों के विषय है। ध्यान रहे: केन्द्र एवं राज्य सरकार के कार्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। कुछ बातों में संघ सरकार तथा राज्य सरकारों का संयुक्त प्रशासन भी हो सकता है जैसे श्रम तथा कानून इत्यादि। सामान्यत: जहां तक कार्यों व अधिकार क्षेत्र का सम्बन्ध है सत्ताओं के दोनों वर्ग स्वतन्त्र होते है।

केन्द्र व राज्य की शासन व्यवस्था के इस विभाजन के आधार पर वित्त व्यवस्था भी दो भागों या वर्गो में बांटी जा सकती है।

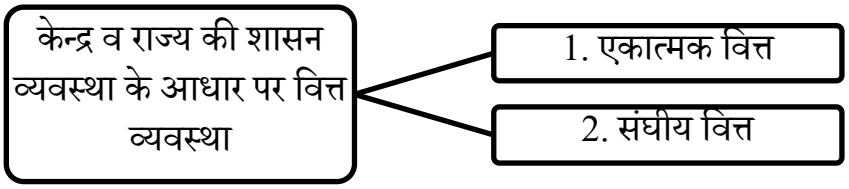

1. एकात्मक वित्त (Unitary Finance) 2. संघीय वित्त (Federal Finance)

4.3.1 एकात्मक वित्त (unitary Finance)

एकात्मक वित्त के अर्न्तगत देश की सम्पूर्ण मदों पर केवल केन्द्र सरकार ही व्यय करती है चाहे उस मद का सम्बन्ध पूरे देश से हो या किसी क्षेत्र से। सरल रूप में व्यय केन्द्र सरकार करती है। समस्त स्रोत्रों से जो आय प्राप्त होती है वह केन्द्रीय सरकार के कोष में जमा होती है।

4.3.2 संघीय वित्त (Federal Finance)

एकात्मक वित्त व्यवस्था के विपरीत संघीय वित्त व्यवस्था में आय एवं व्यय की समस्त मदों को (i) केन्द्रीय सरकार (ii) राज्य सरकारों तथा (iii) स्थानिक निकायों में बांट दिया जाता है। ध्यान रहे इन तीनों इकाइयों को अपनी अपनी मदों पर आय प्राप्त करने तथा व्यय करने की स्वतन्त्रता होती है। **डॉ. आर.एन. भार्गव (Dr. R. N. Bhargaw)** के अनुसार ***"संघीय वित्त का तात्पर्य संघीय तथा राज्य सरकारों के वित्त तथा उन दोनों के मध्य समन्वय से होता है। (Federal Finance means the finance of the federal as well as the state government and the relationship between the two.)"***

4.4 संघीय वित्त के सिद्धांत (Principles of Federal Finance)

सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि संघीय वित्त का ढांचा कुछ सिद्धांतों पर आधारित होता है। जिनके पीछे कुछ विशिष्ट अवधारणाएं होती है जैसे कि स्वतन्त्रता, पर्याप्त संसाधन, आय के संसाधनों का लोचशील होना, राज्य द्वारा समान रूप से हितकारी कार्यों का चयन, प्रशासन की कुशलता इत्यादि । इनके आधार पर संघीय वित्त के सिद्धांत निम्न है:

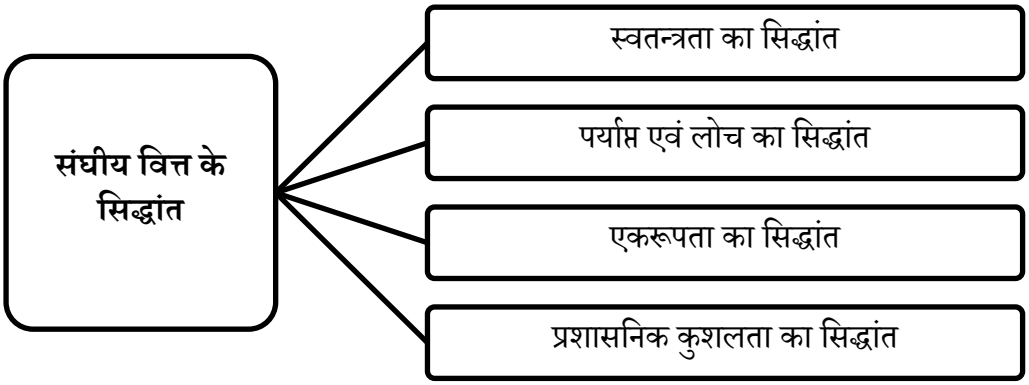

4.4.1 स्वतन्त्रता का सिद्धांत

स्वतन्त्रता के सिद्धांत के अधीन केन्द्र राज्य तथा स्थानिय निकाय अपने अंतरिक वित्तीय मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र इकाई के रूप में रहते है। सरल रूप से वह अपनी ईच्छा के अनुसार कर लगा सकते हैं तथा जरूरत पडने पर ऋण भी ले सकते है। प्राप्त आय को व्यय करने की भी उन्हे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उदाहरणः भारत में आयकर केन्द्र सरकार का विषय है तो मनोरंजन कर राज्य सरकार का। केन्द्र व राज्य एक दूसरे के आय संसाधनों

में कोई हस्तक्षेप नही कर सकते। सामान्यतया व्यवहार में, केन्द्र व राज्य सरकार की पूर्ण स्वतन्त्रता कई कारणों से संभव नहीं हो पाती। राज्य सरकार को संघ या केन्द्र सरकार की दया पर निर्भर रहना पडता है।

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त ना होने के कारण मुख्य कारण इस प्रकार है-

1. केन्द्र सरकार के पास आय के महत्वपूर्ण व लोचदार स्रोत होते है जबकि राज्य सरकार के स्रोत अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण होते है
2. केन्द्र सरकार के पास आय के कुछ ऐसे साधन या स्रोत होते है जिन्हें खण्ड अथवा टुकड़ों में बांटा जाना संभव नहीं होता। ऐसे में वह उस आय मे से एक निश्चित प्रतिशित राज्यों में बांट देती है।
3. विशेष परिस्थितियों में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है तथा राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है तथा राज्य सरकारों का कार्य इस सहायता के बिना चल पाना सभव भी नहीं हो पाता।

4.4.2 पर्याप्तता एवं लोच का सिद्धांत

यह सिद्धांत इस मूल विचार पर आधारित है कि आय के साधन पर्याप्त एवं पूर्णतः लोचदार होने चाहिए। अर्थात सरकार के द्वारा जिन कार्यों को पूरा किया जाना है। इन कार्यों हेतु सरकार के पास आवश्यक साधन उपलब्ध होने चाहिए साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि भविष्य में भी साधन पूर्ण रूप से उपलब्ध हो। *उदाहरण* किसी भी अनिश्चितता के समय में *जैसे कि* युद्ध, आपदा, अकाल, सूखा, दुर्भिक्ष, महामारी के समय में भी सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त हो सके, ऐसी वित्त व्यवस्था **'पर्याप्तता'** का **'लोच'** के अधीन देखी जाएगी।

डॉ. भार्गव ने पर्याप्तता और लोच के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए कहा कि, ***"साधनों के विभाजन की योजना एक लोचपूर्ण प्रणाली द्वारा स्थापित होनी चाहिए क्योंकि कोई भी योजना भले ही वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो, सब समयों के लिए अच्छी नहीं हो सकती।"***

यदि देश की परिस्थितियों में बदलाव आ जाए तो पहले से चली आ रही व्यवस्था काम नहीं कर पायेगी जब तक कि उसमें लोचशीलता का गुण न हो। इस कारण संसाधनों के बटवारे या आबण्टन में ऐसे परिवर्तनों की व्यवस्था हो जिन्हें देश के हित हेतु क्रियान्वित किया जाना संभव हो। व्यावहारिक रूप से यह देखा जाता है कि राज्यों को ऐसे आय के साधन दिए जाते हैं जो बेलोच होते है। ऐसे में आय की अपेक्षा बढ़ते हुए व्ययों को समायोजित करना संभव नहीं बन पाता दूसरी ओर केन्द्र सरकार के पास आय के लोचदार साधन विद्यमान होते है। *उदाहरण:* राज्य सरकार शिक्षा , चिकित्सा, कृषि पर व्यय करती है जो प्रति वर्ष बढ़ते ही जाते हैं जबकि इनके द्वारा राज्य सरकार को प्राप्त होने वाली आय में सापेक्षिक वृद्धि नहीं हो पाती।

4.4.3 एकरूपता का सिद्धान्त

सरकार ऐसे कुछ महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। जो समान रूप से राज्य के लिए भी आवश्यक एवं अनिवार्य होते है। इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों को समान संसाधनों का वितरण किया जाना चाहिए। एकरूपता के सिद्धान्त का मूल विचार यह है कि कार्यों के निष्पादन हेतु संघ की प्रत्येक इकाई द्वारा संघ सरकार को समान अंशदान देना चाहिए।

केन्द्र सरकार वित्त नीतियों का संचालन इस प्रकार करे कि राज्य सरकारों के लिए इसके व्यवहार में एकरूपता रहे। इस हेतु उसे राज्य सरकारों के समस्त नागरिकों पर समान दर से बिना किसी भेदभाव अथवा पक्ष पात के कर लगाना चाहिए। एकरूपता के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप से लागू करना इस कारण कठिन हो जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य की करदेय क्षमता समान नहीं होती। साथ ही प्रत्येक राज्य की आर्थिक स्थिति एवं जनसंख्या भी असमान होती है। *उदाहरण,* विशिष्ट आन्तरिक एवं सुरक्षा कारणों से सरकार जम्मू कश्मीर न पूर्वोत्तर राज्यों को अधिक संसाधनों का आवण्टन करती है। जबकि गुजरात, महाराष्ट्र जैसे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न राज्य उत्तराखण्ड, झारखण्ड या पूर्वोत्तर राज्यों की तुलना में सरकार को अधिक भार पडता है। प्रायः जिसे वह सहन नहीं कर पाते।

4.4.4 प्रशासनिक कुशलता का सिद्धांत

प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत का मुख्य विचार यह है कि सरकार की वित्त योजना ऐसी हो जिसमें कर वचन एवं घोखे की संभावना न हो साथ ही दोहरे कर से भी बचा जाए। इसी कारण **प्रो. सैलिगमैन** का कथन है कि चाहे कोई योजना कितनी भी सुविचारपूर्ण क्यों न हो एवं यह न्याय के अमूर्त सिद्धांतो से कितना भी मेल क्यों न रखे परन्तु जब तक प्रणाली प्रशासनिक दृष्टि से ठीक काम नहीं करती इसकी सफलता पर संदेह बना रहेगा। प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत को **डॉ. आर. एन. भार्गव** ने कार्य कुशलता का सिद्धांत कहा है। **प्रो. अडारकर** ने प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत पर अधिक बल दिया है। वित्तीय योजना ऐसी होनी चाहिए जिसमें कर वंचना एवं धोखे की गुंजाइश ना हो और ना ही दोहरे कर की संभावना हो।

उदाहरण प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत के अर्न्तगत जो कर अन्तर्राज्यीय स्वरूप का है उसका प्रबंध केन्द्र सरकार को करना चाहिए तथा राज्य सरकार क्षेत्रीय महत्व के करों का प्रबंध करे। अर्थात केन्द्र सरकार आय कर, सीमा-शुल्क तथा उत्पादन शुल्क एकत्रित करे एवं राज्य सरकार मनोरंजन कर, सिचाई कर व स्थानीय निकाय चूंगी एवं भवन कर का दायित्व संभाले। प्रबंधकीय कुशलता हेतु आवश्यक होगा कि जो राज्य जिस कर को लगाए वही उसको व्यय करे।

4.5 संघीय वित्त की समस्याएं

संघीय वित्त की मुख्यतः तीन समस्याएं है।

1. वित्तीय साधनों के अनुरूप कार्यों का विभाजन
2. वित्तीय साधनों व कार्यों के मध्य असंतुलन
3. अन्य राज्यों की अपेक्षा कुछ राज्यों का आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होना।

1 वित्तीय साधनों के अनुरूप कार्यों का विभाजन

वित्तीय संसाधनों के अनुरूप किया जाना संघवाद का मुख्य तत्व यह है कि केन्द्र व क्षेत्रीय सरकार/राज्य सरकार व स्थानीय निकाय संविधान द्वारा सुनिश्चित कार्यों में लगभग एक दूसरे से स्वतन्त्र होते है। अतः आवश्यक है कि संविधान में जब कार्यों के वितरण को सुनिश्चित किया जाय तब उन कार्यों को सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय बटवारा भी निश्चित हो। ऐसे बटवारे में मुख्य बात यह ध्यान में रखी जाए कि प्रत्येक इकाई अर्थात् केन्द्र, राज्य व स्थानिक निकाय को पर्याप्त संसाधन प्रदान किए जाएं जिससे उन कार्यों को सुचारू रूप से किया जा सकें जिन्हें प्रत्येक इकाई को सौपा गया है।

संघीय वित्त की समस्या यह है कि कार्यों के अनुरूप वित्तीय संसाधन हो। एक उचित व अनुकूल वित्तीय प्रणाली वह कहीं जाएगी जिसमें संघ, राज्य तथा स्थानीय निकाय अपनी आय प्राप्त करने व व्यय करने में एक दूसरे से स्वतन्त्र हो तथा आय के साधनों में पर्याप्तता का गुण भी विद्यमान हो।

किसी भी संघ में केन्द्र व राज्य सरकारों के मध्य निरपेक्ष रूप में स्वतन्त्रता तथा समन्वित स्तर बन नहीं पाता। इसलिए कार्यों का विभाजन स्वतन्त्र रूप से संभव नहीं हो पाता।

2 कार्यों एवं साधनों के मध्य असंतुलन

कार्यों एवं साधनों के मध्य संतुलन में प्रमुख बाधा सामाजिक एवं तकनीकी परिवर्तन है। यह प्रवृति हम स्पष्ट कर चुके है कि संघीय राज्यों में प्राय: यह देखा जाता है कि केन्द्रीय सरकार के साधनों में धीरे-धीरे क्रर्मिक वृद्धि होती जाती है परन्तु राज्य सरकारों के साधन अपर्याप्त ही नही रहते बल्कि अपनी स्वतन्त्रता भी खो देते है। चूंकि सरकार के कार्य कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में निहित हैं इसलिए सरकार के दायित्वों का बढ़ते रहना मुख्य प्रवृत्ति बन जाती है। ऐसे में व्यय भी बढ़ते जाते है जिसके लिए अधिक धन या पूंजी की आवश्यकता बनी रहती है। यदि आय के स्रोत अपर्याप्त हो तो बढे हुए कार्यों के सापेक्ष संतुलन बन पाना संभव नहीं होता।

इस समस्या के सन्दर्भ में **प्रो. डी.आर. गाडगिल** का कथन है कि, ***"संघीय राज्यों में आरंभ में प्राय: यह प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक सत्ता को कार्यों के अनुरूप साधन प्राप्त हो परन्तु समय बीत जाने पर इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि उत्तरदायित्व का विस्तार आय के निर्धारित साधनों की लोच के अनुरूप हो।"*** अतः एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती है जो बदलती हुई परिस्थितियों में साधनों का पुर्नवितरण व समन्वय कर सके।

उदाहरण साधनों का पुर्नवितरण एवं समन्वय करने के लिए संतुलनकारी उपायो (करों से प्राप्त आय को राज्यों के साथ बटवारा करके, क्षेत्रीय सरकारों को अनुदान की व्यवस्था करके तथा समवर्ती शक्तियों की व्यवस्था) द्वारा ही संभव है। व्यावहारिक रूप से भारत के संविधान में संतुलन की ऐसी व्यवस्था के लिए करों से आय को संघ एवं राज्यों के मध्य बांट कर तथा धारा 275 के अधीन केन्द्रीय अनुदानों को प्रदान करते हुए की गई है। जिसकी सिफारिश वित्त आयोग द्वारा समय समय पर की जाती है।

3. अन्य राज्यों की अपेक्षा कुछ राज्यों का आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होना

संघीय ढांचे के अधीन सभी राज्य आर्थिक विकास की दृष्टि से एकरूप नहीं होते। कुछ राज्यों में आर्थिक वृद्धि की दरें उच्च होती है तो कुछ राज्य पीछे रह जाते है। ऐसी असमानता से अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है। प्रत्येक संघ में ऐसी विषमताओं को कम करने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु संघ द्वारा पिछड़े राज्यों को अनुदान दिए जाते है।

उदाहरण- भारत में राज्यों के मध्य दिख रही असमानता को दूर करने के लिए वित्त आयोग कर-आय विभाजन की तथा राज्यों को अनुदान देने की संस्तुति प्रदान करता है।

4.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

4.7 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने यह स्पष्ट किया है वित्त व्यवस्था दो प्रकार की होती है 1. एकात्मक वित्त तथा 2. संघीय वित्त। एकात्मक वित्त के अर्न्तगत देश की सम्पूर्ण मदों पर केन्द्रीय सरकार द्वारा व्यय किया जाता है जबकि संघीय वित्त के अधीन आय-व्यय की समस्त मदों को केन्द्र, राज्य व स्थानिक निकायों में बाट दिया जाता है। संघीय वित्त के सिद्धांत मुख्यतः चार आधारभूत अवधारणाओं पर आधारित रहता है जिन्हें स्वतन्त्रता, पर्याप्तता एवं लोच, एकरूपता व प्रशासनिक कुशलता में बांटा जाता है संघीय वित्त व्यवस्था के सिद्धांतों एवं संघीय वित्त की समस्याओं पर विचार किया। संक्षेप में संघीय वित्त के चार सिद्धान्त है। 1. स्वतन्त्रता का सिद्धांत 2. पर्याप्तता व लोच का सिद्धांत 3. एकरूपता का सिद्धांत 4. प्रशासनिक कुशलता का सिद्धांत। संघीय वित्त की समस्याएं मुख्यतः वित्तीय साधनों के अनुरूप कार्यों के विभाजन कार्यों व साधनों के बीच संतुलन में भावी सामाजिक व तकनीकी परिवर्तनों के कारण विघ्न उत्पन्न होना तथा कुछ राज्यों का अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक निर्धन होना है।

4.8 शब्दावली (Glossary)

- **लोक व्यय-** सरकारों द्वारा किये जाने वाला व्यय ही सामान्य रूप से लोक व्यय कहा जाता है। यह धनराशि जनता से प्राप्त की जाती है तथा जनता पर ही खर्च की जाती है।
- **लोक सत्ता-** लोक सत्ता से सामान्य तात्पर्य राष्ट्र या राज्यों की सरकारों से है जिनका चयन या चुनाव जनता द्वारा किया जाता है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers forPractice Questions)

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- डॉ. एस. के. सिंह, *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी *लोक अर्थशास्त्र*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र, *राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त*, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल, *लोक वित्त*, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र, *लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त* विजडम बुक्स, वाराणसी

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया, एच.एल. (2006)-*लोक वित्त* (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005)-*राजस्व* (Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997)- *राजस्व*, साहित्य भवन पब्लिकेशन हॉस्पिटल रोड, आगरा।
- सिंह, एस. के. (2013)-*लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन

पब्लिकेशन, आगरा

4.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के बीच कार्यों के विभाजन का आधार क्या है?
2. एकात्मक वित्त व संघीय वित्त को समझाऐ।
3. संघीय वित्त की परिभाषा दें।
4. पर्याप्तता एवं चोच के सिद्धांत का स्पष्ट करे।
5. प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत को संक्षेप में समझाऐं।
6. प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत किन दशाओं में सार्थक होगा?
7. केन्द्र राज्य व स्थानिक स्तर पर प्रशासनिक कुशलता के सिद्धांत के अधीन कौन से कर लगाने उचित रहेंगे।
8. सामाजिक व तकनीकी करणों से आय-व्यय के असंतुलन में समायोजन के उपाय क्या है? संक्षेप में समझाए।
9. संघीय वित्त में कार्यों का विभाजन वित्तीय साधनों के अनुरूप क्यों नहीं होता। संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
10. संघीय वित्त के मुख्य सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
11. आर्थिक असमानता के निवारण हेतु संघीय वित्त द्वारा कौन सा उपाय सर्वप्रचलित है? बतलाइये।

इकाई - 5 संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण
(Allocation and Functioning of Federal Finance)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण
5.4 कर साधनों की पृथकता तथा कर आय को केन्द्र व प्रान्तों में विभाजित करने की व्यवस्था
5.5 वित्तीय समायोजन की आवश्यकता
5.6 केन्द्र व राज्य सरकारों के आय के स्रोत
5.7 संतुलन के घटक
5.8 वित्त आयोग की आवश्यकता
5.9 वित्तीय समायोजन का विभाजन एवं कार्यकरण
5.10 अभ्यास प्रश्न
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.16 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप पिछली इकाई में आप संघीय वित्त के प्रकार, सिद्धांत और समस्याओं को जान चुके हैं। इस इकाई में आप संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्याकरण, वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता, कर साधनों की पृथकता तथा करों द्वारा अर्जित आय को केन्द्र व प्रान्तों में विभाजित करने की व्यवस्था एवं वित्तीय समायोजन की आवश्यकता और केन्द्र व राज्य सरकारों के आय के स्रोत और वित्त आयोग की आवश्यकता को जानेगें।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण का क्या आशय है?
- ✓ वित्तीय समायोजन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- ✓ वित्तीय समायोजन की आवश्यकता को जान पायेगें।
- ✓ कर आय का विभाजन को समझ सकेंगे।
- ✓ अनुपूरक कर और केन्द्र को राज्यों के अनुदान को जान पायेगें।

5.3 संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण

केन्द्र एवं राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों का विभाजन अत्यंत महत्वपूर्ण है। संघीय वित्त का विभाजन एक कठिन समस्या है। भारतीय संविधान में इस समस्या का समाधान केन्द्र एवं प्रान्तों के वित्तीय सम्बन्ध (1935 के अधिनियम) के अनुरूप किया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारतीय संविधान ने वित्तीय साधनों में केन्द्र एवं राज्यों के मध्य जितनी पृथकता लाई जा सकती थी उतनी पृथकता लाने का प्रयत्न किया। भारत के संविधान में अधिनियम 1935 के तहत कर साधनों की पृथकता तथा करों द्वारा अर्जित आय को बडे तथा छोटे दोनों प्रकार के प्रान्तों में वितरित की व्यवस्था की गयी।

केन्द्र व राज्य सरकारों के विकास कार्यों हेतु वित्तीय संसाधनों को बाटने की आवश्यकता होता है। संघीय शासन प्रणाली के सामने यह समस्या आती है कि कौन से साधन संघ सरकार के पास रहे तथा कौन से साधन राज्य सरकार के पास। एक विकल्प यह हो सकता है कि समस्त साधन संघ सरकार के पास ही रहे तथा वह इन संसाधनों से प्राप्त आय का कुछ भाग राज्यों को दे दे। परन्तु ऐसा होने पर वित्तीय मामलों में स्वतन्त्रता समाप्त हो जाएगी तथा राज्य सरकारे पूरे तरीके से केन्द्र पर आश्रित हो जाएगी। समस्या का समाधान तभी हो सकता है जबकि केन्द्र व राज्य सरकारों को जो आय के साधन सौप दिए जाए। उनका मुख्य आधार सामान्यत: वैसा ही होना चाहिए जैसा कि उनके कार्यों का विभाजन होता है।

5.4 कर साधनों की पृथकता तथा कर आय को केन्द्र व प्रान्तों में विभाजित करने की व्यवस्था

जैसे कि हमने पहले ही स्पष्ट किया है कि संघीय वित्त का विभाजन एक कठिन समस्या है। जिसका समाधान भारतीय संविधान में 1935 के एक्ट के अनुरूप किया गया। अर्थात् 1935 के एक्ट के अनुरूप किया गया।

अर्थात् 1935 के एक्ट की तरह भारतीय संविधान में कर साधनों की पृथकता तथा कर आय को केन्द्र तथा प्रान्तों में बटवारे दोनो की ही व्यवस्था है। राज्यों के अधिकार में करों की सूची कुछ नए करों के साथ लगभग वही है जैसे कि 1935 में थी। इसके साथ ही जैसा 1935 के अधिनियम में था उसी प्रकार संविधान, आयकर तथा संघीय उत्पादन शुल्क से प्राप्त आय को केन्द्र व प्रान्तों में बांटने की व्यवस्था करता है परन्तु दो महत्वपूर्ण अंतर विद्यमान हैं। पहला अंतर यह कि 1935 के एक्ट में अवशिष्ट शक्तियों के बंटवारे को गर्वनर-जनरल को सौप दिया गया था, संविधान ने इसे केन्द्र को सौप दिया।

दूसरा अंतर यह कि, संविधान में वित्त आयोग की व्यवस्था की गई जब संविधान निर्माता सभा के द्वारा स्वतंत्र भारत के संविधान को अंतिम रूप दिया जा रहा था तभी विभिन्न रियासते भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गई । संविधान निर्माताओं ने केन्द्र व राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों के बटवारे पर विशेष ध्यान दिया। एक ओर सुदृढ केन्द्र की इच्छा थी तो दूसरी ओर राज्यों की स्वायत्तता भी महत्वपूर्ण थी। इस पक्ष को **के. संघानम** व **विश्वनाथ दास** ने प्रमुखता से सामने रखा।

5.5 वित्तीय समायोजन की आवश्यकता

संघीय शासन व्यवस्था में यह प्रयास किया जाता है कि संघ तथा राज्य के मध्य आय के साधनों का वितरण इस प्रकार किया जाए कि प्रत्येक इकाई आत्मनिर्भर बन जाए तथा अपनी आवश्यकता के अनुरूप आय की प्राप्ति करे। परन्तु वित्तीय साधनों को इस प्रकार विभाजित करना कठिन होता है कि वह प्रत्येक इकाई की आवश्यकता के अनुरूप हो। व्यवहार में सरकार की आवश्यकता व वित्तीय साधनों मंर संतुलन नही हो पाता। प्राय: यह देखा जाता है कि एक इकाई के पास वित्त की अधिकता हो तो दसरे को वित्त प्राप्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। राज्यों की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में अन्तर होता है इसलिए एक ही आगम स्रोत से एक राज्य अधिक आय प्राप्त कर लेता है तो दसरा इसके सापेक्ष कम आय प्राप्त कर पाता है। फिर यह भी देखा गया है कि संघ सरकार अपने पास आय के लोचदार साधन रखती है जबकि व्यय की लोचपूर्ण मदें राज्य सरकारों के पास होती है। इन सब कारणों से वित्तीय साधनों में समायोजन आवश्यक होता है।

5.6 केन्द्र व राज्य सरकारों के आय के स्रोत

1. केन्द्रीय सरकार के आय स्रोत:- सामान्यत: केन्द्र सरकार के आय स्रोत आरम्भ में 12 कर साधन नियत किए गए। लेकिन इनमें से कुछ ही ऐसे है जिनकी आय केवल केन्द्र को प्राप्त होती है।

(1) आय कर (कृषि आय को छोड़कर)
(2) सीमा शुल्क (जिसमें निर्यात शुल्क शामिल है)
(3) उत्पादन शुल्क (शराब, अफीम को छोड़कर)
(4) निगम कर
(5) सम्पति कर (कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पति ।
(6) पूंजी कर
(7) उत्तराधिकार कर
(8) सीमांत कर (रेलो द्वारा ले जाए गए सामान व यात्रियों से प्राप्त कर)
(9) स्टाम्प शुल्क (स्टॉक एक्सचेंज में लेने- देने पर)
(10) विनिमय पत्र, चैक इत्यादि पर स्टाम्प शुल्क
(11) समाचार पत्रों के क्रय विक्रय एवं प्रकाशित विज्ञापनों पर कर,
(12) समाचार पत्रों को छोड़कर अन्तर्राज्यीय व्यापार में हो।

2. राज्य सरकारों के आय के स्रोत

निम्नांकित कर-साधन राज्यों के अधिकार में रखे गए:

(1) मालगुजारी
(2) कृषि आय पर कर
(3) कृषि भूमि के उत्तराधिकार पर शुल्क
(4) कृषि –भूमि के संदर्भ में अस्त्रि कर
(5) भूमि –भवन कर
(6) खनिज अधिकारों पर कर
(7) शराब, अफीम इत्यादि मादक पदार्थो पर उत्पादन कर
(8) स्थानीय क्षेत्र में उपभोग अथवा बिक्रीहेतु आई वस्तुओं पर कर
(9) बिजली के उपभोग पर कृषि कर्मी व बिक्री पर कर
(10) समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओ की बिक्री पर कर,
(11) सड़क अथवा आंतरिक जल-परिवहन के द्वारा ले जाए गए माल अथवा यात्री पर कर
(12) सड़को पर चलने वाले वाहनों पर कर
(13) जानवरों तथा नावों पर कर
(14) चुंगी (toll)
(15) व्यवसाय कर
(16) विलासिता कर (जिनमें मनोरंजन कर, जुआकर सम्मिलित है)
(17) प्रलेखों पर स्टाम्प शुल्क ,तथा
(18) कोर्ट फीस के अतिरिक्त राज्य के अन्य कार्यों के लिए फीस

उपर्युक्त सूची से निम्न तथ्य स्पष्ट होते है।

(i) केवल सीमा शुल्क जिसमें (निर्यात शुल्क शामिल है) निगम कर, एवं पूंजी कर ही ऐसे कर हैं जिनकी सम्पूर्ण आय केन्द्र सरकार के पास रहती है।

(ii) आय कर केन्द्र सरकार लगाती तथा वसूल करती है। इस कर से प्राप्त आय को केन्द्र व राज्यों में बांटा जाता है। उत्पादन कर (राज्यों द्वारा लगाए जाने वाले उत्पादन कर को छोड़कर) केन्द्र सरकार द्वारा लगाया जाएगा तथा राज्यों को भी इसका एक मांग प्राप्त होगा, यदि संसद ऐसा करना सुनिश्चित करे।

(iii) कुछ कर ऐसे हैं जिन्हें केन्द्र के द्वारा लगाया एवं एकत्रित किया जाता है परन्तु इनसे प्राप्त सम्पूर्ण आय को संसद द्वारा नियमानुरूप राज्यों में वितरित कर दिया जाताहै इन करों में मुख्य हैं।

(a) सम्पति कर
(b) उत्तराधिकार कर
(c) यात्रियों तथा सामान पर सीमांत कर
(d) रेल भाड़े पर कर
(e) स्टॉक एक्सचेंज में लेन-देन पर लगे स्टाम्प शुल्क को छोड़कर अन्य कर
(f) समाचार पत्रों के क्रय विक्रय पर कर तथा
(g) अन्तराज्यीय व्यापार पर कर

(iv) ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते है परन्तु राज्यों द्वारा एकत्रित किए जाते हैं व रख लिये जाते हैं जैसे स्टाम्प शुल्क एवं औषधीय एवं प्रसाधन सामग्री पर उत्पादन शुल्क।

5.7 संतुलन के घटक

संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से ध्यान में रखा कि राज्यों के पास सामाजिक सेवा व कल्याणकारी कार्यों का उत्तरदायित्व है जिन्हें पूर्ण करने के लिए उनके पास साधन अपर्याप्त होंगे। अत: निम्न व्यवस्था की गई।

(अ) कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर लगने वाले करों व संघीय उत्पादन करों से प्राप्त आय को संघ व राज्य सरकारों में वितरित करने की व्यवस्था है।

(ब) केन्द्र सरकार की ओर से राज्य सरकारों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है ये अनुदान उन राज्यों को प्रदान किये जाते है जिन्हें सहायता की आवश्यकता होती है। अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए भी अनुदान दिए जाते है।

(स) संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिभार लगाकर ऐसे किसी भी कर में वृद्धि कर सकती है जिससे प्राप्त आय का कुछ भाग राज्यों में वितरित होता है। इन अधिकारों से प्राप्त संपूर्ण आय का उपभोग करने का अधिकार संघ सरकार को दिया गया है।

5.8 वित्त आयोग की आवश्यकता

साधनों का बटवारा उनके कार्यों तथा दायित्वों के अनुकूल कर पाना प्राय: किसी भी संघ द्वारा संभव नहीं होता। संघ तथा राज्यों के बीच बंटवारें की विशुद्ध एवं व्यापक व्यवस्था को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने महसूस किया कि संसाधनों का बंटवारा सब परिस्थितियों व सब समयों में संतोषजनक नहीं रह सकता। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के एक स्वतन्त्र एजेंसी की स्थापना की गई जिसकी सिफारिश पर संघीय साधनों के कुछ भाग को राज्यों को दिया जाना संभव हो। यह एजेंसी ही वित्त आयोग (Finance Commission) है। वित्त आयोग एक ऐसी संस्था है जिसे आय कर तथा संघीय उत्पादन कर की आय के विभाजन के अतिरिक्त, राज्यों को सामान्य तथा विशिष्ट अनुदानों की सिफारिश करने का भी अधिकार प्राप्त है। स्पष्ट है कि वित्त आयोग के प्रावधान का अभिप्राय राज्यों को आश्वस्त करने के लिये किया गया था कि वितरण की योजना संघ द्वारा स्वेच्छा से नहीं बनाई जाएगी बल्कि एक स्वतन्त्र आयोग द्वारा बनाई जाएगी जो राज्यों की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप होगा।

5.9 वित्तीय समायोजन का विभाजन एवं कार्यकरण

वित्तीय समायोजन निम्न प्रकार किया जाता है।

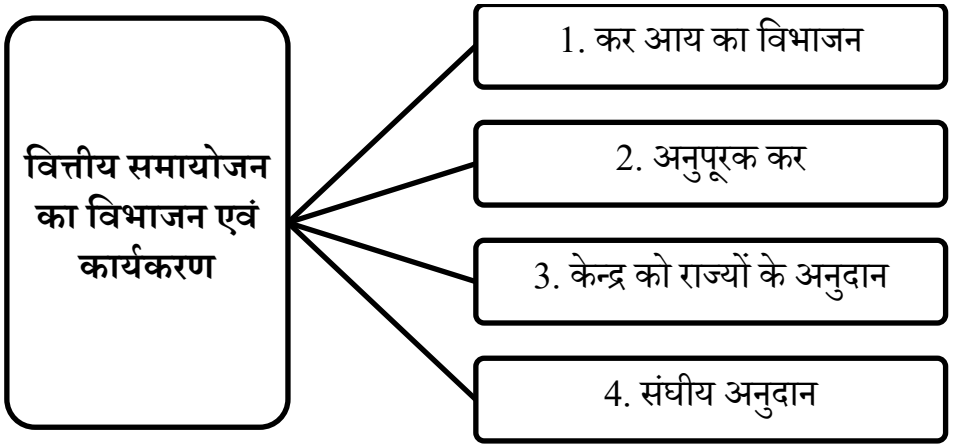

1. कर आय का विभाजन

संघीय वित्त के सिद्धांत एवं समस्याओं का अध्ययन करते हुए हमने स्पष्ट किया कि कुछ कर सुविधा की दृष्टि से केन्द्र सरकार द्वारा लगाए एवं एकत्रित किये जाते है परन्तु प्राप्त आय का कुछ भाग राज्य सरकारों को प्रदान किया जाता है। इस विधि को तब अपनाया जाता है जब किसी कर साधन से प्राप्त आय काफी अधिक हो। *उदाहरण:* भारत में आय कर केन्द्र लगाया एवं एकत्रित किया जाता है परन्तु उसकी आय का एक भाग राज्यों में बांट दिया जाता है। राज्यों के मध्य कर आय का वितरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है।

(i) राज्य की जनसंख्या
(ii) राज्य से एकत्रित धनराशि
(iii) राज्य की कर देय क्षमता
(iv) राज्य की औद्योगिक प्रगति
(v) राज्य का क्षेत्रफल कर आय का विभाजन उपर्युक्त में से एक अथवा अधिक आधारों पर किया जा सकता है।

व्यावहारिक कठिनाइयां : सामान्य रूप से यह विभाजन काफी सरल प्रतीत होता है परन्तु इसे लागू करने में कई व्यावहारिक कठिनाईयां आती है जो निम्नांकित हैं।

1. यदि केन्द्रीय सरकार द्वारा करों को लागू कर स्वयं एकत्र किया जाए व प्राप्त आय को राज्यों में बांट दिया जाए तब वह करों को एकत्रित करने में रूचि नहीं लेगी।
2. यदि प्राप्त कर आय में उसका भाग पूर्व निश्चित हो तब उसकी रूचि और कम हो जाएगी।
3. संघ द्वारा एकत्रित धनराशि में से अधिकाधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए राज्यों में प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है।
4. कर आय के विभाजन में चाहे कोई भी आधार लिया जाए कुछ राज्य हमेशा इस वितरण से असंतुष्ट रहेंगे।

जिन राज्यों में जनसंख्या का आधिक्य है वह जनसंख्या को आधार बनाना चाहेंगे जबकि विकसित राज्य हर राज्य में वसूल की जानी वाली धनराशिको आधार बनाना चाहेगे। प्रत्येक राज्य को न्याय संगत भाग की प्राप्ति हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ओर स्थायी आधार वांछनीय है तो दूसरी ओर ऐसी व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है जिसके द्वारा सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के बदल जाने पर समायोजन किया जा सके। भारत में यह व्यवस्था वित्त आयोग के द्वारा संभव बनाई गई है।

2. अनुपूरक

समायोजन की दूसरी विधि अनुपूरक कर है। कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाए जाते है परन्तु राज्य सरकार अपने उपयोग के लिए उन पर कुछ अतिरिक्त कर लगा देती है। इस प्रकार राज्य कुछ अतिरिक्त साधन प्राप्त कर लेते हैं। करदाता भी केन्द्र व राज्य को अलग-अलग कर अदा नहीं करता बल्कि एक साथ ही कर देता है।

अनुपूरक कर की विधि की दुर्बलता यह है कि कर का आधार तो एक ही रहता है परन्तु जब कर एक से अधिक लगते है तो कर का भार अधिक हो जाता है। कर भार अधिक होने का बुरा प्रभाव उत्पादन, बचत एवं वितरण पर पडता है। जिससे अंतत: उत्पादकता व आय प्रभावित होती है।

3. केन्द्र को राज्यों के अनुदान

संघीय वित्त के क्रियान्वयन की तीसरी पद्धति यह है कि राज्य केन्द्र को अंशदान दे। भारत में 1919 के संविधान में केन्द्र सरकार हेतु प्रान्तीय अंशदानों की व्यवस्था थी । इस व्यवस्था में केन्द्र सरकार अपनी आय के बड़े हिस्से के लिए राज्यों पर आश्रित हो थी।

केन्द्र सरकार जब अपनी आय के बहुल भाग हेतु राज्यों पर निर्भर रहे तब यह संभावना बनी रहती है कि अनेक राष्ट्रीय कार्यों हेतु वित्त की कमी से जूझना पडे। संकट काल जैसे युद्ध तथा अन्य आपदाओं में यह व्यवस्था जोखिम पूर्ण हो सकती है इसलिए यह व्यावहारिक नहीं है।

4. संघीय अनुदान

संघीय वित्त के विभाजन में संघीय अनुदान की पद्धति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। व्यवहार में यह देखा गया है कि आय की महत्वपूर्ण व लोचदार मदें राज्य सरकार के पास रहती है। ऐसे में यह उचित है कि संघ सरकारों को दिए गए अनुदान से राज्यों के पास अपर्याप्त आय की समस्या का निराकरण होता है। इस प्रकार उनकी वित्त व्यवस्था में सुधार आता है। केन्द्र द्वारा दिए गए अनुदान दो प्रकार के होते है:

1. शर्त सहित एवं शर्त रहित।
2. स्थिर अथवा अस्थिर।

अनुदान केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को किसी विशेष योजना के लिए प्रदान किए जाते है। दूसरी तरफ शर्त रहित अनुदान का उदाहरण है पिछड़े राज्यों को शिक्षा सड़क परिवाहन नहर व सिंचाई के अन्य साधनों, अन्तर्संरचना, कृषि व उद्योग इत्यादि के लिए प्रदान किए जाने वाली सहायता। केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य को दी गई अनुदान राशि के व्यय का नियंत्रण एवं निरीक्षण किया जाता है। जिसका उद्देश्य धन के दुरूपयोग पर नियंत्रण लगाने से है। शर्त रहित अनुदान प्रदान करने में केन्द्र सरकार के सम्मुख यह कठिनाई आती है कि विभिन्न राज्यों के हिस्से का निर्धारण किस प्रकार किया जाए। विभिन्न राज्यों के हिस्से के निर्धारण के लिए आवश्यक मापदण्ड जैसे जनसंख्या , सामूहिक सम्पत्ति, क्षेत्रों का पिछड़ापन व राज्यों की आवश्यकता को मुख्यत: ध्यान में रखा जाए। इन सभी तत्वों को आधार बनाना तो जटिल है इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से एक या दो मापदण्डों को आधार बनाया जाता है।

5.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

5.11 सारांश (Summary)

इस खण्ड में हमने संघीय वित्त के विभाजन एवं कार्यकरण के विषय में जानकारी प्राप्त की। हमने स्पष्ट रूप से समझा कि संघीय वित्त में संसाधनों के बटवारेकी समस्या महत्वपूर्ण है। इसके लिए वित्तीय समायोजन की आवश्यकता पडती है। 1935 के अधिनियम एवं संविधान के अर्न्तगत केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों के आय के स्रोत निर्दिष्ट किए गए। संतुलन बनाए रखने के लिए उपयुक्त व्यवस्था की गई। भारतीय संविधान से एक स्वतन्त्र एजेंसी की स्थापना की गई जिसकी सिफारिश पर संघीय साधनों के कुछ भाग को राज्यों को दिया जा सके। इसका संस्थागत रूप वित्त आयोग है। वित्तीय समायोजन के चार मुख्य तरीके है पहला कर-आय का विभाजन, दूसरा अनुपूरक कर तीसरा केन्द्र को राज्यों के अनुदान, चौथा संघीय अनुदान।

5.12 शब्दावली (Glossary)

- **वितरणीय असमानताएँ -** समाज के मध्य राष्ट्रीय आय का असमान वितरण। • संसाधनों का आवंटन - उत्पादन कार्य के लिए साधनों को उचित रूप में बँटवारा करना।
- **कर राजस्व -** करारोपण के उपरान्त प्राप्त धनराशि को कर राजस्व कहा जाता है

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers forPractice Questions)

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- डॉ. एस. के. सिंह, *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी, *लोक अर्थशास्त्र*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र, *राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त*, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल, *लोक वित्त*, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र, *लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त* विजडम बुक्स, वाराणसी

5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया, एच. एल (2006)-*लोक वित्त* , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005) *राजस्व* ,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997)-*राजस्व*, साहित्य भवन पब्लिकेशन हॉस्पिटल रोड, आगरा।
- सिंह, एस. के. (2013)-*लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

5.16 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अनुपूरक कर से क्या तात्पर्य है। संक्षेप में स्पष्ट करे।
2. अनुपूरक कर की दुर्बलताएँ या दोष क्या है? समझाऐं।
3. संघीय वित्त के विभाजन एवं कार्यकरण की व्याख्या कीजिए।
4. वित्तीय समायोजन किस प्रकार संभव है? स्पष्ट कीजिए।
5. *"संघीय वित्त की मुख्य समस्या साधनों का बंटवारा है।"* इसे किस प्रकार सुलझाया जाता है।
6. कर आय का विभाजन राज्यों के मध्य किन आधारों पर किया जाता है?
7. कर आय के वितरण की व्यावहारिक परेशानियां क्या है? संक्षेप में समझाइए।

इकाई - 6 वित्त आयोग संरचना एवं कार्यकरण

(Structure and Functioning of Finance Commission)

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 वित्त आयोग की स्थापना

6.4 वित्त आयोग की संरचना

6.5 वित्त आयोग की कुछ कार्य प्रवृतियां

6.6 अब तक गठित वित्त आयोग

6.7 वित्त आयोग की भूमिका

6.8 वित्त आयोग की कार्य-प्रणाली

6.9 वित्त आयोग की सिफारिशों का क्रियान्वयन

6.9.1 आयकर के सन्दर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशें

6.9.2 केन्द्रीय उत्पाद कर और सम्पदा शुल्क के सन्दर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशें

6.10 वित्त आयोग के संगठन और कार्यात्मकता में विभिन्न तरह की कमियां

6.11 वित्त आयोग को बेहतर प्रभावी बनाने के संबंध में सुझाव

6.12 अभ्यास प्रश्न

6.13 सारांश

6.14 शब्दावली

6.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.18 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

आपने पिछली इकाई में संघीय वित्त का विभाजन एवं कार्यकरण, कर साधनों की पृथकता तथा कर आय को केन्द्र व प्रान्तों में विभाजित करने की व्यवस्था वित्तीय समायोजन की आवश्यकता को जाना। इस इकाई में वित्त आयोग की स्थापना, संरचना, कार्य, प्रवृतियां और अब तक गठित वित्त आयोग एवं उनकी सिफारिशों को जानेगें। वित्त आयोग के संगठन और कार्यात्मकता में विभिन्न तरह की कमियां एवं उनको प्रभावी बनाने के संबंध में सुझाव दे सकेंगे।

6.2 उद्देश्य (Obectives)

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं -

- ✓ वित्त आयोग की स्थापना, संरचना कार्य, प्रवृतियों को जानना।
- ✓ वित्त आयोग की कार्य-प्रणाली को समझ सकेंगे।
- ✓ अब तक गठित वित्त आयोग की भूमिका, कार्य-प्रणाली और सिफारिशों के क्रियान्वयन को समझ सकेंगे
- ✓ वित्त आयोग के संगठन और कार्यात्मकता में विभिन्न तरह की कमियां एवं उनको प्रभावी बनाने के संबंध में सुझावों को जान सकेंगे ।

6.3 वित्त आयोग की स्थापना (Establishment of Finance Commission)

भारतीय संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था है। धारा 280 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद या यदि आवश्यक हो तो इसके पहले, राष्ट्रपति वित्त आयोग का गठन करेंगे। जिसमें एक अध्यक्ष के अतिरिक्त 4 सदस्य होने चाहिए। धारा 280 (3) के अन्तर्गत सामान्यतया वित्त आयोग निम्नांकित बातों के सन्दर्भ में राष्ट्रपति को अपनी संस्तुति देगा

(अ) संविधान के द्वारा निर्धारित केन्द्र तथा राज्यों के बीच वितरित किए जाने वाले करों एवं वितरित किए जा सकने वाले करों की निवल (Net) प्राप्ति के बंटवारे के सन्दर्भ में संस्तुति करना।

(ब) भारतीय समेकित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान के सन्दर्भ में संस्तुति करना ।

(स) एक अच्छी सुदृढ़ वित्त के हित में अन्य विषय जिस पर राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुति प्राप्त करना चाहे, संस्तुति देना।

6.4 वित्त आयोग की संरचना

वित्त आयोग की संरचना निम्नवत है

1. अध्यक्ष ऐसे व्यक्तियों में से चुना जाता है, जिसको लोक कार्यों का अनुभव हो ।
2. एक सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से चुना जाता है, जो कि उच्च न्यायालय का न्यायधीश रहा हो या उच्च न्यायालय में न्यायधीश नियुक्त किए जाने की योग्यता रखता हो।
3. वित्त और लेखा की विशेष जानकारी रखने वाला व्यक्ति हो।
4. एक सदस्य वित्तीय विषय और प्रशासन का अनुभव रखने वाला व्यक्ति हो।
5. एक सदस्य अर्थव्यवस्था और अर्थशास्त्र की जानकारी रखने वाला हो।

यदि व्यय के सम्बन्ध में और राज्यों को ऋण देने के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष और स्वतंत्र आधार पर बेहतर विशेषज्ञता पूर्वक इनका अध्ययन किया जाए तो यह अनुदान और ऋण सम्बंधी अनुमतियां (permissions) बेहतर एवं निष्पक्ष रूप से राज्यों को दी जा सकती है। राष्ट्रीय वित्त आयोग और राष्ट्रीय नियोजन आयोग, दोनों को ही प्रशासनिक और विशेषज्ञ रूप से बेहतर बनाते हुए इनके आपसी संर्पक को सुविधाजनक बनाया जाना आवश्यक है। वित्त आयोग में अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्तियों के सबंध में उपर्युक्त आर्हता और विशेषज्ञता को ध्यान में रखा जाना आवश्यक और राजनीतिक कारकों को कम किया जाना या हटाया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त राज्य की सरकारों को स्थानीय संस्थाओं को धन उपलब्ध कराना होता है। अतः राज्य हमेशा धन की कमी महसूस करते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि राज्य सरकारें अपने वित्तीय साधनों का उचित दोहन नहीं करती हैं। इसलिए राज्य सरकारें प्रायः वित्तीय संकट से ग्रस्त रहती हैं और आर्थिक सहायता के लिए केन्द्र पर निर्भर रहती हैं। अतः केन्द्र और राज्यों में आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए वित्त आयोग की स्थापना एक अनिवार्यता थी। वित्त आयोग केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के वित्तीय संसाधनों को नियमित, समन्वित एवं एकीकृत करने का महत्वपूर्ण संगठन है। निसंदेह इस दिशा में आयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वित्त आयोग को अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकारिया आयोग (Sarkaria Commission) ने सुझाव दिया है कि योजना आयोग में वित्त आयोग प्रकोष्ठ स्थापित किया जाना चाहिए तथा उसे मजबूत बनाया जाना चाहिए। आयोग के सुझाव के अनुसार यदि प्रकोष्ठ योजना आयोग के वित्तीय संसाधन प्रभारी के अधीन कार्य करता है तो योजना और वित्त आयोग के बीच अधिक समन्वय हो सकेगा। इसके अतिरिक्त वित्त आयोग को देश के विभिन्न भागों में विशेषज्ञ नियुक्त करने चाहिए। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान बनाया गया कि राष्ट्रीय वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को ध्यान में हुए यह सुझाव दे कि राज्यों की संचित विधि को कैसे सुदृढ़ किया जाए ताकि राज्य में ग्रामीण तथा स्थानीय सरकारों की वित्तीय व्यवस्था एवं स्थिति को सुदृढ़ बनाया जा सके।

74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान बनाया गया कि राष्ट्रीय वित्त आयोग राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दे कि राज्य के संचित निधि को कैसे सुदृढ़ किया जाए ताकि शहरी स्थानीय सरकारों की वित्तीय स्थिति को बेहतर बनाया जा सके।

6.5 वित्त आयोग की कुछ कार्य प्रवृतियां

वित्त आयोग की कार्य प्रवृतियां निम्न है

1. वित्त आयोग की सूचनाओं के संबंध में काफी ज्यादा स्तर तक निर्भरता संघ स्तरीय और राज्य स्तरीय प्रशासनिक तंत्र पर।
2. राष्ट्रीय वित्त आयोग के वित्त के संबंध में, राज्य के अंतराल और पिछड़ेपन को कम करने वाली कुछ बड़ी प्रवृत्ति इसमें एक महत्वपूर्ण आधार है।
3. अनुदानों के सम्बन्ध में काफी ज्यादा स्तर तक एक महत्त्वपूर्ण कार्य नियोजन आयोग और वित्त आयोग दानों के द्वारा ही नई परियोजनाओं को ध्यान में रखकर।

4. राष्ट्रपति के द्वारा निरंतरता से ही वित्त आयोग का अतिरिक्त विषय दिया जाना।
5. वित्त आयोग को दिए जा रहे अतिरिक्त विषयों के बढ़ने की एक प्रवृति।
6. सामान्यतया वित्त आयोग को राज्यों की ऋण स्थिति के विषयों को दिया जाना।

6.6 अब तक गठित वित्त आयोग

अब तक चौदह वित्त आयोगों का सरकार द्वारा गठन किया जा चुका है। जिसमें से तेरह वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौप दी है, जिन्हें लागू भी किया जा चुका है। चौदहवें वित्त आयोग का गठन अभी हाल ही में रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर वाई.वी. रेड्डी की अध्यक्षता में किया गया है। जिसे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है।

- नवम्बर 1951 में राष्ट्रपति ने श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में प्रथम वित्त आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने दिसम्बर 1952 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- जून सन् 1956 में श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में दूसरे वित्त आयोग की नियुक्ति की गई। इसकी रिपोर्ट नवम्बर 1957 में प्रस्तुत की गई।
- दिसम्बर 1960 में श्री ए. के चन्द्रा की अध्यक्षता में तीसरे वित्त आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने दिसम्बर 1961 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।
- पाँच मई, 1964 को डॉ. पी.वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में चौथे वित्त आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने अगस्त 1965 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- सन् 1968 में श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता में पाँचवे वित्त आयोग का गठन किया गया। जिसने नवम्बर 15,1968 को अन्तिम रिपोर्ट एवं 1969 में अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।

भारत में वित्त आयोग

वित्त आयोग	नियुक्ति वर्ष	समीक्षा काल	प्रतिवेदन वर्ष	अध्यक्ष का नाम
पहला	1951	1952-57	1951	श्री के. सी नियोगी
दूसरा	1956	1957-62	1957	श्री के. संस्थानम
तीसरा	1960	1962-66	1961	श्री एस. के. चन्दा
चौथा	1964	1966-69	1965	श्री पी.ही. राजमन्नार
पाचवाँ	1968	1969-74	1969	श्री महावीर त्यागी
छठा	1972	1974-79	1973	श्री ब्रहानन्द रेड्डी
सातवाँ	1977	1979-83	1978	श्री जे. एम. शेलट
आठवाँ	1982	1984-89	1984	श्री वाईही. चौह्मण
नौवाँ	1987	1990-95	1990	श्री एन.के.पी.साल्वे
दसवाँ	1992	1995-2000	1993	श्री के.सी. पन्त
ग्यारवाँ	1998	2000-05	2000	प्रो०ए०एम० खुसरो
बारहवाँ	2002	2005-10	2004	डॉ0 सी0 रंगराजन
तेरहवाँ	2008	2010-15	2009	श्री विजय केलकर
चौदहवाँ	2013	2015-20	2013	डॉ०वाई०वी० रेड्डी

- छठे वित्त आयोग का गठन 28 जून 1972 को आन्ध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मनन्द रेड्डी की अध्यक्षता में की गई। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1972 में प्रस्तुत की। इसकी सिफारिशों को पाँचवी योजना में समायोजित किया गया।
- सातवें वित्त आयोग का गठन जून 1977 में न्यायाधीश जे. एम. शेलट की अध्यक्षता में किया गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 1978 में प्रस्तुत की।
- आठवें वित्त आयोग का गठन जून 1982 में श्री यशवन्तराव चौहान की अध्यक्षता में किया गया।इसने 1983 में अन्तरिम एवं अप्रैल 1984 को अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- नवें वित्त आयोग का गठन 17 जून 1987 को श्री एन. पी. के. साल्वे की अध्यक्षता में किया गया।आयोग ने मार्च 1990 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुति की।
- दसवें वित्त आयोग का गठन 15 जून 1992 को श्री के.सी. पंत की अध्यक्षता में किया गया। आयोग ने 30 नवम्बर 1993 तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।
- ग्यारहवें वित्त आयोग का गठन 3 जुलाई 1998 को प्रो.ए.एम. खुसरो की अध्यक्षता में किया गया। जिसने 7 जुलाई 2000 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।
- बारहवाँ वित्त आयोग का गठन 28 अक्टूबर 2002 को रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर डॉ० सी रंगराजन की अध्यक्षता में किया गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 2004 में प्रस्तुत की।
- तेरहवाँ वित्त आयोग का गठन वर्ष 2008 को श्री विजय केलकर की अध्यक्षता में किया गया।आयोग ने अपनी रिपोर्ट 2009 में प्रस्तुत की।
- चौदहवां वित्त आयोग का गठन जनवरी 2013 को रिजर्व बैंक के पूर्व गर्वनर डॉ.वाई.वी. रेड्डी की अध्यक्षता में किया गया।

6.7 वित्त आयोग की भूमिका

वित्त आयोग के केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच आर्थिक सम्बन्धों को समझने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। **प्रथम,** इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि संविधान द्वारा वित्तीय साधनों का बटवारा केन्द्र के पक्ष में है। केन्द्र के पास आय प्राप्त करने के अनेक स्त्रोत हैं। **द्वितीय,** केन्द्र द्वारा नोट छापकर धन प्राप्त किया जा सकता है। **तृतीय,** केन्द्र देश और विदेश से बिना प्रतिबन्ध के ऋणों के रूप में धन प्राप्त करने में सक्षम है। इसके विपरीत, राज्यों की आय स्त्रोत सीमित हैं। आय का प्रमुख साधन विक्रय-कर है। संविधान द्वारा अनेक विकासशील कार्य, जैसे -शिक्षा, सिंचाई, कृषि, स्वास्थ, परिवार नियोजन ।

6.8 वित्त आयोग की कार्य-प्रणाली

संवैधानिक सत्ता होने के कारण इसकी स्पष्ट कार्य-प्रणाली है। अभी तक विभिन्न वित्त आयोगों द्वारा जो कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है, उससे विदित होता है कि वित्त आयोग का स्तर दीवानी न्यायालय है जो अपनी कार्य-प्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करता है। यह आयोग भारत सरकार और राज्य सरकारों के वित्तीय संसाधनों को नियमित, समन्वित तथा एकीकृत करने वाला महत्वपूर्ण संगठन है। आयोग मन्त्रियों पर निर्भर करता है। आयोग ने अपने प्रतिवेद नागरिकों तथा विशिष्ट संगठनों के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर भी प्रस्तुत किये हैं। अपने प्रतिवेदन तैयार करने से पूर्व समस्त स्तरों पर पर्याप्त विचार-विमर्श किये जाने की प्रक्रिया का सहारा लिया जाता रहा है। वित्त आयोग संविधानिक दृष्टि से एक परामर्शदात्री संस्था है जिसकी सिफारिशों को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। परन्तु, अब तक का इतिहास बताता है कि वित्त आयोग की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार करने की परम्परा का निर्वाह हुआ है।

6.9 वित्त आयोग की सिफारिशों का क्रियान्वयन

संघीय वित्त से सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण हेतु वित्त आयोग को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वित्त आयोग केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों के मध्य वित्तीय साझेदारी की जाँच-परख करता है। कार्योपरांत यह अपनी संस्तुति को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करता है। और राष्ट्रपति अपनी टीका-टिप्पणी के बाद इन प्रस्तावों को मूल रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है। जो इसकी सिफारिशों को स्वीकार करने के सन्दर्भ में पूर्ण स्वतंत्र है। वित्त आयोग करों के विभाजन के अतिरिक्त उन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में सिफारिश करता है, जिनके आधार पर राज्यों को सहायता अनुदान या विशेष अनुदान प्रदान किया जाता है। परन्तु संसद अलग से भी राज्यों को विशेष अनुदान के लिए कानून बना सकती है और यदि संसद कानून न बनाये तो उस काल में राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुति के आधार पर विभिन्न राज्यों को निशचित मात्रा में अनुदान देने का आदेश दे सकता है। वित्त आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन का अध्ययन विभाजनशील कर एवं सहायक अनुदान के अन्तर्गत करते है। विभाजनशील करों में आय कर, केन्द्रीय उत्पाद कर और सम्पदा शुल्क के वितरण का अध्ययन कर रहे है।

6.9.1 आयकर के सन्दर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशें

आयकर केन्द्र सरकार द्वारा लगाया एवं एकत्र किया जाने वाला कर है इससे प्राप्त राशि का वितरण केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य होता है। आयकर का विभाजन विभिन्न वित्त आयोग द्वारा एकत्र राशि तथा जनसंख्या के आधार पर किया जाता रहा है। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है कि आयकर में राज्यों की हिस्सेदारी में लगातार वृद्धि हुई है। प्रथम वित्त आयोग द्वारा आयकर में राज्यों का भाग जहाँ 55 प्रतिशत था वह द्वितीय द्वारा बढ़ाकर 60 प्रतिशत, तृतीय ने 66 प्रतिशत चतुर्थ ने 75 प्रतिशत पाँचवाँ ने 75 प्रतिशत, छठे ने पुन बढ़ाकर 80 प्रतिशत, सातवें से नवे तक 85 प्रतिशत, एवं दसवें ने घटाकर 77.5 प्रतिशत और ग्यारहवें तथा बारहवें ने इसमें कमी के साथ वितरण में अन्य 4 कारको को शामिल किया।

आयकर के विभाजन के सन्दर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशें

वित्त आयोग	आयकर में राज्यों का भाग	राज्यों में आयकर का वितरण	
		जनसंख्या के आधार पर	एकत्र की गई आयकर के आधार पर आधार एवं अन्य कारक
प्रथम	55	80	20
द्वितीय	60	90	10
तृतीय	66	80	20
चतुर्थ	75	80	20
पाँचवा	75	90	10
छठे	80	90	10
सातवें से नवे	85	90	10
दसवें	77.5	90	10

6.9.2 केन्द्रीय उत्पाद कर और सम्पदा शुल्क के सन्दर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशें

प्रथम वित्त आयोग ने तीन वस्तुओं (तम्बाकू, तम्बाकू से निर्मित वस्तु (सिगरेट, सिगार) तथा वनस्पति पदार्थ) से अर्जित शुद्व आय का 40 प्रतिशत राज्यों में बाटा जाए। जिसमें 40 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर एवं 60 प्रतिशत अन्य कारक (जैसे-पिछड़ापन) के आधार पर वितरित किया जाए। उपभोग को वितरण का आधार नहीं माना क्योंकि उसके ठीक ऑकड़े उपलब्ध नहीं थे।

द्वितीय वित्त आयोग ने तीन के अलावा अब 8 वस्तुओं के उत्पाद शुल्क की 25 प्रतिशत आय को राज्यों में बाँटा। राज्यों को वितरण का निर्धारण 90 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर तथा 109 प्रतिशत समायोजन के लिए प्रयोग किया जाए।

तीसरे वित्त आयोग ने 35 वस्तुओं के आय वितरण का प्रावधान किया, परन्तु शुद्ध आय के वितरण का भाग घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया। विभाजन में जनसंख्या का आधार 40 प्रतिशत रहा साथ ही अन्य विभाजन के कारकों में वृद्धि की गई।

वित्त आयोग द्वारा कुल संसाधन हस्तान्तरण कर के रूप में पहले वित्त आयोग से लेकर 12 वें तक का हिस्सा औसतन 84 प्रतिशत आता है। छठें वित्त आयोग ने 73.9 प्रतिशत की संस्तुति की तो सातवें ने 92.3 प्रतिशत की की बात की। ग्यारहवें ने 86.5 प्रतिशत, बारहवें ने 81.1 प्रतिशत की संस्तुति की थी। पहली बार 11 वें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को होने वाले सम्पूर्ण राजस्व हस्तान्तरण की 37.5 प्रतिशत की उच्चतम सीमा रखी जिसे 12 वें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 38 प्रतिशत कर दिया था।

6.10 वित्त आयोग के संगठन और कार्यात्मकता में विभिन्न तरह की कमियां

वित्त आयोग के संगठन और कार्यात्मकता में विभिन्न तरह की कमियां निम्नवत है

1. वित्त आयोग एक अस्थाई संस्था और यद्यपि इसको समय-समय पर लाया जाना लेकिन फिर भी वित्तीय विषयों के अध्ययन में इसकी निरंतरता में कमियां
2. ऐसी कई स्थितियाँ हैं जहाँ राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को समय पर लागू नहीं किया जाता है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय वित्त आयोग द्वारा इन सिफारिशों पर ठीक से ध्यान नहीं दिया जाता है।
3. कुछ कारणों की वजह से सरकार के द्वारा स्वविवेकाधिकार वाली अनुदानों का ज्यादा स्तर तक उपयोग किए जाने की वजह से वित्त आयोग की सिफारिश पर दी जा रही अनुदानों पर एक प्रतिकूल असर पड़ना।
4. वित्त आयोग के द्वारा ऐसा काई उपयुक्त अध्ययन या विश्लेषण प्रभावी स्तर तक सामने न आ पाना कि नई आधुनिकीकृत (modernization) अर्थव्यवस्था में कर व्यवस्था में सुधार, करके नए स्रोत और उनका बंटवारा कैसे प्रभावी रूप से किया जाए।
5. सामान्यतः वित्त आयोगों के द्वारा वित्तीय विषयों में राज्यों के वित्तीय अनुशासन का प्रभावी रूप से ध्यान में न रखा जा पाना यद्यपि इस संबंध में 11 वें वित्त आयोग के द्वारा कुछ कदम उठाया जाना जैसे कि निधि के संबंध में सुझाव ।
6. कई ऐसी स्थितियां जहां वित्त आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति के संबंध में वित्तीय विषयों की विशेषज्ञता के मामलों को ध्यान में नहीं रखा जाता है।
7. नियोजन आयोग की ज्यादा स्तर तक वित्तीय विषयों में हस्तक्षेप की वजह से वित्त आयोग पर प्रभाव।
8. वित्त आयोग में ज्यादातर स्तर पर कार्य करने की संस्कृति, सामान्य नौकरशाही की संस्कृति। वित्तीय विषयों की आधुनिक विशेषज्ञता वाली संस्कृति को इसमें शामिल ना कर पाना।
9. वित्त आयोग में नियुक्तियों के संबंध में विभिन्न तरह के राजनीतिक कारक ।
10. **एक** क्षेत्रीय स्थिति को प्रभावी ढंग से ध्यान में रखने के लिए वित्त आयोग के अध्ययनों की विफलता और **दूसरा**, वित्त और योजना को प्रभावी ढंग से जोड़ने में भी कमियां हैं।

6.11 वित्त आयोग को बेहतर प्रभावी बनाने के संबंध में सुझाव

वित्त आयोग को बेहतर प्रभावी बनाने के संबंध में निम्न सुझाव है

- वित्त आयोग को नियुक्त करने के संबंध में तथा अतिरिक्त विषय देने के संबंध में राज्यों से विचार-विमर्श बेहतर प्रभावी रूप से किया जाए। राज्य वित्त आयोग की नियुक्तियाँ इस तरह से की जाएं ताकि उनके प्रतिवेदनों को राष्ट्रीय वित्त आयोग बेहतर रूप से ध्यान में रख सकें। साथ-साथ राज्य वित्त आयोग और राष्ट्रीय वित्त आयोग में प्रभावी संपर्क की आवश्यकता।
- संघ सरकार के द्वारा स्वविवेकाधिकार अनुदानों को विशेष स्थितियों तक कम करते हुए वित्त आयोग की सिफारिश पर अनुदानों को वरीयता दिया जाना।

6.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

6.13 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि भारतीय संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था है। धारा 280 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद या यदि आवश्यक हो तो इसके पहले, राष्ट्रपति वित्त आयोग का गठन करेंगे। जिसमें एक अध्यक्ष के अतिरिक्त 4 सदस्य होने चाहिए। केन्द्र और राज्यों में आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए वित्त आयोग की स्थापना एक आनिवार्यता थी। वित्त आयोग केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के वित्तीय संसाधनों को नियमित, समन्वित एवं एकीकृत करने का महत्वपूर्ण संगठन है। निसंदेह इस दिशा में आयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान बनाया गया कि राष्ट्रीय वित्त आयोग राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दे कि राज्य की संचित निधि को कैसे सुदृढ़ किया जाए ताकि ग्रामीण स्थानीय निकाय एवं शहरी स्थानीय सरकारों की वित्तीय स्थिति को बेहतर बनाया जाए। अभी तक विभिन्न वित्त आयोगों द्वारा जो कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है, उससे विदित होता है कि वित्त आयोग का स्तर दीवानी न्यायलय है जो अपनी कार्य-प्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करता है। वित्त आयोग संवैधानिक दृष्टि से एक परामर्शदात्री संस्था है जिसकी सिफारिशों को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। परन्तु, अब तक का इतिहास बताता है कि वित्त आयोग की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार करने की परम्परा का निर्वाह हुआ है। वित्त आयोग, करों के विभाजन के अतिरिक्त उन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में सिफारिश करता है, जिनके आधार पर राज्यों को सहायता अनुदान या विशेष अनुदान प्रदान किया जाता है। परन्तु संसद अलग से भी राज्यों को विशेष अनुदान के लिए कानून बना सकती है और यदि संसद कानून न बनाये तो उस काल में राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुति के आधार पर विभिन्न राज्यों को निश्चित मात्रा में अनुदान देने का आदेश दे सकता है। प्रथम वित्त आयोग द्वारा आयकर में राज्यों का भाग जहाँ 55 प्रतिशत था वह द्धितीय द्वारा बढ़ाकर 60 प्रतिशत, तृतीय ने 66 प्रतिशत चतुर्थ ने 75 प्रतिशत पाँचवाँ ने 75 प्रतिशत, छठे ने पुन बढ़ाकर 80 प्रतिशत, सातवें से नवे तक 85 प्रतिशत, एवं दसवें ने घटाकर 77.5 प्रतिशात और ग्यारवे तथा बारहवें ने इसमें कमी के साथ वितरण में अन्य 4 कारको को भी शामिल किया। वित्त आयोग द्वारा कुल संसाधन हस्तान्तरण कर के रूप में पहले वित्त आयोग से लेकर 12 वें तक हिस्सा औसतन 84 प्रतिशत आता है। छठे वित्त आयोग ने 73.9 प्रतिशत की संस्तुति की तो सातवें ने 92.3 प्रतिशत की संस्तुति की। ग्यारहवें ने 86.5 प्रतिशत, बारहवें ने 81.1 प्रतिशत की संस्तुति की। पहली बार 11 वें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को होने वाले सम्पूर्ण राजस्व हस्तान्तरण की 37.5 प्रतिशत की उच्चतम सीमा रखी जिसे 12 वें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 38 प्रतिशत कर दिया था।

6.14 शब्दावली (Glossary)

- **करारोपण** - अनिवार्य रूप से वसूले जाने वाले अंश दान के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया या प्रणाली।
- **कर प्रणाली** - विभिन्न प्रकार के करों को लगाने के लिए अपनाई जाने वाली तकनीकी ।
- **सेवा लागत** - प्रदान की गई सेवा के कारण होने वाली लागत।
- **कराघात** - कर को प्रारम्भिक रूप से वहन करने वाला।

- **कर आपतन -** अन्तिम रूप से कर का पड़ने वाला भार।

6.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- पंत, जे.सी. (2007), *राजस्व (Public Finance)*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- भाटिया एच. एल. (2006), *लोकवित्त (Public Finance)*, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., जंगपुरा, नई दिल्ली।
- मिश्रा एवं पुरी (2011), *भारतीय अर्थव्यवस्था*, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- वार्ष्णेय, जे.सी. (1997), *राजस्व*, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

6.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- सिंघई, जी. सी., मिश्रा, जे. पी., *अर्थशास्त्र* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स (2012), आगरा।
- त्यागी, बी. पी., *लोकवित्त* जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी (2004), मेरठ।
- डॉ. जे.पी. मिश्र : *लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त* विजडम बुक्स, वाराणसी।
- Basu Kaushik. The Oxford companion to Economics in India, Oxford University press (2007), New Delhi.

6.18 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अब तक के वित्त आयोग के कार्यकरण और संरचना की व्याख्या कीजिए?
2. वित्त आयोग के सामने पैदा होने वाली कठिनाइयों की विवेचना कीजिए?
3. वित्त आयोग में कौन सी समस्याएं उत्पन्न होती है? समझाइये ।इनके निवारण हेतु कौन से उपाय किए जाते है?

इकाई - 7 13वें वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें

(Major Recommendation of 13th Finance Commission)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना

7.4 तेरहवें वित्त आयोग के गठन के उद्देश्य

7.5 तेरहवें वित्त आयोग के कार्य

7.6 तेरहवें वित्त आयोग विचारार्थ विषय

7.8 तेरहवें वित्त आयोग सिफारिशें

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.15 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप अभी तक की इकाइयों के अध्ययन से लोकवित्त के सैद्धान्तिक पहलू को भलीभाँति समझ गये होंगे। इस इकाई में हम तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना, उद्देश्य एवं कार्यों का अवलोकन करने के साथ ही तेरहवें वित्त आयोग विचारार्थ विषय को विस्तृत रूप से जानेंगे। इसके पश्चात तेरहवें वित्त वित्त आयोग की सिफारिशों को भी समझेंगे।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ इस इकाई में हम तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना, उद्देश्य एवं कार्यों का अवलोकन करेंगे।
- ✓ तेरहवें वित्त आयोग विचारार्थ विषय को विस्तृत रूप से जानेंगे।
- ✓ इसके पश्चात तेरहवें वित्त आयोग सिफारिशों को भी समझेंगे।

7.3 तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना

तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत 13 नवम्बर, 2007 को 2010-15 की अवधि हेतु सिफारिशें प्रदान करने के लिये गयी थी। **डॉ. विजय केलकर** को आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था।

7.4 तेरहवें वित्त आयोग के गठन के उद्देश्य

आयोग के गठन का उद्देश्य निम्नलिखित है

1. करों का निवल प्राप्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच वितरण, जिन्हें संविधान के अध्याय-I भाग XII के अन्तर्गत वितरण किया जायेगा अथवा वितरित किया जा सकता है, और ऐसी प्राप्तियों के सम्बन्ध में हिस्सों का राज्यों के बीच आवन्टन,
2. भारत के समेकित निधि से राज्यों के राजस्व के सहायता अनुदान सम्बन्धित करने वाला सिद्धान्त और राज्यों को भुगतान किये जाने वाली राशि, जिन्हें संविधान के अनुच्छेद, 275 के अन्तर्गत उनके राजस्वों के सहायता अनुदान के जरिये सम्बद्ध अनुच्छेद के खण्ड (1) उपबन्धों में विनिदिष्ट प्रयोजनों से सहायता की आवश्यकता है।
3. वित्त आयोग द्वारा किये गये सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों तथा नगर पालिकाओं से संसाधनों के बढ़ोत्तरी के लिये राज्य के समेकित तिथि को बढ़ाने हेतु वाँछित उपाय सुझाना।

7.5 तेरहवें वित्त आयोग के कार्य

वित्त आयोग के समग्र कार्य संविधान के अनुच्छेद 270, 275 और 280 में निर्धारित उपबन्धों का निष्पादन करना है। यह उपबन्धों चालू संभावित भावी वृहत आर्थिक और राजकोषीय परिदृश्यों को ध्यान में रखते हुए, संघीय वित्त के सिद्धान्तों के अनुरूप ही होना चाहिए। जिसमें केन्द्र-राज्यों और स्थानीय निकायों की राजकोषीय स्थिरता और पर्याप्त साधन उपयोगिता हासिल हो सकें। आयोग के मुख्य कार्यों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

आयोग का **प्रथम** एवं मुख्य कार्य संघ और राज्य के बीच भारत के संविधान के अध्याय- I भाग XII के तहत उनमें विभाजित करने वाले करों के निबल आय (जिसे सामान्यतः विभाज्य फुल कहा जाता है) के वितरण की सिफारिश करना है।

दूसरा कार्य ऐसी आय को राज्यों के बीच आवण्टन की सिफारिश करने का भी है। संविधान के अनुच्छेद 275 के तहत आयोग उन राज्यों को जिन्हें सहायता की आवश्यकता है, को सामान्य प्रयोजन के अनुदान कर अन्य विशिष्ट प्रयोजन के अनुदान प्रदान कर सकता है।

संविधान राज्य वित्त आयोग की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए आयोग को कहा गया है कि विभिन्न राज्यों में पंचायतों नगर पालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति के लिये अलग-अलग राज्यों की समेकित निधियों का समर्थन कर उपामों (tax measures) की सिफारिश करें।

7.6 तेरहवें वित्त आयोग के कार्य

विचारार्थ विषय 13 वें वित्त आयोग को यह कहा गया कि अपनी संस्तुति देते समय आयोग निम्नांकित बातों को ध्यान में रखेगा

1. कर तथा गैर-कर राजस्व का स्तर जो 2008-09 के अन्त में प्राप्त होगा, उसके आधार पर 1 अप्रैल 2010 से प्रारम्भ होने वाली आगामी पाँच वर्ष के लिये केन्द्र सरकार के संसाधनों का अनुमान लगाना।
2. राज्य तथा केन्द्र को ही दी जाने वाली बजटीय (budgetary) सहायता, प्रशासन, रक्षा, आन्तरिक तथा सीमा सुरक्षा, ऋण सेवा तथा निश्चित रूप से किये जाने वाले व्यय तथा दायित्व को ध्यान में रखते हुए, केन्द्र सरकार की संसाधन सम्बन्धी माँग।
3. संघ तथा राज्य सरकारों की प्राप्तियों तथा व्यय को संतुलित करने के उद्देश्य ही नहीं बल्कि पूँजी निवेश के लिये आधिक्य का सृजन करना।
4. कर सकल घरेलु उत्पाद अनुपात तथा कर-राज्य सकल घरेलु उत्पाद अनुपात को बाटने का उपाय।
5. 1 अप्रैल 2010 से लागू होने वाले प्रस्तावित GST के प्रभाव का अध्ययन जिसमें देश के विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन सम्मिलित है।
6. पोषणीय विकास के सन्दर्भ में पारिस्थितीय, पर्यावरण तथा जलवायु के प्रबन्ध की आवश्यकता।
7. उत्तम परिणाम की दृष्टि से सार्वजनिक व्यय की गुणवत्ता को उन्नत करने की आवश्यकता ।

अपनी संस्तुतियाँ देते समय जहाँ जरूरत होगी, वहाँ आयोग 1971 जनगणना के ही अंकों को आधार के रूप में लेगा। राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि (National Calamity Contigency Fund (NCCF)) तथा आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 के तहत निधि की वर्तमान वित्तीय व्यवस्था की चाहे तो समीक्षा करके आयोग को उसका आधार स्पष्ट करेगा जिसके आधार पर उसमें संघ और राज्यों की प्राप्तियों तथा व्यय के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकेगा।

7.7 तेरहवें वित्त वित्त आयोग सिफारिशें

13 वें वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशें निम्नांकित है

(1) FRBM के अनुसार 2009-10 केन्द्र राज्य संयुक्त ऋण जी.डी.पी. अनुपात को 82.0 प्रतिशत तक लाना था, जबकि 12 वें वित्त आयोग ने यह लक्ष्य 75.0 प्रतिशत रखा था। 13 वें वित्त आयोग ने इस अनुपात को 2014-15 तक 68.0 प्रतिशत, तथा केन्द्र के सम्बन्ध में इस अनुपात को 45.0 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

(2) राजस्व धारा- जी.डी.पी. अनुपात को 2009-10 में प्रक्षेपित 4.8 प्रतिशत से 2014-15 राजस्व धारा को 0.5 प्रतिशत के राजस्व आधिक्य में परिवर्तित करना है। यद्यपि उसने यह संस्तुति की इसे क्रमिक रूप से घटाकर 280 प्रतिशत तक लाना चाहिए।

(3) 13 वें वित्त आयोग ने 12 वें वित्त आयोग की सीमा को बढ़ाकर 32.0 प्रतिशत कर दिया, पर 13 वे आयोग ने बिक्री कर के बदले लगायी गयी अतिरिक्त उधार शुल्क के सम्बन्ध में निवल केन्द्र राजस्व में राज्यों का कोई हिस्सा देने की बात नहीं की हैं। और न ही कपड़ा उद्योग (textiles), तम्बाकू, चीनी पर बिक्री या वैट लगाने की स्थिति में कर हस्तांतरण में राज्यों के हिस्सों को घटाने की बात की है जैसा कि 12 वें वित्त आयोग ने की थी। पर केंन्द्र द्वारा लगाये गये उपकर तथा अधिकर को विभागीय संभरण (departmental supply) में सम्मिलित किये जाने की राज्यों की माँग आयोग ने स्वीकार नहीं की है।

(4) उल्लेखनीय है कि पहली बार 11 वें वित्त आयोग ने केंन्द्र से राज्यों को होने वाले सम्पूर्ण राजस्व हस्तातंरण की 37.5 प्रतिशत की उच्चतम सीमा निर्धारित की थी, जिसे 12 वें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 38.0 प्रतिशत कर दिया था। 13 वें वित्त आयोग ने इस सीमा को बढ़ाकर 39.5 प्रतिशत कर दिया। अर्थात केन्द्र का सफल राजस्व हस्तांतरण होगा। ऐसे राज्यों को जिनके कुल क्षेत्र का हिस्सा 21 प्रतिशत से कम है। उनको न्यूनतम 21 प्रतिशत हिस्सा देने की संस्तुति की है। यह राज्य गोवा, हरियाणा, हिमांचलप्रदेश, केरल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, पंजाब, सिक्किम, त्रिपुरा एवं उत्तराखण्ड। 12वें वित्त आयोग द्वारा प्रमुख प्रति व्यक्ति आय दूरी मानदंड, जो प्रति व्यक्ति जी.एस.डी.पी. पर आधारित है।13 वें वित्त आयोग ने '***कर देय क्षमता अन्तर' या 'राजकोषीय क्षमता अन्तर'*** को कसौटी के रूप में लिया है। वित्त आयोग ने 2004-2005 से 2006-07 के बीच तीन वर्षों की प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. के आधार पर प्रत्येक राज्य के लिए प्रति व्यक्ति GSDP ज्ञात किया है। इसके बाद कर GSDP अनुपात ज्ञात किया है। इस अनुपात को सभी राज्यों 'सामान्य वर्गीय' तथा विशिष्ट वर्गीय राज्यों के लिए अलग-अलग व्यक्त किया है।

(5) वित्त आयोग ने यह स्वीकार किया है कि समता तथा कुशलता के निर्देशक सिद्धान्त है, जिनका अनुपालन सभी वित्त आयोग ने क्षैतिजीय हस्तान्तरण के संबंध में किया है, और 13 वें ने भी ऐसा ही किया है। क्षैतिज हस्तान्तरण के सम्बन्ध में अलग-अलग वित्त आयोगों ने अनेक कसौटियाँ चुनी है, तथा अलग-अलग आयोगों ने इन कसौटियों को अलग-अलग भार प्रदान किया है। 1971 में नियुक्त आयोग ने राज्यों की जनसंख्या को अपनी गणना का आधार बनाया हैं। जैसा कि उनकी नियुक्त की शर्त

दिशानिर्देश में लिखित है उसी प्रकार सभी आयोगों ने जनसंख्या को एक कसौटी के रूप में चुना है। 13 वें वित्त आयोग ने निम्नांकित कसौटी चुनी है

तालिका-7.1		
क्र0 सं0	कसौटी	भार (%)
1	राज्य जनसंख्या 1971	25
2	राज्य क्षेत्रफल	10
3	राजकोषीय क्षमता दूरी	47.5
4	राजकोषीय अनुशासन	17.5

उल्लेखनीय है कि हस्तान्तरण फार्मूला में एवं कसौटी के रूप में *'राज्य क्षेत्रफल'* को सबसे पहले 10 वें वित्त आयोग ने लागू किया, जिसके पीछे यह तर्क था कि राज्य का क्षेत्रफल जितना ही अधिक होगा नागरिक को एक निश्चित मानक सेवा उपलब्ध कराने की प्रशासनिक लागत उतनी ही अधिक होगी। इस प्रकार से संकलित प्रतिव्यक्ति गुणा करके इसी कसौटी के आधार पर कुल हस्तातंरण में प्रत्येक राज्य का हिस्सा ज्ञात कर सकते है। जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं। आयोग ने राजकोषीय क्षमता दूरी कसौटी को 47.5 प्रतिशत का भार प्रदान किया है।

राजकोषीय अनुशासन को कसौटी के रूप में सबसे पहले 11 वें वित्त आयोग में चुना गया तथा 11 वें एवं 12 वें दोनों वित्त आयोग में राजकोषीय अनुशासन कसौटी को 7.5 प्रतिशत का भार दिया, जबकि 13 वें वित्त आयोग में केवल राजकोषीय अनुशासन कसौटी को ही लिया गया है और कर प्रयास को छोड़ दिया है (इसके लिये 17.5 प्रतिशत का भार)।

(6) 13 वें वित्त आयोग ने चार अनुदानों का उल्लेख किया है:

(A) शिक्षा के संबंध में सामान्यीकरण के स्थान पर सार्वभौमीकरण (6-14 वर्ष) हेतु अनुदान।

(B) स्वभाव सामान्यीकरण ग्राम।

(C) सार्वजनिक व्ययों की गुणवत्ता सुधारने के लिये अनुदान ।

(D) पोषीय विकास को दृष्टिगत रखते हुए पारिस्थितिक पर्यावरण तथा जलवायु प्रबन्ध के सम्बन्ध में

(7) केन्द्र सरकार के विभिन्न करों की निवल प्राप्तियों में से 32 प्रतिशत प्राप्तियाँ राज्यों को जाएंगी, इनमें से प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण तालिका-7.1 में प्रदत्त भार के अनुसार किया जायेगा। इस आधार पर सेवा कर को छोड़कर अन्य करों की प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा तालिका-7.2 में दर्शाया गया है।

तलिका 2: केन्द्र की निवल कर प्राप्तियों में राज्यों का पारस्परिक हिस्सा

(प्रतिशत में)

क्रम	राज्य	सेवा कर को छोड़कर अन्य करों में राज्यों का सापेक्षित हिस्सा	जम्मू कश्मीर राज्य को को छोड़कर अन्य 27 राज्यों का सेवा कर में सापेक्षित हिस्सा
1.	आंध्र प्रदेश	6.937	7.047
2.	अरूणाचल प्रदेश	0.328	0.332
3.	असम	3. 628	3.685
4.	बिहार	10.917	11.089
5.	छत्तीसगढ़	2.470	2.509
6.	गोवा	0.266	0.270
7.	गुजरात	3.041	3.089
8.	हरियाणा	1.048	1.064
9.	हिमांचल प्रदेश	0.781	0.793
10.	जम्मू और कश्मीर	1.551	शून्य
11.	झारखण्ड	2.802	2.846
12.	कर्नाटक	4.328	4.397
13.	केरल	2.341	2.378
14.	मध्य प्रदेश	7.120	7.232
15.	महाराष्ट्र	5.199	5.281
16.	मणिपुर	0.451	0.458
17.	मेघालय	0.408	0.415
18.	मिजोरम	0.269	0.273
19.	नागालैण्ड	0.314	0.318
20.	ओडिशा	4.799	4.855
21.	पंजाब	1.389	1.411
22.	राजस्थान	5.853	5.945
23.	सिक्किम	0.239	0.243
24.	तमिलनाडू	4.969	5.047
25.	त्रिपुरा	0.511	0.519
26.	उत्तर प्रदेश	19.677	19.987
27.	उत्तराखण्ड	1.120	1.138
28.	प. बंगाल	7.264	7.379
सभी राज्य		100.000	100.000

ऐसे राज्य जिनका देश के कुल क्षेत्रफल में हिस्सा 2 प्रतिशत या उससे कम है उन्हें 2 प्रतिशत का न्यूनतम अंश समानुदेशित किया गया है ये राज्य हैं- गोवा, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, पंजाब, सिक्किम, त्रिपुरा तथा उत्तराखण्ड अन्य राज्यों के हिस्सों पर कोई ऊपरी सीमा नहीं है इस प्रकार तेरहवें वित्त आयोग ने राज्यों के व्यक्तिगत हिस्से के निर्धारण हेतु मानदण्डों में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए है। प्रथम राजकोषीय क्षमता अन्तर के लिए भार को 50 प्रतिशत से घटाकर

47.5 प्रतिशत कर दिया है, बारहवें वित्त आयोग द्वारा राजकोषीय क्षमता अन्तर के मापन हेतु प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के आधार बनाया गया था।

तालिका 7.3 : राज्यों को आयोजना भिन्न राजस्व अनुदान

राज्य	अंतरण पश्च आयोजना भिन्न राजस्व अनुदान (रू. करोड़)
1. अरूणाचल प्रदेश	2516.2
2. हिमाचल प्रदेश	7888.8
3. जम्मू और कश्मीर	15936.3
4. मणिपुर	6056.6
5. मेघालय	2810.9
6. मिजोरम	3991.4
7. नागालैण्ड	8146.1
8. त्रिपुरा	4453.3
योग	**51800.00**
निष्पादन प्रोत्साहन पाने वाले राज्य	
1. असम	300.00
2. सिक्किम	200.00
3. उत्तराखण्ड	1000.00
योग	**1500.00**

इस प्रकार प्रतिपत्रित किए जाने पर प्रक्रिया विधि में राज्यों के बीच राजकोषीय क्षमता अन्तर का निर्धारण करने के आंतरिक रूप से सकल घरेलू उत्पाद के प्रति एक सकल औसत कर का अनुपात प्रयोज्य किया जाता है। तेरहवें वित्त आयोग ने इसके बजाय कर क्षमता को मापने के लिए पृथक औसतों की अनुशंसा की है। एक सामान्य श्रेणी के राज्यों के लिए तथा दूसरी विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए ऐसा किए जाने का औचित्य यह है कि दोनों श्रेणियों के बीच, सकल राज्य घरेलू उत्पाद के प्रति अनुपयुक्त सकल औसत अंतर्हित रूप से (inherently) दोनों समूहों के बीच राजकोषीय अन्तर का सही प्रकार अभिग्रहण नहीं करता ऐसा दो कारणों से होता है

1. सकल राज्य घरेलू उत्पाद का क्षेत्रक संघटन (sectoral composition) सभी राज्यों में एक जैसा नहीं है तथा प्रत्येक क्षेत्रक अपनी कर योग्यता में एक रूप नहीं है।
2. सकल राज्य घरेलू उत्पादन अनुमान वर्तमान में उपादान लागत पर उपलब्ध है तथा उसमें प्रेषण रूप में उपार्जित होने वाली आय शामिल नहीं है सकल राज्य घरेलू उत्पाद के प्रति कर का अनुप्रस्थ राज्य औसत अनुपात विशेष श्रेणी के राज्यों की तुलना में सामान्य श्रेणी के राज्यों में उच्चतर है। इसीलिए दोनों श्रेणीयों पर समूह विशिष्ट औसत अनुप्रयुक्त किए जाते है।
3. वर्तमान में जम्मू-कश्मीर राज्य में सेवा कर का उद्ग्रहण (levy) नहीं किया जाता इसलिए, सेवा कर की निबल प्राप्तियाँ इस राज्य को समानुदेशनीय नहीं हैं सेवा कर प्राप्तियों में शेष 27 राज्यों के हिस्से तालिका 7.2 के अनुसार निर्धारित किए गए हैं।

(8) राजस्व खाते पर राज्यों को समय अंतरणों पर निर्दिष्टात्मक सीमा केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों के 39.5 प्रतिशत पर नियत की जाए।

(9) मध्यावधिक राजकोषीय योजना एक आशय विवरण के बजाय प्रतिबद्धता का विवरण होना चाहिए।

(10) कर व्यय, सरकारी, निजी भागीदारी, देयताओं तथा प्राप्तियों एवं व्यय अनुमानों के अंतर्हित (basic) परिवर्तनों के ब्योरों सहित बजट/एम.एफ.टी.पी. के लिए नए प्रकटन विनिर्दिष्ट किए जाए।

(11) वित्तीय विनियम एवं बजट प्रबन्ध अधिनियम में उन प्रघातों के स्वरूप को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है जिनके लिए उसके तहत लक्ष्यों में ढील दिया जाना आवश्यक होगा।

(12) ऐसी आशा की जाती है कि राज्य वर्ष 2011-12 तक अपने राजकोषीय सुधार मार्ग पर वापस आने में समर्थ हो जाएंगे इसलिए वे अपने-अपने एफ.आर.बी.एम. अधिनियमों में यथानुसार संशोधन करें।

(13) राज्य सरकारें सामान्य निष्पादन अनुदान के लिए तथा विशेष क्षेत्र निष्पादन अनुदान के उसी दशा में पात्र होंगी जब वे स्थानीय अनुदानों के अर्थ में निहित निर्धारित शर्तों का पालन करती हैं। राज्य सरकारों को अनुदान का विवरण तालिका 7.4 में दिया है।

तालिका 7.4: तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से पंचाट अवधि (2010-15) में राज्यों को सहायता अनुदान

(रू. करोड़ में)

क्रम.	**मद**	**अनुशंसित धनराशि**
1.	स्थानीय निकाय	87519
2.	आपदा राहत (जिसमें क्षमता निर्माण भी शामिल है।	26373
3.	पश्च–अन्तरण आयोजना भिन्न राजस्व घाटा	51800
4.	निष्पादन प्रोत्साहन	1500
5.	प्राथमिकता शिक्षा	24068
6.	पर्यावरण	15000
	(a) वनों का संरक्षण 5000	
	(b) नवीनीकरण ऊर्जा 5000	
	(c) जल क्षेत्र प्रबन्धन 5000	
7.	परिणामों में सुधार	14446
	(a) शिशु मृत्यु दर में कमी लाना 5000	
	(b) न्याय प्रदान करने में कमी लाना 5000	
	(c) विशिष्ट पहचान संख्या (UID) जारी करने हेतु प्रोत्साहन 2986	
	(d) जिला नवाचार निधि 616	
	(e) राज्य तथा जिला स्तर पर सांख्यिकीय प्रणालियों में सुधार 616	
	(f) कर्मचारी तथा पेंशन आँकड़ा आधार 225	
8.	सड़कों और पुलों का रखरखाव	19930
9.	राज्य विशिष्ट	27945
10.	वस्तु एवं सेवा कर मॉडल का कार्यान्वयन	50000
	कुल	318581

(14) आठ राज्यों के लिए 2010 से 2015 की अवधि में रू. 51,800 करोड़ का कुल गैर योजना (unplanned) भिन्न राजस्व अनुदान अनुशासित किया गया है (तालिका-3) विशेष श्रेणी के तीन राज्यों, जो गैर योजना राजस्व घाटे की स्थिति से उबरे हैं, के लिए रू. 1,500 करोड़ का निष्पादन अनुदान अनुशंसित किया गया है।

(15) वर्ष 2011-12 से 2014-15 के चार वर्षों के लिए सड़कों व पुलों के अनुरक्षण अनुदान हेतु रू. 19,930 करोड़ की राशि की अनुशंसा।

(16) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अनुदान राशि रू. 24,068 करोड़ की अनुशंसा।

(17) राज्य विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए रू. 27,945 करोड़ के अनुदान की अनुशंसा।

(18) वन, अक्षय ऊर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्धन अनुदानों के रूप में रू. 5,000 करोड़ अनुदान की अनुशंसा।

(19) राज्यों की सहायता अनुदान के रूप में पांच वर्षों की अवधि के लिए रू. 3,18,581 करोड़ की कुल राशि अनुशंसित (recommended) की गई हैं।

तलिका 7.5:तेरहवें वित्त आयोग की संस्तुतियों पर राज्यों को 2010-15 की अवधि में हस्तान्तरित की जाने वाली धनराशि

(रू. करोड़ में)

राज्य	केन्द्रीय करों एवं शुल्कों में हिस्सा	सहायता अनुदान	कुल अन्तरण
आंध्र प्रदेश	100616.0	13532.3	114148.3
अरूणाचल प्रदेश	4755.6	4348.2	9103.8
असम	526260.6	5212.1	57832.7
बिहार	158341.2	14602.8	172944.1
छत्तीसगढ़	35825.2	6175.5	42000.7
गोवा	3857.8	516.2	4374.0
गुजरात	44107.1	9682.9	53789.9
हरियाणा	15199.5	4270.8	19470.3
हिमाचल प्रदेश	11327.3	10364.4	21691.6
जम्मू और कश्मीर	20182.7	20255.9	40438.7
झारखण्ड	40640.3	7238.4	47878.6
कर्नाटक	62774.9	11601.4	74376.3
केरल	33954.3	6311.5	40325.8
मध्य प्रदेश	103268.9	13324.5	116593.4
महाराष्ट्र	75406.9	16302.8	91709.8
मणिपुर	6541.2	7026.3	13567.5
मेघालय	5918.5	3923.9	9842.4
मिजोरम	3901.3	4904.0	8805.3
नागालैण्ड	4552.2	9191.3	13744.2
ओडिशा	69316.1	9658.8	78974.9
पंजाब	20146.4	5540.3	25686.6

राजस्थान	84892.2	12949.8	97842.0
सिक्किम	3466.8	1058.8	4525.7
तमिलनाडू	72070.4	11365.9	83437.7
त्रिपुरा	7411.5	5716.1	13127.6
उत्तर प्रदेश	285397.1	26742.9	312140.0
उत्तराखण्ड	16245.1	4063.0	20308.1
प. बंगाल	105358.6	12638.7	117997.2
	1448096.0	**258581.0**	**1706676.0**

(20) स्थानीय निकास तथा 13 वाँ वित्त आयोग ग्राम पंचायतों तथा स्थानीय नगरीय निकायों के सम्बन्ध में बँटवारे के लिये आयोग ने जो कसौटी दी है- वह इस प्रकार है

क्रम.	**कसौटी**	**भार (%)**	
		ग्राम पंचायत	**नगर निकाय**
1.	जनसंख्या	50.0	50.0
2.	क्षेत्रफल	10.0	10.0
3.	उच्चतम प्रति व्यक्ति आय से दूरी	10.0	10.0
4.	वितरण का सूचकांक	15.0	15.0
5.	कुल जनसंख्या में (SC,ST अनुपात)	10.0	--
6.	वित्त आयोग ग्राम प्रयोग सूचकांक	5.0	5.0
कुल		100.0	100.0

इस तरह तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से 2010-11 से 2014-15 की पाँच वर्षों की अवधि में राज्यों को केन्द्रीय करों एवं शुल्कों के हिस्से के रूप में कुल रू. 14,48,096 करोड़ तथा सहायता अनुदान के रूप में रू. 2,58,581.0 करोड़ अर्थात कुल रू. 17,06,677.0 करोड़ प्राप्त होंगे तेरहवें वित्त आयोग ने इस बात का किसी राज्य को केन्द्रीय करों एवं शुल्कों में छोटी-सी धनराशि प्राप्त हो रही है, किन्तु पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक क्षेत्रक शिक्षा एवं स्वास्थ के विकास तथा सड़कों आदि के अनुसरण से जुड़ी आवश्यकताएं अधिक हैं तो उसे अनुदान सहायता के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त हो जाए जैसे कि पूर्वोत्तर के राज्य तथा जम्मू-कश्मीर तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडू, कर्नाटक, हरियाणा तथा पंजाब जैसे विकसित राज्यों को अपेक्षाकृत कम धन राशि प्राप्त हो सकी है, जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, ओडिशा तथा राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य अधिक धनराशि प्राप्त करने में सफल रहे हैं। तेरहवें वित्त आयोग की इस बात की सराहना की जानी चाहिए कि उसने केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अपने राजस्व घाटों सहित सकल राजकोषीय घाटों में कमी लाने के लिए विशिष्ट उपाय अपनाने का एक रोडमैप तैयार किया है साथ ही इस बात पर भी बल दिया है कि राज्यों की कर राजस्व अर्जन की सम्भाव्यता के पूर्ण उपयोग द्वारा ऋण लेने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सके। तेरहवें वित्त आयोग ने भारतीय लोकतंत्र में पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय निकायों के महत्व को समझते हुए उनके विकास हेतु पाँच वर्षों की अवधि के लिए रू. 87519 करोड़ अतिरिक्त किए जाने की सिफारिश की है।

तेरहवें वित्त आयोग ने पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न मुद्दों, प्राथमिक शिक्षा के विस्तार, शिशु मृत्यु दर में कमी लाने, जल संभरण परियोजनाओं, आपदाओं से जूझने, नागरिकों को विशिष्ट पहचान संख्या आवंटित करने जैसे लोक महत्व के मुद्दों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तथा इनसे सम्बन्धित राज्यों की छोटी-से-छोटी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए धनराशियाँ आवंटित की पुलिस व्यवस्था में सुधार तथा पुलिस बलों को आधुनिकरण तथा न्याय वितरण व्यवस्था में सुधार लाने जैसे मुद्दे भी आयोग की प्राथमिकता में रहे हैं।

राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण एवं विकास हेतु केन्द्र सरकार राष्ट्रीय राजमार्ग विकास प्राधिकरण के माध्यम से तथा सार्वजनिक निजी सहभागिता से संसाधन मुहैया करा रही है, लेकिन राज्यों का सड़क तंत्र जर्जर हालत में है। अनेक प्रान्तीय मार्गों पर पुराने तथा जर्जर पुलों की मरम्मत और नए पुलों के निर्माण की आवश्यकता है। तेरहवें वित्त आयोग ने इस तथ्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए सड़कों एवं पुलों के अनुरक्षण हेतु रू. 19,930 करोड़ दिये जाने की सिफारिश की है। कुल मिलाकर तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें इतनी अधिक संतुलित एवं परिमार्जित हैं कि किसी भी राज्य केन्द्र में कांग्रेस की सत्ता तथा उसके सहयोगी दलों द्वारा शासित अथवा विपक्षी दलों द्वारा शासित की ओर से विरोध का कोई भी स्वर नहीं उठा है। संघीय वित्त की सफलता की इससे बड़ी कसौटी और क्या हो सकती है?

7.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

7.10 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि तेरहवें वित्त आयोग की स्थापना राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत 13 नवम्बर, 2007 को 2010-15 की अवधि हेतु सिफारिशें प्रदान करने के लिये गयी थी। **डॉ. विजय केलकर** को आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। आयोग के गठन का उद्देश्य करों के माध्यम से प्राप्त निवल प्राप्तियों (net receipts) का केन्द्र और राज्यों के बीच वितरण किस प्रकार किया जा सकता है, और ऐसी प्राप्तियों के सम्बन्ध में राज्यों (हिस्सों का) के बीच आवन्टन कैसे हो जिससे राज्यों के राजस्व की सहायता अनुदान सम्बन्धित करने वाला सिद्धान्त और राज्यों को भुगतान किये जाने वाली राशि के आबंटन का आधार, राज्य वित्त आयोग द्वारा किये गये सिफारिशों के आधार पर राज्य में पंचायतों तथा नगर पालिकाओं से संसाधनों की बढ़ोत्तरी के लिये राज्य की समेकित तिथि को बढ़ाने हेतु वाँछित उपाय सुझाना।

अपनी संस्तुतियाँ देते समय जहाँ जरूरत होगी, वहाँ आयोग 1971 जनगणना के ही अंकों को आधार के रूप में लेगा। राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि (National Calamity Contigency Fund (NCCF)) तथा आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 के तहत निधि की वर्तमान वित्तीय व्यवस्था की चाहे तो समीक्षा करके आयोग को उसका आधार स्पष्ट करेगा जिसके आधार पर उसमें संघ और राज्यों की प्राप्तियों तथा व्यय के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकेगा। आयोग ने राजकोषीय क्षमता दूरी कसौटी को 47.5 प्रतिशत का भार प्रदान किया है।

राजकोषीय अनुशासन को कसौटी के रूप में सबसे पहले 11 वें वित्त आयोग में चुना गया तथा 11 वें एवं 12 वें दोनों वित्त आयोग में राजकोषीय अनुशासन कसौटी को 7.5 प्रतिशत का भार दिया, जबकि 13 वें वित्त आयोग में केवल राजकोषीय अनुशासन कसौटी को ही लिया गया है और कर प्रयास को छोड़ दिया है (इसके लिये 17.5 प्रतिशत का भार)।

आठ राज्यों के लिए 2010 से 2015 की अवधि में रू. 51,800 करोड़ का कुल गैर योजना (unplanned) भिन्न राजस्व अनुदान अनुशासित किया गया है (तालिका-3) विशेष श्रेणी के तीन राज्यों, जो गैर योजना राजस्व घाटे की स्थिति से उबरे हैं, के लिए रू. 1,500 करोड़ का निष्पादन अनुदान अनुशंसित किया गया है।

इस तरह तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से 2010-11 से 2014-15 की पाँच वर्षों की अवधि में राज्यों को केन्द्रीय करों एवं शुल्कों के हिस्से के रूप में कुल रू. 14,48,096 करोड़ तथा सहायता अनुदान के रूप में रू. 2,58,581.0 करोड़ अर्थात् कुल रू. 17,06,677.0 करोड़ प्राप्त होंगे तेरहवें वित्त आयोग ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि यदि किसी राज्य को केन्द्रीय करों एवं शुल्कों में छोटी-सी धनराशि प्राप्त हो रही है, किन्तु पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक क्षेत्रक शिक्षा एवं स्वास्थ के विकास तथा सड़कों आदि के अनुसरण से जुड़ी आवश्यकताएं अधिक हैं तो उसे अनुदान सहायता के रूप में अधिक धनराशि प्राप्त हो जाए जैसे कि पूर्वोत्तर के राज्य तथा जम्मू-कश्मीर तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों से महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडू, कर्नाटक, हरियाणा तथा पंजाब जैसे विकसित राज्यों को अपेक्षाकृत कम धन राशि प्राप्त हो सकी है, जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, ओडिशा तथा राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य अधिक धनराशि प्राप्त करने में सफल रहे हैं।

7.11 शब्दावली (Glossary)

- **अन्तरण -** विवर्तित करना, दूसरे पर भार डालना।
- **कर देयता -** कर देने की क्षमता।
- **अनुदान -** आर्थिक सहायता जिसके बदले कुछ लिया नहीं जाता।

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंह एस.के. *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- पन्त जे.सी. *लोक अर्थशास्त्र* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- त्यागी बी.पी. *लोक वित्त* जय प्रकाश नाथ एवं कम्पनी, मेरठ।

7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- मिश्रा जे.पी. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार* साहित्य भवन पब्लिकेशनस ।
- भाटिया एच.एल. *लोकवित्त*, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.
- Report of The Twelfth Finance Commission.

7.15 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. संघीय वित्त ढाँचे में कौन सी समस्याएं उत्पन्न होती है? समझाइये। इनके निवारण हेतु कौन से उपाय तेरहवें वित्त आयोग ने सुझाए है?
2. तेरहवें वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशों की व्याख्या कीजिए।
3. तेरहवें वित्त आयोग पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई - 8 भारत में कर आधार (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर एवं गैर -कर आय)

(Tax Basis in India (Direct and Indirect and Non-Tax Income))

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ

8.3.1 केन्द्र सरकार का कर राजस्व

8.3.2 केन्द्र सरकार का गैर कर राजस्व

8.4 राजस्व प्राप्तियों में तेज वृद्धि के कारण

8.5 अभ्यास प्रश्न

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप अभी तक की इकाइयों के अध्ययन से लोकवित्त के सैद्धान्तिक पहलू को भलीभाँति समझ गये होंगे। इस इकाई में हम लोक वित्त के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों की चर्चा करेंगे। राजस्व प्राप्तियों के प्रमुख स्रोत कर एवं गैर कर राजस्व हैं। करों के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्रोतों की संरचना तथा उनसे प्राप्तियों का विश्लेषण किया जायेगा। केन्द्र सरकार के मुख्य कर राजस्व हैं – आयकर, निगम कर, उपहार कर, पूँजी लाभ पर कर, धन कर, लाभांश पर कर और व्यय कर। गैर कर राजस्व प्राप्तियों के प्रमुख स्रोत हैं। आर्थिक सेवायें, सार्वजनिक उद्यमों से आय तथा ब्याज प्राप्तियाँ। राजस्व प्राप्तियों में तेजी से वृद्धि हुई है इसके कारणों की इकाई के अन्त में व्याख्या दी जायेगी।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ इस इकाई में हम भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों का अवलोकन करेंगे।
- ✓ केन्द्र सरकार के कर राजस्व के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों से प्राप्तियों को विस्तृत रूप से जानेंगे।
- ✓ केन्द सरकार के गैर कर राजस्व के स्रोतों को भी संक्षेप में समझेंगे ।
- ✓ इसके पश्चात केन्द्र की राजस्व प्राप्तियों में तेज वृद्धि के कारणों को भी समझेंगे।

8.3 केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ

सरकार की राजस्व प्राप्तियों के दो प्रमुख स्रोत हैं -

(क) कर राजस्व जिसमें हम प्रत्यक्ष कर राजस्व तथा परोक्ष कर राजस्व को रखते हैं। करारोपण के अन्तर्गत हम प्रमुख रूप से आयकर, निगम कर, संघीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क तथा सेवाकर को रखते हैं तथा

(ख) गैर कर राजस्व। गैर कर राजस्व प्राप्तियों के अन्तर्गत हम ब्याज प्राप्तियाँ, सार्वजनिक उद्यमों, रेलवे, पोस्ट, आर.बी.आई. से लाभांश, राजकोषीय सेवाओं, आर्थिक सेवाओं, सामान्य सेवाओं आदि से प्राप्तियाँ रखते हैं।

नब्बे के दशक में तथा उसके बाद राजस्व प्राप्तियों - दोनों ही कर प्राप्तियों तथा गैर कर प्राप्तियों तथा कर उत्प्लवता (buoyancy) में तेजी से वृद्धि हुई है। विभिन्न वर्षों में केन्द्र सरकार की कुल राजस्व प्राप्तियां इस प्रकार रही है।

वर्ष	**करोड़ रूपये**
1990-91	54995.42
2008-09	558988.59
2009-10	610022.27
2010-11	789892.00
2011-12	610022.27

8.3.1 केन्द्र सरकार का कर राजस्व

देश के विकास के लिए सरकार को वित्त की व्यवस्था करनी पड़ती है। यह वित्त उसे कई स्रोतों से प्राप्त हो सकता है और उसमें से एक मुख्य स्रोत है कर के द्वारा अर्जित आय । कर एक प्रकार का अनिवार्य भुगतान है जो उस व्यक्ति को अनिवार्य रूप से सरकार को देना पड़ता है जो कर आधार से सम्बन्धित होता है। कर के बदले में करदाता को आवश्यक रूपसे कोई लाभ नहीं होता है। कर आधार से आशय उससे है जिसको आधार बनाकर कर लगाया जाता है।

भारत सरकार की आय का भी एक मुख्य स्रोत कर व्यवस्था है। भारतीय कर व्यवस्था काफी विस्तृत, जटिल एवं विकसित है। एक संघीय राज्य होने के कारण भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच करों के क्षेत्राधिकार का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि न तो करों के प्रशासन या प्रबन्धन में पुनरावृत्ति हो और न ही एक कर का प्रतियोगितापूर्ण रूप से शोषण हो। सरकार करों को आर्थिक नीति के विविध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करती है। विविध करों के मिश्रण या संरचना को हम कर ढांचा कहते हैं। राजस्व के गतिशीलता तथा व्यय योग्य आय या क्रय शक्ति के नियमन के सम्बन्ध में सभी कर प्रायः एक ही स्वभाव के होते हैं पर वितरणात्मक प्रभाव की दृष्टि से उनमें भिन्नता पायी जाती है। कुछ कर ऐसे होते हैं जिनका वितरणात्मक पहलू अधिक प्रबल होता है तो उनका राजस्व गतिशील पहलू कमजोर होता है पर कुछ ऐसे कर हो सकते हैं जिनका राजस्व गतिशीलन पहलू तो मजबूत हो पर वितरणात्मक पहलू कमजोर हो। सरकार विविध प्रकार के करों के बीच समन्वय स्थापित करके कर संरचना (tax structure) का निर्माण करती है।

केन्द्र सरकार की करारोपण से प्राप्तियाँ

(करोड़ रूपया)

	1990-91	**2008-09**	**2009-10**	**2010-11**	**2011-12 (बजट)**
कर राजस्व	43041.7	465970	474217.6	776963	922401
(i) प्रत्यक्ष कर	6908.77	338905.8	363956	438500	525151
(ii) परोक्ष कर	38132.9	289043.2	277123.3	338463	397250

जी.डी.पी. की वृद्धि दर में वृद्धि के साथ कर ढाँचे के विवेकीकरण तथा सुधार कर आधार में विस्तार तथा नये करों के लागू करने जैसे फ्रिज बेन फिट टैक्स, सेवा कर, कर की उच्चतम दर में कमी, उत्तम कर प्रशासन आदि के कारण केन्द्र सरकार के कर राजस्व में ऊँची वृद्धि दर, विशेष रूप से 2004-05 के बाद, देखी गयी है। कर उत्प्लवता (tax buoyancy) में भी वृद्धि देखी गयी है।

जी.डी.पी. प्रतिशत रूप में केन्द्र सरकार की कर आय

वर्ष	**प्रत्यक्ष कर**	**परोक्ष कर**	**कुल कर राजस्व**
2003-04	3.81	5.42	9.23
2007-08	6.61	5.95	12.56
2008-09	6.55	5.25	11.80
2009-10	6.32	4.63	10.95
2010-11	-	-	9.9
2011-12	-	-	10.38

दी गयी सारिणी से स्पष्ट है कि 1990-91 के बाद कर राजस्व से प्राप्तियों की निरपेक्ष मात्रा में स्पष्ट वृद्धि हुई है। करारोपण से प्राप्ति 1990-91 में 43041.7 करोड़ रूपए थी जिसकी वर्ष 2011-12 में बढ़कर 922401 करोड़ रूपए हो जाने की उम्मीद थी। नीचे दी गयी सारिणी में केन्द्र सरकार की कर आय तथा जी.डी.पी. अनुपात प्रदर्शित किया गया हैउल्लेखनीय है कि कर जी.डी.पी. अनुपात 1990-91 में 10.1 प्रतिशत था जो 2003-04 में 9.23 प्रतिशत होकर 2011-12 में अनुमानतः 10.38 प्रतिशत होगा। सकल कर जी.डी.पी. अनुपात जो 2003-04 में 9.23 प्रतिशत था, चार वर्षों की अवधि में बढ़कर 2007-08 में 12.56 प्रतिशत हो गया। कर राजस्व के सम्बन्ध में यह जो सुधार की स्थिति देखी गयी वह प्रत्यक्ष करों में, विशेष रूप से निगम कर के सम्बन्ध में कर उत्प्लवता अधिक सुधार के कारण हुआ, जो भारतीय निगम क्षेत्र की लाभदेयता में वृद्धि के कारण हुआ। वास्तविकता तो यह है कि परोक्षकर जी.डी.पी. अनुपात तो 2008-09 तक तो 5 से 6 प्रतिशत के बीच स्थिर रहा जिसके बाद इसमें गिरावट देखी गयी।

13वें वित्त आयोग के अनुसार प्रत्यक्ष करों की प्राप्तियों में ऊँची वृद्धि के फलस्वरूप केन्द्र सरकार की सकल कर राजस्व प्राप्तियों की संरचना में भी परिवर्तन हुआ है। लोक वित्त के इतिहास में पहली बार 2007-08 में प्रत्यक्ष करों से वसूली परोक्ष करों की वसूली से अधिक हुयी, 2007-08 में कुल कर राजस्व में प्रत्यक्ष कर का प्रतिशत 52.6 था जोकि 2008-09 में 56.3 प्रतिशत रहा। 1990-91 में इसका प्रतिशत केवल 19 प्रतिशत रहा था।

केन्द्र सरकार अपना राजस्व, करों तथा गैर-करों स्रोतों से प्राप्त करती है। इसमें से कर राजस्व केन्द्र सरकार का मुख्य आय का स्रोत है।

कर राजस्व दो प्रकार का होता है:

(i) प्रत्यक्ष कर राजस्व (Direct Tax Revenue)

(ii) अप्रत्यक्ष कर राजस्व (Indirect Tax Revenue)

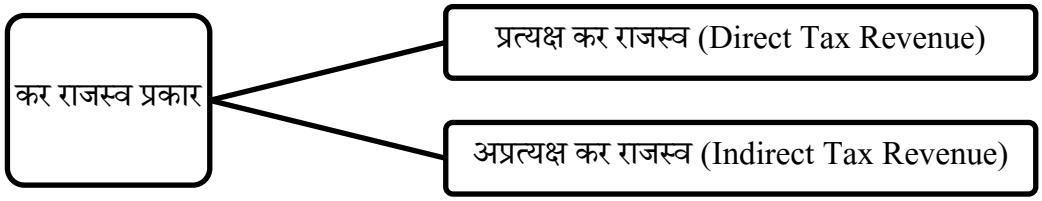

भारत में केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष कर

प्रत्यक्ष कर उस कर को कहते हैं जो कि उसी व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह कानूनी रूप से लगाया जाता है। प्रत्यक्ष कर का अन्तरण नहीं किया जा सकता अर्थात् इसकी अदायगी को अन्य किसी व्यक्ति पर टाला नहीं जा सकता है। प्रत्यक्ष करों की स्थिति में कराघात (Impact) अथवा तात्कालिक द्रव्य भार (Immediate Money Burden) और कर भार अथवा करापात (Incidence) अथवा अन्तिम द्रव भार (Ultimate Money Burden) एक ही व्यक्ति पर पड़ते हैं।

भारत में केन्द्र सरकार को निम्नलितखत प्रत्यक्ष करों द्वारा राजस्व प्राप्त होता है:

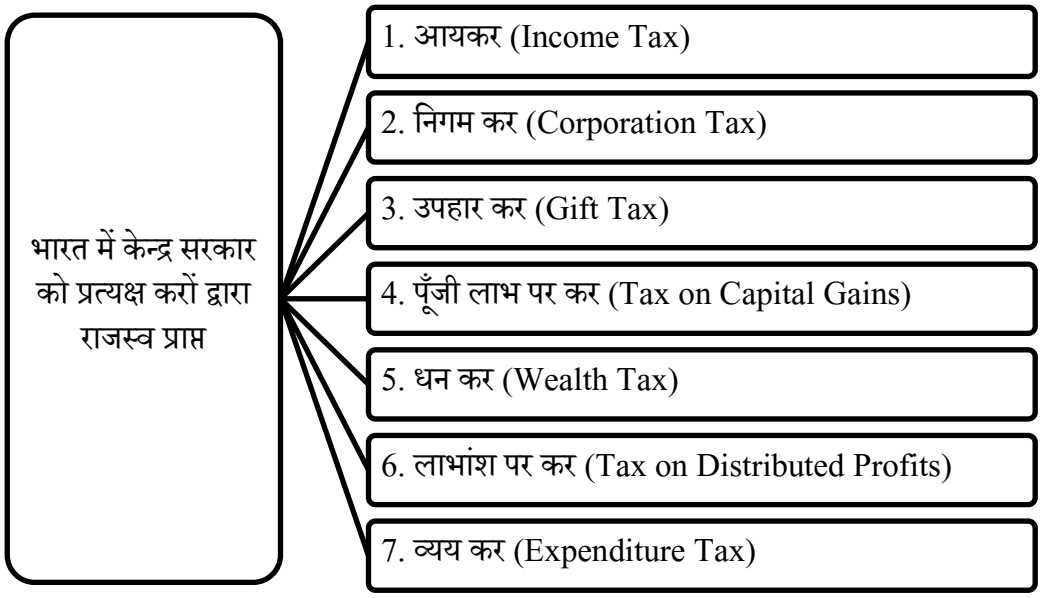

(1) आय कर

भारत में आय कर सर्वप्रथम 1860 से 1873 तक लागू रहा तथा 1886 में दुबारा लागू होने के पश्चात् अब यह देश के कर ढाँचे का एक मुख्य अंग है। भारत में सभी व्यक्तिगत, अविभाज्य हिन्दू परिवार, गैर-पंजीकृत फर्म तथा अन्य सभी व्यक्तियों के संघों की कुल आय पर लगाया जाता है। भारत में कृषि से प्राप्त आय पर कर नहीं लगाया जाता है, केवल गैर-कृषिगत आय पर ही कर लगाया जाता है।

आयकर की सामान्य विशेषताएं

(1) करदाताओं का वर्गीकरण- प्रशासनिक सुविधाओं हेतु करदाताओं को निम्न छ: भागों में बांटा गया है:

1. व्यक्तिगत
2. अविभाज्य हिन्दू परिवार
3. सार्वजनिक एवं निजी कम्पनियाँ
4. स्थानीय संस्थाएँ
5. हिस्सेदार फर्म
6. व्यक्तियों का संघ

(2) आयकर का वर्गीकरण - भारत में आय को छ: वर्गों में बांटा गया है, जो इस प्रकार है:

1. वेतन
2. प्रतिभूतियों पर ब्याज
3. सम्पत्ति से आय
4. व्यापार से प्राप्तियाँ एवं लाभ
5. अन्य स्रोतों से प्राप्त आय (लाभांश सहित)
6. पूँजी प्राप्तियाँ

(3) आय की धारणा- कर योग्य आय के लिए उसकी प्राप्ति में कुछ न कुछ नियमितता होनी चाहिए। एक साल में प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण द्रव्य आय को कुल आय (Gross Income) कहते हैं। निवल

आय (Net Income) उस आय को कहते हैं जो कि व्यापारिक व्यय, मूल्य ह्रास (Depreciation) व्यय और व्यावसायिक हानियों को कुल आय में से निकालने के बाद शेष बचती है। निवल आय पर ही आयकर लगाया जाता है।

(4) आयकर विवरण भरना अनिवार्य है - भारत के आयकर अधिनियम की धारा 139 (Section 139) के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति एवं कम्पनी को अपना आयकर विवरण पत्र भरना आवश्यक है, चाहे उसकी आय आयकर के दायरे में आती हो या नहीं।

(5) आयकर पर अधिभार - करदाता की कर-देय आय पर जो कर आता है, उस पर अधिभार (Surcharge) लगता है। अधिभार से जो आय प्राप्त होती है, वह केवल केन्द्र सरकार को प्राप्त होती है इसे राज्य सरकारों के बीच बांटा नहीं जाता है।

(6) आयकर पर उपकर - आयकर पर उपकर (Cess) भी केन्द्रीय सरकार लगाती है जिसका उपयोग वह किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए करती है। वर्ष 2010-11 के बजट में वित्त मंत्री ने आयकर 3 प्रतिशत का उपकर लागू किया है।

केन्द्र सरकार का आयकर से प्राप्त राजस्व

केन्द्र सरकार के कर राजस्व में आयकर का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 1990-91 में आयकर से केन्द्र सरकार को 5,371 करोड़ का राजस्व प्राप्त हुआ जो वर्ष 2012-13 में बढ़कर 1,89,866 करोड़ रूपए हो गया है।

प्रत्यक्ष कर– व्यक्तिगत आयकर- केन्द्रीय बजट 2012-13 में वित्त मंत्री ने व्यक्तिगत आयकर में दो प्रमुख परिवर्तन किए हैं-

(i) सामान्य कर दाता के सम्बन्ध में या यूं कहिए कि वरिष्ठ नागरिक तथा अति विशिष्ट नागरिक की श्रेणी को छोड़कर सभी कर दाताओं के लिए कर मुक्त सीमा का 180000 से बढ़कर 2 लाख करना। इस प्रकार पिछली बजट में 190000 रूपए कर मुक्त आय के साथ महिलाओं की विशिष्ट श्रेणी अर्थहीन होगी।

(ii) कर स्लैब दरें (10 प्रतिशत, 20 प्रतिशत तथा 30 प्रतिशत) अपरिवर्तित, उच्चतम कर दर 30 प्रतिशत के सम्बन्ध में आय सीमा 8 लाख से बढ़कर 10 लाख रूपए की गयी।

इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों के बाद आयकर ढांचा इस प्रकार है।

करदाता श्रेणी	करमुक्त आय	10% कर	20% कर	30% कर
सामान्य करदाता	2,00,000	2,00,001 से 5,00,000	5,00,001 से 10 लाख	10 लाख से अधिक
वरिष्ठ नागरिक (60 वर्ष से अधिक)	2,50,000	2,50,001 से 50,00,000	5,00,001 से 10 लाख	10 लाख से अधिक
अधिक वरिष्ठ नागरिक (80 वर्ष से अधिक)	5,00,000	-	5,00,001 से 10 लाख	10 लाख से अधिक

व्यक्तिगत कर के सम्बन्ध में बजट में दी गयी कुछ अन्य व्यवस्थायें इस प्रकार हैं-

1. ऐसे वरिष्ठ नागरिकों को जिनको किसी व्यापार या व्यवसाय से आय नहीं प्राप्त होती है उन्हें अग्रिम कर भुगतान करना नहीं होगा पर उन्हें वार्षिक रिटर्न दाखिल करने के पहले कर देय होगा।
2. बचत बैंक खाते से 1 वर्ष में अर्जित 10000 रूपए तक अर्जित ब्याज कर मुक्त होगा।
3. मेडीक्लेम बीमा प्रीमियम 15000 रूपया तक कर मुक्त होगा, इसी सीमा के भीतर स्वास्थ्य परीक्षण के सम्बन्ध में 5000 रूपए तक व्यय करदाता के या उसके परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध में कर मुक्त होगा।
4. मकान सम्पत्ति के विक्रय से प्राप्त पूंजीलाभ पर कर देय नहीं होगा यदि यह लाभ अर्ह कम्पनियों के इक्विटी शेयर में निवेशित हो जाये।
5. 80सी के अन्तर्गत इन्फ्रास्ट्रक्चर बांड के सम्बन्ध में 20000 रूपए का निवेश 2012-13 के बाद छूट के लिए अनुमन्य नहीं होगा।
6. सुपुर्दगी आधारित इक्विटी सौदों पर STT की दर 0.125 प्रतिशत से घटाकर 0.1 प्रतिशत कर दी गयी है। इसके कारण सेकेण्ड्री बाजार में शेयरों के क्रय-विक्रय की लागत में कमी होगी, फलस्वरूप पूंजीबाजार को बल मिलेगा।
7. ऐसी नयी पालिसीज़ के सम्बन्ध में जिनकी प्रीमियम की मात्रा बीमाकृत राशि के 10 प्रतिशत से अधिक हो तब तक यह 20 प्रतिशत थी तो प्रीमियम या परिपक्वता पर प्राप्ति राशि पर अब तक अनमन्य कर छट अब नहीं प्राप्त होगी। जीवन बीमा व्यापार को यह हतोत्साहित करेगा।
8. अचल सम्पत्ति का विक्रेता, शहरी क्षेत्रों में यदि प्राप्ति 500000 रूपए तथा ग्रामीण क्षेत्र में 200000 रूपए से अधिक हो तो, विक्रय मूल्य का 1 प्रतिशत सरकारी खजाने में अनिवार्यतः जमा करेगा।
9. ज्वेलरी या बुलियन के क्रय के सम्बन्ध में मूल्य का 1 प्रतिशत स्रोत पर ही क्रेता से वसूल किया जायेगा यदि क्रय का मूल्य 200000 रूपए से अधिक हो।
10. ऐसा व्यक्ति जिसकी आय 10 लाख रूपए से कम है, राजीव गांधी इक्विटी सेविंग स्कीम में 50000 रूपया प्रत्यक्ष रूप से निवेश करके निवेशित राशि के 50 प्रतिशत तक कर छूट प्राप्त कर सकता है।
11. वित्त मंत्री द्वारा कुछ व्यवहारों के सम्बन्ध में कर अधिकारी को सूचना देने की अनिवार्यता जैसे (i) अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरण, यदि इसका मूल्य ग्रामीण क्षेत्र में 200000 रूपया तथा शहरी क्षेत्र में 5 लाख रूपए से अधिक हो (ii) विदेशों में धारित सम्पत्ति के सम्बन्ध में अनिवार्य रूप से खुलासा (iii) 2 लाख रूपए से अधिक की नकद क्रय की गयी ज्वेलरी के सम्बन्ध में खुलासा (vi) कोयला, लिगनाइट या आइरन ओर में व्यापार (v) अविवेचित ऋण या मुद्रा (vi) असूचीबद्ध कम्पनियों के सम्बन्ध में उचित बाजार कीमत से अधिक प्रीमियम, सम्पत्तिकर (Wealth tax) के दायरे के विस्तार तथा ब्लैकमनी के ऊपर अंकुश लगाने के सम्बन्ध में उठाये गये कदम के रूप में लिया जा सकता है।

निगम कर (Corporation Tax)

1960-61 के पूर्व कम्पनियों पर उनके लाभ पर जो कर लगता था, उन्हें **सुपर टैक्स** कहते थे। 1960-61 में इसे समाप्त कर दिया गया, उसके स्थान पर कम्पनियों के निबल लाभ पर जो कर लगाया

गया उसे निगम कर कहते हैं। भारत में निगम कर का निर्देशन आयकर अधिनियम (Income Tax Act) और वित्त अधिनियम (Finance Act) के द्वारा होता है।

कम्पनियों के निगम कर निर्धारण के लिए कुल लाभ में से ब्याज, मजदूरी एवं मूल्य ह्रास (Depreciation) की लागतों को निकालने के लिए निबल लाभ (Net Profit) को लिया जाता है जो कि किसी कर-निर्धारण वर्ष में कम्पनियों द्वारा कमाया जाता है उस पर निगम कर लगाया जाता है। निवल लाभों का शेष भाग शेयर होल्डरों में बांट दिया जाता है। शेयर होल्डरों द्वारा इस प्रकार अर्जित की गई आय पर लाभांश कर (Dividend Tax) तथा अधिकर लगाये जाते

भारत में कम्पनियों को करारोपण के दृष्टिकोण से आकार, स्वामित्व तथा देशी और विदेशी होने के आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है। 1990-91 के पूर्व कम्पनियों पर निगम कर की दरें काफी ऊँची थी। 1991 से निगम कर की दरों को कम किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य है भारत में आर्थिक विकास दर को बढ़ावा देना एवं विदेशी विनिवेश को बढ़ावा देना। जहाँ 1985-86 के बजट प्रस्ताव में घरेलू कम्पनियों पर निगम कर की दर 50 प्रतिशत थी उसे 1997-98 के बजट में घटा कर 40 प्रतिशत किया गया और 2005-06 के बजट में इसे घटा कर 30 प्रतिशत किया गया। 2008-09 में इस सम्बन्ध में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

इसके विपरीत विदेशी कम्पनियों पर लगाये जाने वाले निगम कर की दर जो कि 1985-86 बजट में 65 प्रतिशत थी उसे 1997-98 बजट में घटाकर 48 प्रतिशत कर दिया गया। वर्ष 2002-03 में विदेशी कम्पनियों पर निगम कर को घटा कर 40 प्रतिशत कर दिया गया और वर्ष 2008-09 में इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

केन्द्रीय बजट 2012-13 में वित्त मंत्री ने निगम कर की दर में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है पर वित्त मंत्री ने इनकी सस्ते फण्ड तक पहुंच तथा अनेक क्षेत्रों में अधिक निवेश को प्रवर्तित करने के सम्बन्ध में अनेक उपाय किए हैं जिनके परिणामस्वरूप कारपोरेट टैक्स की प्रभावी दर में निश्चित रूप से कमी आयेगी, यह प्रभावी दर पिछली बजट में 24 प्रतिशत लगभग थी जबकि वास्तविक दर 30 प्रतिशत थी।

(क) निगम क्षेत्र को कुछ कठिनाई में गुजर रहे क्षेत्रों के सम्बन्ध में, जैसे पावर, उड्डयन, सड़क तथा पुल, उर्वक, बांध तथा किफायती आवास (affordable housing), वित्त मंत्री ने यह व्यवस्था दी है कि इनके सम्बन्ध में विदेशी उधारी (ECB) पर ब्याज पर कर की दर को तीन वर्षों तक 15 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया है।

(ख) कृषि क्षेत्र में विकास के लिए कृषि विस्तार सेवाओ पर किए गये व्यय के सम्बन्ध में 150 प्रतिशत की भारित कटौती।

(ग) पावर सेक्टर में नयी इकाइयों के खोलने की तिथि को 31 मार्च, 2013 तक बनाये रखा गया है जिस पर 10 वर्ष तक 100 प्रतिशत कटौती प्राप्त होगी। पावर जेनरेशन कम्पनियों द्वारा नयी सम्पत्तियों के क्रय पर 20 प्रतिशत के अतिरिक्त ह्रास की अनुमति।

(घ) SME के लिए आडिट की अनिवार्यता की सीमा को 60 लाख रूपए से बढ़ाकर 1 करोड़ रूपया करना।

(ड.) एसटीटी की दर को 125 प्रतिशत से घटाकर 0.1 प्रतिशत करना।

(च) विदेशी कम्पनियों द्वारा अपनी विदेशी सहायक कम्पनियों से प्राप्त लाभांश पर प्रभावी दर 16.22 प्रतिशत से कर की व्यवस्था। वैसे इस पर 30 प्रतिशत कर देय होता पर अब कर की दर 15 प्रतिशत ही होगी। अब तक व्यवस्था के अनुसार ट्रांसफर प्राइजिंग सीमा के अन्तर्गत केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार ही आते थे पर अब दो सम्बन्धित पार्टीज़ के बीच कुछ घरेलू व्यवहार भी ट्रांसफर प्राइजिंग व्यवस्था के अन्तर्गत आयेंगे।

न्यूनतम वैकल्पिक कर (Minimum Alternate Tax)

1996-97 में न्यूनतम वैकल्पिक कर को कम्पनियों पर लागू किया गया क्योंकि बहुत सी कम्पनियाँ शून्य टैक्स दे रही थीं। इस प्रावधान के अन्तर्गत यदि सभी छूटों और रियायतों से लाभान्वित होने के उपरान्त किसी कम्पनी की कर देय लाभ आय उसकी लेखा लाभ आय के 30 प्रतिशत से नीचे चली जाय तो ऐसी स्थिति में उस कम्पनी की कर देय लाभ आय को उसकी लेखा लाभ आय के 30 प्रतिशत के बराबर मानते हुए कम्पनी की कर देयता निर्धारित की जाएगी। केन्द्रीय बजट 2010-11 के अनुसार इस कर की दर 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 18 प्रतिशत कर दिया गया है जिसे 2011-12 के बजट में बढ़ाकर 18.5 प्रतिशत कर दिया गया है। वित्त मंत्री ने 2012-13 के केन्द्रीय बजट में मैट के दायरे को विस्तृत कर दिया है। अब मैट की व्यवस्था केवल कम्पनियों के सम्बन्ध में लागू नहीं होगी बल्कि सभी व्यापारिक इकाइयों (साझेदारी फर्म, एकल व्यापारी व्यक्तियों के संगठनों आदि) पर लागू होगी जो लाभ से जुड़ी कटौती का दावा करते हैं। इनके सम्बन्ध में MAT तभी लागू होगा यदि समायोजित लाभ 20 लाख रूपए से अधिक हो।

2013-14 बजट में निगम करारोपण के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं:

(क) विनिर्माण में लगी ऐसी कम्पनियों को जो 01-04-2013 से 31-03-2015 के बीच प्लाट तथा मशीनरी में 100 करोड़ रूपए से अधिक निवेश करेगी, 15 प्रतिशत की दर से विनियोग भत्ता देना होगा।

(ख) किसी भारतीय कम्पनी द्वारा अपनी सहायक विदेशी कम्पनी से प्राप्त लाभांश के ऊपर लाभांश कर की 15 प्रतिशत की किफायती दर से लागू होगी।

निगम कर से प्राप्त आय - केन्द्र सरकार को प्राप्त निगम कर से आय जो वर्ष 2009-2010 में 2,44,630 करोड़ रूपए थी वह वर्ष 2012-13 में बढ़कर 3,73,227 करोड़ रूपए हो गयी है।

उपहार कर (Gift Tax)

उपहार कर को अप्रैल 1958 में अस्तिकर, व्यय कर एवं सम्पत्ति कर के पूरक के रूप में लागू किया गया। उपहार कर का मुख्य उद्देश्य इन तीनों करों से बचने की प्रवृत्ति को रोका जा सके। यह कर दानी (Donor) पर लगता है न कि उपहार प्राप्तकर्ता पर। यह कर दाता द्वारा पिछले कर निर्धारण वर्ष में दिये गये सभी उपहारों के मूल्य पर लगाया जाता है। उपहार कर में प्रदान की जाने वाली छटें अथवा कर

माफी इस प्रकार हैं:- केन्द्र व राज्य सरकारों, स्थानीय सत्ताओं, पुण्यार्थ तथा धर्मार्थ संस्थाओं को दिये जाने वाले उपहार, विवाह के अवसर पर स्त्री आश्रितों को दिये जाने वाले उपहार, किन्तु प्रत्येक स्थिति में 10,000 रूपए तक।

1985-86 के बजट में कर मक्ति सीमा को 5,000 से बढ़ाकर 20,000 कर दिया गया। उपहार कर 30 प्रतिशत की दर से सभी उपहार देय राशि पर लगेगा।

1998-99 में वित्त मंत्री ने उपहार कर को समाप्त कर दिया। वर्ष 2002-03 से यह व्यवस्था की गयी है कि यदि बिना किसी प्रतिफल के सगे-सम्बन्धी द्वारा दिये गये उपहार या किसी अन्य द्वारा किसी अवसर पर दिये गये उपहार जिसकी कीमत 50,000 रूपए तक हो तो उसे उपहार प्राप्तकर्ता की आय में जोड़ दिया जायेगा। इस प्रकार अब उपहार, उपहार कर के अन्तर्गत नहीं बल्कि आयकर के अन्तर्गत आता है। 2009-10 बजट के अनुसार किसी गैर सगे सम्बन्धी से प्राप्त 50,000 रूपए से अधिक का उपहार, चाहे नकद में हो या किसी अन्य रूप में हो, उपहार प्राप्तकर्ता की आय में जोड़ा जायेगा।

पूँजी लाभ पर कर

पूँजी लाभ, आय का ही एक रूप माना जाता है, परन्तु इस पर करारोपण का ढांचा थोड़ा भिन्न होता है। केसी सम्पत्ति के विक्रय मूल्य और क्रय मूल्य के अन्तर को पूँजीगत लाभ कहा जाता है। यह लाभ सम्पत्ति के मूल्यों में वृद्धि हो जाने के कारण उत्पन्न होता है। यह प्राप्तकर्ता की कर-देय क्षमता में वृद्धि कर देता है। कोई प्रतिभूति शेयर, डिवेन्चर या मकान या अन्य कोई सम्पत्ति जब अपनी क्रय, लागत या निर्माण लागत से अधिक पर बिकती है तो इस प्रकार होने वाले लाभ को पूँजी लाभ कहते हैं। यदि कोई प्रतिभूति जैसे शेयर अपने क्रय के वर्ष के भीतर बिकती है तो इस पर होने वाले लाभ को अल्पकालीन पूँजी लाभ कहते हैं और इस पर जो कर लगता है उसे पूँजी लाभ कर कहते हैं। पुँजीगत लाभ कर उन निवल लाभों पर लगाया जाता है जो कि किसी के क्र मुकाबले विक्रय मूल्य से प्राप्त होता है। पूँजीगत लाभों का एक सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि पूँजीगत लाभ एक अनियमित अथवा असामान्य रूप से प्राप्त होने वाला लाभ होता है जो व्यक्ति के सामान्य व्यवसाय के अलावा प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ- यदि कोई मकान बेचने वाला व्यापारी मकान बेचता है और लाभ कमाता है तो यह पूँजीगत लाभ नहीं है क्योंकि मकानों को बेचना उसका व्यवसाय है और यह लाभ उसकी सामान्य आय है पर यदि कोई और व्यक्ति जैसे डाक्टर, शिक्षक मकान बेचता है और उससे लाभ कमाता है तो वह उसकी सामान्य आय का स्रोत नहीं है बल्कि यह पूँजीगत लाभ है। 1992-93 के बजट में पूँजीगत लाभों से होने वाली आय में से प्रथम 15,000 रूपए को कर मुक्त रखा गया। शेष लाभ पर 20 प्रतिशत कर देना होगा। इसे 1999-2000 बजट में घटा कर 10 प्रतिशत कर दिया गया। यदि लाभ एक लाख रूपए से अधिक है तो करदाता को अपने कर का 12 प्रतिशत अधिकर (Surcharge) और देना होगा। वर्ष 2010-11 के बजट के अनुसार पूँजी लाभ कर की दर 15 प्रतिशत होगी एवं वर्ष 2011-12 में भी यही दर बनी रहेगी।

लाभांश पर कर (Tax on Distributed Profit)

भारत में आयकर अधिनियम की धारा 115-ओ (Section 115-O of the Income Tax Act) के तहत घरेलू कम्पनी द्वारा वितरित या भुगतान की गई लाभांश पर कर लगाया जाता है। कम्पनियों

की कुल आय पर आयकर के अतिरिक्त उनकी उस आय पर भी आयकर लगाया जाता है जो हिस्सेदारों में बांटी जाती है। वितरित लाभांश पर 10 प्रतिशत की दर से आयकर लगाया जाता है। कम्पनियों द्वारा दिया जाने वाले लाभांश पर कर का आरोपण वितरण से पूर्व ही किया जाता है और लाभांश प्राप्त करने वाले व्यक्ति की राशि को कर मुक्त रखा जाता है। बजट 2002-03 में नया प्रस्ताव रखा गया जिसके अनुसार वितरण से पूर्व लगने वाले कर को समाप्त कर दिया गया और नया कर लाभांश प्राप्त करने वाले पर लगाया जायेगा। इस नये कर को निवेशकों की कुल आय में लाभांश जोड़कर लगाया जायेगा। किन्तु 2003-04 के बजट में फिर से कम्पनियों द्वारा दिये जाने वाले लाभांश पर कर का आरोपण, वितरण से पूर्व किया जायेगा। 2013-14 बजट के अनुसार लाभांश पर 10 प्रतिशत का अधिभार लगाया जायेगा। धन कर (Wealth Tax) यह कर सम्पत्तियों पूँजी या धन के निवल मूल्य पर वार्षिक रूप से लगने वाला कर है। इस कर को भारत में 1957 से लागू किया गया है।

भारत में धन कर निम्नलिखित पर लागू होता है:

(i) व्यक्तियों पर

(ii) अविभाजित हिन्दू परिवारों पर

(iii) कम्पनियों के निवल धन पर

धन कर आरोही प्रकृति का कर है। वर्ष 1979 तक न्यूनतम छूट की सीमा व्यक्तियों के मामले में 1 लाख रूपये, हिन्दू अविभाजित परिवारों के लिए 2 लाख रूपए और कम्पनियों की स्थिति में 5 लाख रूपए थी। 15 लाख एवं इससे अधिक के मूल्य की सम्पत्तियों पर धन कर 5 प्रतिशत था। 1985-86 के बजट में धन की न्यूनतम सीमा 1 लाख से बढ़ाकर 2.5 लाख कर दी गयी। इसके अलावा धन कर की करों में भी संशोधन किया गया। 2,50,001 रूपए से 10,00,000 रूपए के धन पर 1/2 प्रतिशत का कर लगाया गया। 10,00,000 से 20,00,000 रूपए पर 1 प्रतिशत का कर एवं 20,00,000 रूपए के ऊपर 2 प्रतिशत का कर लगाया गया। वर्ष 1993-94 के बजट प्रस्तावों में रहने का एक घर और उसके हिस्सों को धन कर से मुक्त रखा गया। इसके अलावा सभी प्रकार की प्रतिभूतियों जैसे बैंक जमाएं, दीर्घकालीन जमाए, शेयर्स, बॉण्ड्स एवं डिबेन्चर्स आदि पर से धन कर हटा दिया गया है। केन्द्र सरकार की धन कर से प्राप्त आय वर्ष 2000-2001 में 132 करोड़ रूपए थी जो वर्ष 2008-09 में बढ़कर 325 करोड़ रूपए हो गयी।

धन कर अब भी बना हुआ है। 30 लाख रूपए से अधिक धन पर लगेगा, पर धन की 30 लाख रूपए से अधिक की सीमा निर्धारित करते समय उत्पादक कम्पनियों जैसे बैंक जमा आदि को सम्मिलित नहीं किया जाता। केन्द्रीय बजट 2009-10 से इसकी सीमा 15 लाख रूपया को बढ़ाकर 30 लाख रूपया कर दिया गया है।

व्यय कर (Expenditure Tax)

व्यय कर लोगों द्वारा किये गये उपभोग व्यय (Consumption Expenditure) की धनराशि पर लगाया जाता है। व्यय-कर को 1957 में भारत में वित्त मंत्री **श्री टी.टी. कृष्णामाचारी** ने लागू किया था। इस कर को 1962 में समाप्त कर दिया गया था। 1964 में व्यय कर को पुनः लागू किया गया पर इस बार

1957 की तलना में कर-दर कम थी। करों की दरें खण्ड पद्धति (Slab System) के आधार पर निश्चित की गयी। 1966 में इस कर को फिर से समाप्त कर दिया गया।

व्यय-कर को 1 नवम्बर 1987 में फिर लागू किया गया। इस बार इस कर को होटलों के कमरे और रहने की उन जगहों पर लागू किया गया जिनका किराया प्रतिदिन, प्रति व्यक्ति 400 रूपए था। यह कर 10 प्रतिशत की दर से उन खर्चों पर लगाया गया जो रहने, खाने-पीने तथा अन्य सेवाओं पर होता है। बजट 2002-03 में यह कर केवल कमरे के किराये पर लगाया गया जिसका किराया प्रतिदिन 3000 रूपए या इससे अधिक था। इस कर को अब समाप्त कर दिया गया है।

भारत में केन्द्र सरकार के परोक्ष कर

परोक्ष कर परोक्ष कर वह कर होता है जो कि उस व्यक्ति द्वारा अदा नहीं किया जाता जिस पर वह लगाया जाता है बल्कि किसी समझौते के अधीन आंशिक रूप से अथवा पूर्णतया अन्य किसी व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है। परोक्ष करों की स्थिति में कराघात तथा करभार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है। परोक्ष कर केन्द्र सरकार के राजस्व में सबसे प्रमुख स्रोत है। ऐसी उम्मीद की जाती है कि केन्द्र सरकार को 2013-14 में 65003 करोड़ रूपए का राजस्व परोक्ष करों से प्राप्त होगा।

केन्द्र सरकार के परोक्ष कर

(i) सीमा शुल्क (Custom Duties)

(ii) उत्पाद शुल्क (Excise Duties)

(iii) सेवा कर (Service Tax)

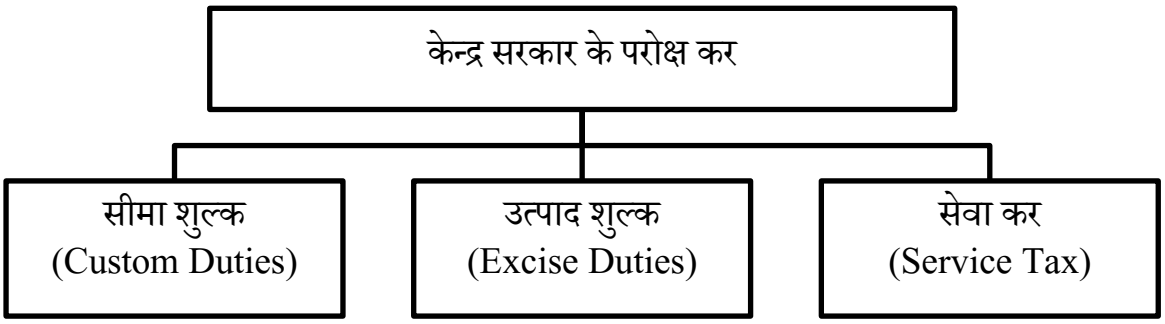

(i) सीमा शुल्क (Custom Duties)

सीमा शुल्क ऐसे शुल्क या कर हैं जो देश से आयातित वस्तुओं (Import) एवं निर्यातित (Export) वस्तुओं पर लगाया जाता है। सीमा शुल्क या तो मूल्यानुसार लगाये जाते हैं या वस्तुओं की मात्रा या वजन के आधार पर लगाये जाते हैं। जब ये शुल्क वस्तुओं की मात्रा या वजन के आधार पर लगाये जाते हैं तो इसे विशिष्ट शुल्क कहते हैं और जब ये शुल्क मूल्यों के आधार पर लगाये जाते हैं तो इन्हें यथामूल्य (Advalorm) कहते हैं।

सीमा शुल्क दो प्रकार के होते हैं, जो इस प्रकार हैं:

(i) आयात शुल्क (Import Duty)

(ii) निर्यात शुल्क (Export Duty)

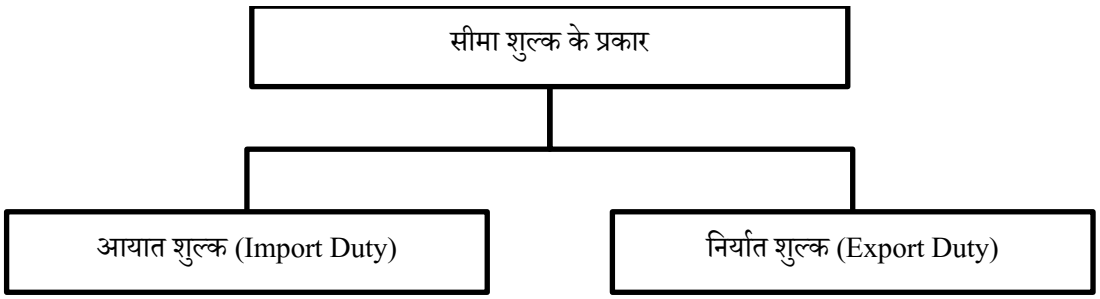

(i) आयात शुल्क (Import Duty) आयात शुल्क उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जो देश की सीमाओं के अन्दर विदेशों से आती है। भारत में आयात शुल्क भारतीय टैरिफ अधिनियम 1934 की पहली और दूसरी अनुसूची में दी गयी दरों के अनुसार लगाये जाते हैं जिनमें समय-समय पर परिवर्तन किया जाता रहता है। आयात शुल्क की दरें विभिन्न अनुसूचियों में रखी गयी है जिससे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के साथ अलग-अलग व्यवहार किया जा सके।

(ii) निर्यात शुल्क (Export Duty) निर्यात शुल्क उन वस्तुओं पर लगाये जाते हैं जो देश की सीमाओं से बाहर विदेशों में जाती हैं। ये शुल्क समय-समय पर विभिन्न वस्तुओं पर लगाये जाते रहे हैं। वर्तमान समय में निर्यात शुल्क न केवल भारतीय सरकार की आय का महत्वपूर्ण स्रोत है बल्कि इसका उपयोग आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए भी किया जाता है निर्यात शुल्क संरक्षण के उद्देश्यों से भी लगाया जाता है, एवं इसका उपयोग देशी कीमतों को स्थिर रखने के लिए भी किया जाता हैं। सीमा शुल्क में परिवर्तन करते हुए वित्त मंत्री ने 2008-09 में सीमा शुल्क की उच्चतम दर को गैर कृषि उत्पादों के लिए 15 पतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया। यही दर 2012-13 में बनी हुई है।

सीमा शुल्क से राजस्व

सरकार ने सीमा शुल्कों से 2009-10 में 82,324 करोड़ रूपए का राजस्व प्राप्त किया जो लगातार बढ़ता रहा है और वर्ष 2012-13 में सीमा शुल्क से प्राप्त राजस्व 186694 करोड़ रूपए हो गया।

सीमा शुल्क का कुल कर राजस्व में अगर हिस्सेदारी प्रतिशत के रूप में देखा जाये तो लगातार बढ़ रहा है। जहाँ वर्ष 2010-11 में सीमा शुल्क का कुल कर राजस्व में हिस्सेदारी 15.4 प्रतिशत थी वह वर्ष 2012-13 में बढ़कर 17.3 प्रतिशत हो गई है।

(ii) उत्पाद शुल्क (Excise Duties)

केन्द्र सरकार उत्पाद शुल्क उन वस्तुओं पर लगाती है जो देश के भीतर उत्पादित होती है। कुछ मादक वस्तुओं जैसे शराब, तम्बाकू तथा गाँजा के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क राज्य सरकारों द्वारा लगाया जाता है न कि केन्द्र सरकार द्वारा।

भारतीय सरकार उत्पाद शुल्क के दर को लगाते समय इस बात पर ध्यान देती है कि यह उत्पादन को हतोत्साहित न करे बल्कि उसे प्रोत्साहित करे। उदाहरण के रूप में खादी एवं हथकरघे से बने कपड़े को उत्पाद शुल्क से मुक्त कर दिया गया है जिससे यह बड़े पैमाने की सूती मिलों के माल से प्रतियोगिता कर सके। जो वस्तुएं समाज में अपेक्षाकृत निर्धन वर्गों द्वारा उपभोग की जाती है उन पर नीची दरों से उत्पाद शुल्क लगाया जाता है।

कुछ वर्षों में उत्पाद शुल्क को इतना विस्तृत कर दिया गया है कि शायद ही कोई ऐसी वस्तु हो जिस पर उत्पाद शुल्क न लगता हो। जिन वस्तुओं पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 (The Central Excises And Salt Act, 1944) के तहत उत्पाद शुल्क लगाया जाता है, उसे मूल उत्पाद शुल्क (basic excise duty) कहते हैं।

उत्पाद शुल्कों से प्राप्त राजस्व

केन्द्रीय सरकार का उत्पाद शुल्कों से प्राप्त आय जो वर्ष 2000-2001 में 68,526 करोड़ रूपए थी वह बढ़ कर वर्ष 2005-2006 में 1,11,226 करोड़ रूपए हुई और वर्ष 2012-13 में यह और बढ़ कर 1,93,694 करोड़ रूपए हो गयी है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि केन्द्र सरकार की आय के सभी मदों में इस मद से प्राप्त आय का महत्वपूर्ण स्थान है।

2012-13 के बजट में उत्पाद शुल्क की चर्चा करते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि 2008-09 में ग्लोबल आर्थिक संकट के सन्दर्भ में गैर पेट्रोलियम वस्तुओं के सम्बन्ध में उत्पाद शुल्क की दर को 14 प्रतिशत से क्रमिक रूप से घटाकर 8 प्रतिशत किया गया था, जिसे 2011-12 में 10 प्रतिशत कर दिया गया, इसे अब बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दिया गया है। जबकि मेरिट रेट को 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 6 प्रतिशत तथा लोअर मेरिट रेट को 1 प्रतिशत से बढ़ाकर 2 प्रतिशत कर दिया गया है। पर कोयला उर्वरक, मोबाइल फोन, बहुमूल्य पत्थर, ज्वेलरी के सम्बन्ध में 1 प्रतिशत का लोअर रेट बना रहेगा। बड़ी कारों के सम्बन्ध में बेसिक ड्यूटी को 22 प्रतिशत से बढ़ाकर 24 प्रतिशत तथा ऐसी कारों के सम्बन्ध में जिसमें ड्यूटी 22 प्रतिशत + 15000 रूपया थी, उसे बढ़ाकर 27 प्रतिशत कर दिया गया था। वित्त मंत्री ने केन्द्रीय बजट 2012-13 में कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को जो संकट की स्थिति से गुजर रहे थे, उन्हें सीमा शुल्क तथा उत्पाद शुल्क सम्बन्धी कुछ रियायतें दी जिससे उनके निवेश की मात्रा में वृद्धि हो।

(iii) सेवा कर (Service Tax)

सेवाकर केन्द्रीय कर राजस्व का एक महत्वपूर्ण कर है। कर आधार को और विस्तृत करने के लिए चैलैया समिति की सिफारिशों के आधार पर सेवाकर को 1994-95 के बजट में शुरू किया गया। इस वर्ष तीन सेवाओं जैसे टेलीफोन, सामान्य बीमा तथा स्टाक ब्रोकर्स पर 5 प्रतिशत की दर पर सेवाकर लगाया गया। वर्ष 1996-97 के बजट में पेजिंग, कुरियर तथा विज्ञापन सेवाओं को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया।

प्रत्येक बजट में करारोपित सेवाओं का दायरा बढ़ता गया और वर्ष 2011-12 में 119 सेवाओं पर कर लगाया गया। वर्ष 2012-13 के बजट में 17 सेवाओं को चिन्हित किया गया जिन पर सेवा कर नहीं लगेगा बाकी सभी सेवाओं पर सेवा कर लगता है। वर्ष 2013-14 के बजट में इन 17 सेवाओं में 2 और सेवाओं को जोड़ दिया गया, जिन पर सेवा कर लागू नहीं होगा। वर्तमान में सेवाकर का दर 12 प्रतिशत है।

सेवाकर संघ सूची में आता है। भारतीय संविधान के 88वें संशोधन के अनुसार सेवाओं पर कर भारत सरकार द्वारा लगाये जायेंगे तथा पार्लियामेन्ट द्वारा पारित कानून के अन्तर्गत भारत सरकार तथा राज्यों के बीच बांटे जायेंगे।

सेवाकर से राजस्व

वर्तमान में कुल राजस्व में इसकी हिस्सेदारी 115 प्रतिशत से अधिक है। वर्ष 2000-01 में सेवाकर से प्राप्त राजस्व 2,614 करोड़ था जो वर्ष 2013-14 के बजट में बढ़कर 1,80,141 करोड़ रूपए हो गया है।

सेवा करारोपण से प्राप्त राजस्व की सेवाओं के जी.डी.पी. में योगदान के अनुपात को दृष्टि में रखते हुए, उससे प्राप्त राजस्व को बढ़ाने के लिए कर आधार को और अधिक बढ़ाने को दृष्टि में रखते हुए 2012-13 में वित्त मंत्री ने सेवाओं के करारोपण के सम्बन्ध में सर्वथा नया दृष्टिकोण रखा। इसके सम्बन्ध में तीन तथ्य उल्लेखनीय हैं:

(i) निगेटिव या प्रतिबन्धात्मक सूची में शामिल 17 सेवाओं को छोड़कर सभी सेवाओं को कर के दायरे में रखने का प्रस्ताव किया।

(ii) सेवाकर की दर 2012-13 में 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दी गयी है।

(iii) 2012-13 सेवाकर से प्रत्याशित राजस्व प्राप्ति 124000 करोड़ रूपए होगी जबकि 2011-12 में इससे बजट की गयी आय 95000 करोड़ रूपया (संशोधित अनुमान 71016 करोड़ रूपया) थी। इस प्रकार सेवाओं से 18660 करोड़ रूपए अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा।

प्रतिबन्धात्मक सूची में 17 सेवायें शामिल हैं जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कार्य प्रणालियों, मानकों तथा अपनी सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं संघीय ढांचों के स्वरूप आदि को दृष्टि में रखते हुए तैयार किया गया है।

निगेटिव सूची में आने वाली प्रमुख सेवायें इस प्रकार हैं: फाइनेन्स बिल 2012-13 के 66D में सेवाओं की निगेटिव लिस्ट दी गयी है जो इस प्रकार है:

1. सरकार या एक स्थानीय अधिकारी द्वारा की गयी सेवायें जो निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा करती हैं (बिल में गिनायी गयी 4 सेवाओं को छोड़कर)।
2. रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा दी गयी सेवायें।
3. भारत में स्थित विदेशी राजनयिक मिशन द्वारा की गयी सेवायें।
4. कृषि से सम्बन्धित कुछ सेवायें जैसे कृषि उत्पादन क्रिया से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित सेवायें, कृषि श्रमिक की पूर्ति से सम्बन्धित सेवायें, एग्रोमशीन या संयंत्रों के प्रयोग सेप्राप्त किराया, कृषि विस्तार सेवायें आदि।
5. वस्तुओं की ट्रेडिंग।
6. वस्तुओं के विनिर्माण या उत्पादन से सम्बन्धित प्रक्रिया।
7. रेडियो अथवा टेलीविजन में विज्ञापन छोड़कर अन्य विज्ञापन के लिए जगह या समय बेचना।
8. टोल टैक्स के भुगतान के बाद किसी भी सड़क या पुल तक पहुंच द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा।
9. बाजी लगाना, जुआ तथा लॉटरी।
10. किसी मनोरंजन देने वाली जगह या सुविधा में प्रविष्टि।
11. किसी बिजली वितरक सेवा उपयोगी संस्था द्वारा बिजली के ट्रान्समिशन या वितरण सम्बन्धी सेवा।
12. निम्नांकित सेवायें
    (क) प्रीस्कूल शिक्षा तथा हायर सेकेण्ड्री स्कूल
    (ख) व्यावसायिक शिक्षण पाठ्यक्रम के भाग के रूप में शिक्षा।
    (ग) कानून द्वारा मान्यता प्राप्त कोई क्वालीफिकेशन प्राप्त करने से सम्बन्धी सेवा।
13. आवास के लिए प्रयुक्त आवासीय भवन को किराए पर प्रयोग में लाना।
14. ब्याज या बट्टा पर जमा या उधार देने सम्बन्धी सेवा तथा विदेशी करेन्सी के विनिमय से जुड़ी सेवा।
15. यात्रियों के ट्रान्सपोर्टेशन से सम्बन्धित सेवायें।

16. (क) वस्तुओं के ट्रान्सपोर्टेशन से सम्बन्धित सेवा, जो सड़क के रास्ते से हो, पर किसी यातायात एजेन्सी या कोरियर द्वारा की गयी सेवा इसमें सम्मिलित नहीं होगी।
    (ख) एयर क्राफ्ट या जलमार्ग से ट्रान्सपोर्टेशन।
17. अन्तिम संस्कार, गाढ़ने या जलाने या मृतक हेतु यातायात से सम्बन्धित सेवा। पर बजट के बाद इस सूची को और बढ़ाकर 38 कर दिया गया है। इस समय कुल 119 सेवायें कर दायरे में हैं। वित्त मंत्री ने प्रतिबन्धात्मक सूची के अतिरिक्त कुछ अन्य सेवाओं की भी बात की जिन्हें सेवाकर में छूट प्राप्त है। इनमें हेल्थ केयर, धर्मार्थ सेवायें, स्वतंत्र पत्रकारों, खेल हस्तियों द्वारा मुहैया कराने वाली सेवायें शामिल हैं। वित्त मंत्री ने फिल्म उद्योग को भी सिनेमोटोग्राफिक फिल्मों की रिकार्डिंग से सम्बद्ध कापीराइट पर कर छूट की व्यवस्था की है। जीवन बीमा के पहले वर्ष के प्रीमियम पर 3 प्रतिशत तथा बाद के वर्षों में प्रीमियम पर 1.5 प्रतिशत की दर से कर लगाने की बात कहीं। देश में घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय यात्रा के लिए विमान यात्रा पर 12 प्रतिशत की दर से मूल्यानुसार कर लगेगा। पर इकानॉमी श्रेणी में यात्रा करने पर 60 प्रतिशत छूट मिलेगी।

8.3.2 केन्द्र सरकार का गैर कर (Non-Tax) राजस्व-

केन्द्रीय सरकार के कर भिन्न राजस्व में निम्नलिखित मदें शामिल हैं:

ब्याज प्राप्तियाँ

1) राज्य तथा संघीय क्षेत्रों को दिये गये ऋणों से प्राप्त ब्याज
2) रेलवे तथा टेलीकम्यूनिकेशन से ब्याज प्राप्ति
3) सार्वजनिक उद्यमों, पोर्ट ट्रस्ट, सहकारी समितियों तथा सरकारी कर्मचारियों से प्राप्त ब्याज।

(ख) लाभ तथा लाभांश

1) RBI से लाभ,
2) राष्ट्रीयकृत बैंक, LIC, GIC, IDBI तथा सार्वजनिक उद्यमों से प्राप्त आय ।

(ग) अन्य गैर कर प्राप्तियाँ

1) राजकोषीय सेवाओं से प्राप्ति जैसे आर्थिक अपराधों के लिए जुर्माना तथा मिन्ट से आय या सिनोरेज।
2) अन्य सामान्य सेवाओं से प्राप्तियाँ जैसे संघ लोक सेवाओं आयोग, राज्यों को दी गयी पुलिस बल, फार्म बेचने से आय, अंकेक्षण फीस (audit fees), पासपोर्ट, वीजा आदि से आय ।
3) सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं से आय जैसे आकाशवाणी तथा दूरदर्शन की व्यापारिक सेवाओं से आय, म्यूजियम आदि से प्रवेश शुल्क, अस्पताल आदि से आय।
4) आर्थिक सेवाओं से आय जैसे पशुपालन, डेयरी, मत्स्य पालन, यातायात तथा संवहन पर्यटन, सड़क, पुल, पोर्ट, आयात तथा निर्यात लाइसेन्स फीस एवं विदेशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से प्राप्त अनुदान।

केन्द्र सरकार की गैर कर राजस्व प्राप्तियां जो 1990-91 में 11948.27 करोड़ रूपए थी। 2005-06 में 77738.75 करोड़ रूपये, 2008-09 में 93018.59 करोड़ रूपये, 2009-10 में 135805.7 करोड़ रूपए तथा 2010-11 में

220148 करोड़ रूपए हो गयी। 2009-10 के दौरान गैर कर राजस्व प्राप्तियों के कुछ प्रमुख स्रोत थे आर्थिक सेवायें (53229 करोड़ रूपया) सार्वजनिक उद्यमों से आय (52743.52 करोड़ रूपए जो 1990-91 में 1066.31 करोड़ रूपए था) ब्याज प्राप्तियां 19176.55 करोड़ रूपए।

8.4 राजस्व प्राप्तियों में तेज वृद्धि के कारण

इधर हाल के वर्षों में भारत में केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों में तेजी से वृद्धि हुई, यह वृद्धि राजस्व प्राप्तियों की निरपेक्ष मात्रा में तथा साथ ही जी.डी.पी. के अनुपात के रूप में वृद्धि देखी गयी है। इसके सम्बन्ध में निम्नांकित कारणों को रेखांकित किया जा सकता है।

(i) राष्ट्रीय आय तथा राष्ट्रीय उत्पाद में ऊँची वृद्धि दर- राष्ट्रीय आय या राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों के आधार को प्रभावित करती है, इसीलिए जैसा आप बजट अनुमान में पाते हैं, सभी प्रकार के करों से अनुमानित प्राप्तियों का आकलन राष्ट्रीय आय की मात्रा के आधार पर किया जाता है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान अर्थव्यवस्था की विकास दर 9 प्रतिशत के आस-पास रही जिसके परिणामस्वरूप कुल राजस्व प्राप्तियां जो 1990-91 में 54995 करोड़ रूपए थी बढ़कर 2011-12 में 789892 करोड़ रूपए हो गयी।

(ii) कर आधार में विस्तार– कर ढांचे में कुछ नये करों के समाविष्ट होने के कारण कर आधार विस्तृत हुआ है तथा कर से राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि हुई है। इस दृष्टि में दो करों का उल्लेख आवश्यक है – फ्रिन्ज बेनफिट टैक्स तथा सेवा कर। 13वाँ वित्त आयोग यह स्वीकार करता है कि *'फ्रिन्ज बेनफिट टैक्स (fringe benefit tax)'* के लाग होने के कारण विशेष रूप से 2004-05 के बाद केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्ति में वृद्धि हुई है। 1994-95 में शुरू किए गये सेवा करारोपण के कारण सरकार की परोक्ष करों से प्राप्ति में बहुत अधिक वृद्धि हुई है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सेवाकरों से केन्द्र सरकार को 2010-11 में 69400 करोड़ रूपए की प्राप्ति हुयी जबकि 2011-12 में इसका अनुमानतः प्राप्ति 82000 करोड़ रूपए की है। सेवाकर का कुल राजस्व में हिस्सा जो 2003-04 में 3.1 प्रतिशत था 2008-09 में 10.4 प्रतिशत तथा 2010-11 तथा 2011-12 में 8.8 प्रतिशत रहा।

(iii) करों की उच्चतम दर में कमी- ऐसा माना जाता है कि जैसा आर्ट लैफर ने लैफर वक्र के माध्यम से प्रतिपादित किया कि कर की नीची दर पर कर से मिलने वाला राजस्व अधिक होगा। कर की दर में कमी के कारण कर अपवंचन में कमी होगी क्योंकि ऊँची कर दर पर कर अपवंचन (tax evasion) अधिक लाभ देने वाला होगा तथा कर वसूली में वृद्धि होगी। इतना ही नहीं कर की नीची दर के कारण अर्थव्यवस्था में विनियोग तथा उत्पादन बढ़ेगा जिसके कारण कर की नीची दर के बावजूद भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार के करों से राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि होगी। उल्लेखनीय है कि 1990-91 आय कर तथा निगम कर तथा साथ ही सीमा शुल्क तथा उत्पादन शुल्क की सीमान्त दरों में सरकार ने बहुत अधिक कमी लायी है।

(iv) टैक्स कम्प्लायेन्स (कर दायित्व को पूरा करने) में सुधार– 13वें वित्त आयोग ने यह स्पष्ट किया कि कर राजस्व की उत्प्लवता में जो इधर हाल के वर्षों में वृद्धि हुई वह बहुत अधिक सीमा तक टैक्स

अनुपालन (tax compliance) में समुन्नती (advancement) के कारण हुआ है जो TIN (टैक्स इनफार्मेशन नेटवर्क) के लागू करने तथा इसके NSDL द्वारा क्रियान्वयन के कारण हुआ है। 2004 में जब TIN शुरू हुआ तब से टैक्स कत्प्लायेन्स में वृद्धि हुई फलस्वरूप राजस्व में वृद्धि हुई है।

(v) कर प्रणाली में सुधार तथा इसका विवेकीकरण- दोनों ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कर प्रणाली में सुधार, कर ढांचे के विवेकीकरण तथा सरलीकरण, करदाता मैत्री वातावरण के सृजन आदि के कारण कर लोच तथा कर उत्प्लवता में वृद्धि हुई है। जिसके फलस्वरूप कर राजस्व में वृद्धि हुई है।

(vi) गैर कर राजस्व में वृद्धि– ब्याज प्राप्तियां, सार्वजनिक उद्यमों जिनमें हम बैंकों को भी सम्मिलित करते हैं तथा आर्थिक सेवाओं से प्राप्तियाँ केन्द्र सरकार के गैर कर राजस्व के प्रमख स्रोत हैं। पर इधर हाल के वर्षों में विशेष रूप से 2007-08 के बाद निरपेक्ष मात्रा तथा जी.डी.पी. अनुपात के रूप में इसमें वृद्धि हुई है। गैर कर राजस्व में वृद्धि के तीन कारण प्रमुख रहे हैं- सार्वजनिक उद्यमों की कुशलता तथा लाभदेयता में वृद्धि, आर्थिक सेवाओं से प्राप्तियों में वृद्धि तथा 2जी तथा 3जी स्पेक्ट्रम से प्राप्ति।

8.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1) निम्न में से कौन से मद से आर्थिक असमानता घटती है

(अ) सम्पत्ति कर (ब)धन कर

(स) पूँजी कर (द)आयकर

(2) केन्द्र सरकार का परोक्ष कर है

(अ) व्यय कर (ब) पूँजी लाभ कर

(स) आय कर (द) सीमा शुल्क

(3)केन्द्र सरकार का प्रत्यक्ष कर है

(अ) उत्पाद शुल्क (ब) आयात शुल्क

(स) निगम कर (द) सेवा कर

रिक्त स्थान भरो

1) ब्याज प्राप्तियां ..... राजस्व प्राप्तियों के अन्तर्गत आता है।

2) नब्बे के दशक के बाद से राजस्व प्राप्तियों तथा कर उत्प्लवता में ..... हुई है।

3) विविध करों के मिश्रण या संरचना को ..... कहते हैं।

4) प्रत्यक्ष कर का ..... नहीं किया जा सकता।

5) भारत में आयकर सर्वप्रथम ..... में लागू हुआ।

6) ..... आय पर आयकर लगाया जाता है।

7) करदाता की कर देय आय पर जो कर लगाया जाता है उसे ..... कहते हैं।

8) किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्र सरकार आयकर पर ..... लगाती है।

9) उपहार अब उपहार कर के अन्तर्गत नहीं ..... के अन्तर्गत आता है।

10) धन कर को भारत में ..... लागू किया गया।

11) जब सीमा शुल्क वस्तुओं की मात्रा या वजन के आधार पर लगाये जाते हैं तो उसे ..... कर कहते हैं।

12) सीमा शुल्क दो प्रकार के होते हैं ..... शुल्क एवं ..... शुल्क।

8.6 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ गये होंगे कि केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियां कर एवं गैर कर स्रोतों से अर्जित होती है। कर प्राप्तियां प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के द्वारा होती है और उसके प्रकार की विस्तृत चर्चा की गई। लोक वित्त के इतिहास में पहली बार 2007-08 में प्रत्यक्ष करों से वसूली परोक्ष करों की वसूली से अधिक हुयी। 1990-91 से अब तक दोनों ही कर प्राप्तियों तथा गैर प्राप्तियों तथा कर उत्प्लवता में तेजी से वृद्धि हुई है। इकाई के अन्त में हमने राजस्व प्राप्तियों में तेज वृद्धि के कारणों की पड़ताल की।

8.7 शब्दावली (Glossary)

- **प्रत्यक्ष कर** – जिस पर कर देने की की कानूनी जिम्मेदारी हो वही कर का मौद्रिक भार वहन करे।
- **अप्रत्यक्ष कर** – जिस पर कानूनी जिम्मेदारी हो कर देने की यदि वह उसके मौद्रिक भार को आंशिक या पूर्ण रूप से दूसरे पर डाल दे।
- **कर** – लोगों द्वारा सरकार को दिया जाने वाला अनिवार्य अंशदान जिसके बदले में उसे प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता।
- **उत्पाद शुल्क** – देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers forPractice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) द (2) द (3) स

रिक्त स्थान भरो

(1) गैर कर	(2) तेज वृद्धि	(3) कर ढांचा	(4) अन्तरण
(5)1860	(6)निबल	(7)अधिभार	(8)उपकर
(9)आयकर	(10)1957	(11)विशिष्ट	(12) आयात, निर्यात

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- लाल एस एन एवं एस के लाल *लोकवित्त तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार* (2013) शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- त्यागी बी पी *लोकवित्त* (2014) जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ।
- भाटिया एच एल *लोकवित्त* विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा0 लि0 |

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- सिंह एस. के., *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त* (2013) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- पन्त जे. सी., *लोक अर्थशास्त्र* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
- *Economic Surveys*: various issues.

8.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. भारतीय कर प्रणाली की मुख्य विशेषताओं पर एक व्याख्यात्मक नोट लिखें।
2. आयकर व्यवस्था पर समीक्षात्मक टिप्पणी करें।
3. निगम कर से आप क्या समझते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसकी व्याख्या कीजिए।
4. सेवा कर किसे कहते हैं? भारत में सेवा कर की स्थिति का वर्णन करें।
5. सीमा शुल्क क्या है? भारतीय कर राजस्व में सीमा करों का महत्व एवं स्थिति बताइये।
6. राजस्व प्राप्तियों में तेज वृद्धि के कारणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई-9 राज्य और स्थानीय निकाय की आय के स्रोत
(Sources of Income of State and Local Bodies)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 राज्यों की आय के साधन

9.3.1 कर आय

9.3.2 गैर कर आय के साधन

9.4 स्थानीय निकाय के आय के स्रोत

9.4.1 नगर पालिकाओं के आय के स्रोत

9.4.2 नगर निगम के आय के स्रोत

9.4.3 ग्राम पंचायतों के वित्त के साधन

9.4.4 पंचायत समितियों के वित्त

9.4.5 जिला परिषद के वित्त

9.5 बारहवाँ वित्त आयोग एवं स्थानीय संस्थाएं

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई के पहले आप ने केन्द्र सरकार की आय के स्रोत (कर एवं गैर कर राजस्व) का अध्ययन किया। इस इकाई में हम राज्यों और स्थानीय निकायों के आय के स्रोतों के बारे में जानेंगे क्योंकि भारत में संघीय वित्त व्यवस्था है। जिसमें केन्द्रीय सरकार की वित्त व्यवस्था के साथ ही राज्यों की वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। केन्द्र सरकार की भाँति, राज्य सरकारों के बजटों को पूँजी तथा राजस्व खातों में बांटी जाती है। पूँजी खाते में उन मदों को लिया जाता है जिनसे सरकार वित्तीय परिसम्पत्तियों तथा देनदारियों का लेन-देन करती हैं तथा राजस्व खाता सामान्य प्रशासनिक गतिविधियों को दिखाता है। राज्य सरकारों के पास आय के अनेक साधन है, किन्तु वे संघ सरकार के समान लोचपूर्ण नहीं हैं इसलिए राज्यों को आय के लिए संघ सरकार पर भी निर्भर रहना पड़ता है।

इस इकाई में हम स्थानीय वित्त के साधनों का भी विवेचन करेंगे। कुछ आवश्यकताएं स्थानीय प्रकृति की होती हैं जिनकी पूर्ति सामान्यता स्थानीय शासन द्वारा होती है और उसके संचालन के लिए वित्त की सक्षम व्यवस्था होना जरूरी है इसलिए स्थानीय सरकारों को कुछ कर तथा आय के कुछ अन्य साधन सौंपे जाते हैं।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ इस इकाई में हम राज्य सरकारों के आय के स्रोतों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ✓ इसके उपरान्त हम स्थानीय सरकारों के वित्त साधनों की भी चर्चा करेंगे।

9.3 राज्यों की आय के साधन

इसे हम दो भागों में विभक्त करेंगे- कर राजस्व तथा गैर कर राजस्व ।

(1) कर राजस्व- भारतीय संविधान के अन्तर्गत कुछ कर राज्य सरकारें लगायेंगी, वसूल करेंगी तथा उनका उपयोग भी स्वयं करेंगी। इसके अन्तर्गत भू-राजस्व या मालगुजारी, कृषि आय पर कर, कृषि भूमि के सम्बन्ध में उत्तराधिकार कर तथा अस्ति कर, भूमि भवनों व खनिज अधिकारों पर कर तथा मद्य (शराब), अफीम, भारतीय भांग व मादक औषधियों तथा मादक पदार्थों के उत्पादन व विनिर्माण पर उत्पादन कर, मार्गों पर कर, बिजली पर कर, वाहनों, जानवरों अथवा नावों पर कर, समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर, मनोरंजन कर, विलासता की वस्तुओं पर कर, जिसमें बाजी तथा जुआ पर कर भी शामिल है, स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन फीस आदि।

(2) गैर कर राजस्व- इसमें प्रशासनिक प्राप्तियां, सार्वजनिक व्यवसायों से आय, वन, सिंचाई, बिजली, जल एवं स्थल परिवहन, उद्योग आदि से प्राप्त होने वाली आय मुख्य है।

9.3.1 कर आय

(1) भू-राजस्व- यह राज्य सरकारों की आय का एक परम्परागत साधन है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व इस साधन से राज्य सरकारें अपने आयों का लगभग 50 प्रतिशत भाग प्राप्त करती थी। यह कर भू-स्वामियों को अपनी भूमि के अनुसार प्रति वर्ष देना पड़ता था। राज्य प्रशासक भूमि पर अधिक कर लगाने के इच्छुक नहीं रहे हैं, सन 1951-52 में भू राजस्व से केवल 48 करोड़ रूपए प्राप्त हुए थे जबकि कृषि क्षेत्र का उत्पादन चालू कीमतों पर

4800 करोड़ रूपए था। देश के कुल उत्पादन के मूल्य का यह 10 प्रतिशत था। आगे चलकर भू राजस्व आय बढ़कर 110 करोड़ रूपए हो गई, जबकि कृषि क्षेत्र की आय 15000 करोड़ रूपए हो गयी। सन् 1971-72 में भू राजस्व से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त आय 1 प्रतिशत से भी काफी कम थी। सन 1951 से 1971 के बीच कृषि उपज के मूल्य में 10200 करोड़ रूपए की अतिरिक्त वृद्धि हुई जिसमें से राज्य कुल 60 करोड़ रूपए की अतिरिक्त भूराजस्व के रूप में एकत्र कर पाए। भू राजस्व से प्राप्तियां तो बढ़ी हैं पर कुल करों से प्राप्त आय में भू राजस्व का भाग घटा है। भू-राजस्व में वृद्धि खासतौर से द्वितीय व तृतीय योजना अवधि में निम्नलिखित कारण से हुई।

(1) भू राजस्व में सीधी वृद्धि

(2) अधिभार लगाना

(3) स्थानीय निकायों द्वारा या उनके लिए भू राजस्व पर उपकर लगाना

(4) वाणिज्यिक फसलों पर कर

(5) सिंचाई अथवा पान की दरों में वृद्धि

(6) भू राजस्व के पुनर्निधारण तथा बिचौलियों की समाप्ति के कारण होने वाली वृद्धि आदि।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि कर के रूप में भू राजस्व का निर्धारण समुचित रूप से नहीं किया गया है। यह विभिन्न आकार के जोतों पर समान रूप से पड़ता है और अवरोही प्रभाव डालता है। यह बेलोच तथा अनुत्पादक प्रकृति का है और राज्यों की कुल कर आय में इसका अंशदान बहुत कम है।

(2) कृषि आयकर- भारत में कृषि आय कर सर्वप्रथम सन 1860 में लगाया गया था। उस समय यह सामान्य आयकर का ही एक भाग था, लेकिन कुछ समय के बाद कृषि आयकर हटा लिया गया। सन 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत कृषि आय कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया। परिणामतः सन 1944 में बंगाल में और सन 1947 में उडीसा में यह कर लगाया गया। बिहार भारत में सबसे पहला राज्य था जिसने कृषि आमदनियों पर कर लगाया क्योंकि वहां स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा लागू थी और भू राजस्व से प्राप्त होने वाली आय कम तथा बेलोच थी। भारत में अधिकांश राज्यों में कृषि आयकर लागू कर दिया गया है किन्तु इसमें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। **कृषि धन तथा आय कराधान समिति** के अनुसार ***"केरल तथा असम राज्यों को ही ऐसा उल्लेखनीय अपवाद माना जा सकता है कि जहाँ तक कृषि आयकर का राजस्व जो कि अधिकांशतः बागानों की आय से प्राप्त होता है, भू राजस्व से अधिक है। कुछ अन्य राज्यों में भी कृषि आयकर सरकारी आय का प्रमुख स्रोत है जैसे कर्नाटक, तमिलनाडू और पश्चिम बंगाल। कृषि आयकर से होने वाली प्राप्ति का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग इन्हीं पाँच राज्यों से प्राप्त होता है। फसल उपकरों का अंशदान भी केवल कुछ ही राज्यों में उल्लेखनीय है और उनमें भी इसकी प्राप्तियों का बड़ा भाग गन्ने पर लगाये गये उपकरों से प्राप्त होता है।"*** इसके अलावा कृषि आयकर की दरें काफी नीची रही है। सन 1951-52 में कृषि आयकर से 4.03 करोड़ रूपए आय प्राप्त हुई जो 2006-07 में 22 करोड़ रूपए और 2010-11 में 81 करोड़ रूपए हो गयी।

(3) स्टाम्प शुल्क, न्यायालय फीस तथा रजिस्ट्रेशन- राज्य सरकार स्टाम्प शुल्क न्यायिक तथा गैर न्यायिक दो प्रकार से लगाती है। न्यायिक स्टाम्प शुल्क सन 1870 के न्यायालय शुल्क अधिनियम के अन्तर्गत लगाए

जाते हैं। इन शुल्कों को वे लोग देते हैं जिन्हें कानूनी अदालतों तथा सरकारी कार्यालयों से व्यवहार करना होता है। इसे **न्यायालय शुल्क** कहते हैं। गैर न्यायिक स्टाम्प शुल्कों का नियमन भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 द्वारा किया जाता है। विनियम पत्रों, चेक, उधार पत्र, प्रतिज्ञा-पत्र तथा रसीदों आदि पर लगने वाले स्टाम्प शुल्क केन्द्र की विधायी क्षमता के अन्तर्गत आते हैं परन्तु उनकी प्राप्तियों का संग्रह राज्यों द्वारा किया जाता है और राज्यों द्वारा ही वे परस्पर बांट ली जाती है। अचल सम्पत्ति के सौदों के साथ-साथ अन्य मदों पर काम आने वाले स्टाम्प शुल्क राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाते हैं। कुछ स्टाम्प शुल्कों की दरें निश्चित होती हैं जबकि कुछ अन्य दरें मूल्यवार होती हैं। तमिलनाडु जैसे कुछ राज्य अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण पर लगने वाले स्टाम्प शुल्क का अधिभार भी लगाते हैं जिनका संग्रह राज्य द्वारा किया जाता है और फिर वे स्थानीय निकायों को सौंप दिए जाते हैं।

स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन से होने वाली सरकारी आय में कई कारणों से अच्छी वृद्धि दिख रही है। ये कारण है बढ़ती हुई आर्थिक क्रियाएं, कीमतों तथा भूमि के सौंदों का बढ़ता हुआ स्तर तथा भूमि सुधार। राज्यों ने समय-समय पर स्टाम्प शुल्कों की दरों में वृद्धि की है। ये कर सामर्थ्य सिद्धान्त की कसौटी पर खरे नहीं हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध करदाता की सामर्थ्य से नहीं होता है। स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन से राजस्व 1951-52 में 55.06 करोड़ रूपए था जो 2006-07 में 31680 करोड़ रूपए हो गया जो सन् 2010-11 में 46039 करोड़ रूपया अनुमानित था।

(4) राज्य उत्पादन शुल्क- भारतीय संविधान के अनुसार राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि राज्य में बनी हुई या पैदा की गई निम्न वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा साथ ही भारत में कहीं अन्यत्र निर्मित या पैदा की गई इन्हीं वस्तुओं पर उतनी ही दर से या उससे नीची दर से प्रतिकर लगा सकते हैं।

(क) मानवीय उपभोग के लिए काम में आने वाली शराब

(ख) अफीम, भारतीय भांग व नशीली दवायें तथा नशीले पदार्थ (चिकित्सा एवं श्रृंगार सम्बन्धी सामग्रियों को छोड़कर जिनमें इन पदार्थों का प्रयोग हुआ हो)

ये कर एक तरह से प्रतिबंधात्मक उत्पादन शुल्क है जिसका मुख्य उद्देश्य मादक पेय पदार्थों व औषधियों के उपभोग को कम तथा नियमित करना है। ये कर राज्यों की आय के महत्वपूर्ण स्रोत साबित हुए हैं।

उत्पादन शुल्कों की मदों में शामिल हैं - आयात की गई शराब की बिक्री के लिए लाइसेंस फीस से होने वाली आय, ऐसी शराब को बोतलों में भरने या समान्तर क्रियाओं के लिए लाइसेंस फीस तथा भारत में बनी विदेशी शराब, देश में बनी स्प्रिट, किण्वित शराब (fermented wine), विक्रित की गई स्प्रिट तथा चिकित्सा के लिए काम में लाई जाने वाली शराब, मादक पदार्थ व औषधियां जैसे भांग, गांजा तथा अफीम। ये पदार्थ सरकारी मद्यशालाओं व कारखानों में निर्मित किये जाते हैं और यदि कोई व्यक्ति निजी क्षेत्रों में इन वस्तुओं का निर्माण करना चाहता है तो उसे इसके लिए लाइसेंस लेना होता है। गुजरात और तमिलनाडु को छोड़कर जहाँ कि पूर्ण मद्य निषेध लागू है, अधिकांश राज्यों में उत्पादन शुल्क राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। कुछ राज्यों में उत्पादन शुल्क से प्राप्तियां भू-राजस्व की आय से अधिक हैं।

(5) बिक्री कर- भारत में सर्वप्रथम 1938 में मध्य प्रदेश द्वारा बिक्री कर लगाया गया। 1939 में मद्रास ने भी बिक्री कर लगाया और उसी के साथ अन्य प्रान्तों ने भी इसे अपनाया। वर्तमान समय में बिक्री कर राज्य

सरकारों की आय का प्रमुख साधन है। संविधान के अनुसार समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं की बिक्री पर बिक्री कर लगाने का पूर्ण अधिकार राज्य सरकारों का है। केन्द्रीय बिक्री कर कानून 1956 के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय व्यापार पर केन्द्र सरकार को कर लगाने का अधिकार है परन्तु राज्य के अन्तर्गत जिन वस्तुओं का व्यापार होता है उन वस्तुओं पर राज्य सरकार ही कर लगायेगी। केन्द्रीय बिक्री कर का प्रशासन संघ सरकार के उत्तरदायित्व पर राज्यों द्वारा किया जाता है और उसकी प्राप्तियां वही राज्य रख लेते हैं जो इनका संग्रह करते हैं। राजस्व के स्रोत के रूप में इस कर में लोचशीलता व तरलता के लक्षण पाये जाते हैं। 1951-52 में राज्य सरकारों की सामान्य बिक्री कर से आय केवल 54.40 करोड़ रूपए थी जो सन 2006-07 160932 करोड़ रूपए हो गयी जो 2010-11 में 264848 करोड़ रूपए अनुमानित थी। राज्य सरकारों की अपनी कर आगम में बिक्री कर का भाग लगभग 62 प्रतिशत है।

(6) मोटर वाहन कर- संविधान के अन्तर्गत राज्य सूची की प्रविष्टि 57 द्वारा वाहनों पर कर लगाने की व्यवस्था है चाहे वह यंत्रचालित हों या अन्य प्रकार के। भारत में सभी राज्य मोटर वाहन कर लगाते हैं यद्यपि सभी राज्यों में इसकी दरें भिन्न-भिन्न हैं। राज्य स्तर पर जो मोटर वाहन कर लगाये जाते हैं, वे तीन प्रकार के होते हैं- (अ) मोटर वाहन कर, (ब) माल तथा यात्रियों पर कर और (स) स्थानीय कर जैसे चुंगी, पथ कर व पहिया कर। राज्यों ने मोटर वाहनों से सम्बन्धित इन तीनों ही प्रकार के करों का आश्रय अधिकाधिक मात्रा में लिया है। राजस्व का यह स्रोत राज्यों के लिए प्रलोभन का विषय रहा है। इसकी लोचशीलता अभी तक अच्छी रही है और इसे वसूलना भी सरल है। मोटर वाहन कर से राजस्व 1950-51 में 10.1 करोड़ रूपए था जो 2004-05 में 1109.13 करोड़ रूपए हो गया।

(7) मनोरंजन कर– मनोरंजन कर सर्वप्रथम बंगाल में सन 1922 में लगाया गया था। इसके तुरन्त बाद मुम्बई में लगाया गया। उत्तर प्रदेश में यह 1938-39 में लगाया गया। वर्तमान समय में यह भारत के सभी प्रदेशों में लगाया जाता है। यह कर सिनेमा, ड्रामा, कुश्ती, सरकस, स्पोर्ट्स आदि पर लगाया जाता है। यह प्रबन्धकों से वसूला जाता है पर वह उसे उपभोक्ता पर टाल कर वसूल लेता है। अतः इसका अन्तिम भार उपभोक्ता को वहन करना पड़ता है। चैरिटी शो से सम्बन्धित कार्यक्रमों को कर से मुक्त रखा जाता है। प्रत्येक राज्य में मनोरंजन कर से एकत्रित धनराशि स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दी जाती है। मनोरंजन कर से प्राप्त राजस्व सन 1950-51 में 6.4 करोड़ रूपए था जो सन 2006-07 में 899 करोड़ रूपए हो गया।

(8) शहरी चल सम्पत्तियों पर कर- जब भूमि का उपयोग गैर-कृषि कार्यों हेतु होता है, जैसे आवासीय भवन बनाने के लिए या कोई औद्योगिक संस्थान कायम करने के लिए, तो भूमि के मूल्य में असाधारण वृद्धि होने की वजह से अनुपार्जित लाभ प्राप्त होता है। ऐसा नये बसने वाले या बढ़ते हुए कस्बों और नगरों या उनके समीप के क्षेत्रों में देखा जाता है। भूमि के मूल्यों की बढ़ोत्तरी उस क्षेत्र की सरकार या स्थानीय निकायों द्वारा किए जाने वाले व्यय के कारण होती है। इसलिए इन भूमियों पर लगाया जाने वाला कर भू-राजस्व से इतर होना चाहिए। राजस्व के स्रोत के रूप में इस कर में ऐसी क्षमता नहीं पायी गई कि वह राज्यों की बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा कर सके। शहरी स्थानीय निकायों के साधनों में वृद्धि के लिए बनाई गई मंत्रियों की समिति ने यह सुझाव दिया कि इन करों की प्राप्तियां स्थानीय निकायों को दे देनी

चाहिए। शहरी अचल सम्पत्ति पर कर से 1950-51 में 1.8 करोड़ रूपए जो 2006-07 में 100 करोड़ रूपए हो गये।

(9) वृत्ति, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार कर– व्यापार या व्यवसाय कर का उल्लेख राज्य सूची की 60वीं प्रविष्टि में किया गया है और संविधान की धारा 276 के अन्तर्गत इसे वैध माना गया है क्योंकि यह आमदनियों पर लगने वाले कर से सम्बन्धित है। किसी भी राज्य या स्थानीय सत्ता द्वारा यह प्रति वर्ष अधिकतम 250 रूपया लगाया जा सकता है। यह एक ऐसा कर है जो सभी व्यवसायों पर, सभी रोजगारों तथा सभी व्यापारों पर लगाया जाता है। निर्धन लोगों के लिए छूट की व्यवस्था की गई है। क्योंकि यह अनुपार्जित आय वाले लोगों को करमुक्त रखता है इसलिए इसे न्यायोचित कहना कठिन है और यह राज्य के कोष का शक्तिशाली साधन नहीं है। इससे प्राप्त आय 1950-51 में 0.1 करोड़ रूपए थी जो 1980-81 में 62.02 करोड़ रूपए और 2006-07 में 2700 करोड़ रूपए हो गई।

(10) मूल्य वर्धित कर (वैट)- भारत में मूल्य वर्धित कर 1 अप्रैल 2005 से 22 राज्यों एवं 7 केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू किया गया। इसके बाद जनवरी, 2007 में तमिलनाडु, पुडुचेरी में 1 अप्रैल 2007 तथा उत्तर प्रदेश में (अन्तिम राज्य) 1 जनवरी, 2008 से इसे लागू किया गया। लक्षद्वीप तथा अंडमान निकोबार द्वीपसमूह ऐसे संघशासित क्षेत्र हैं जहाँ बिक्री कर नहीं है इसलिए वैट की बात नहीं उठती। वैट लागू करने वाला पहला राज्य हरियाणा रहा तथा अन्तिम राज्य उत्तर प्रदेश रहा। पर्व में सीमित स्तरों पर भारत में वैट लाग करने का प्रयास किया गया। पर व्यापार स्तर पर राज्य स्तरीय वैट लागू करने के लिए असीम दास गुप्ता (वित्त मंत्री पश्चिम बंगाल) की अध्यक्षता में आयोजित अधिकार प्राप्त समिति की बैठक (18 जून 2004) में 1 अप्रैल 2005 से राज्य स्तर वैट लागू करने की व्यापक सहमति हुई। तद्नुसार सरकार के तर्क निम्न रूप में सामने आये कि सभी राज्यों के लिए वैट दरों की समान सूची बनने से कर प्रणाली सरल एवं समरूप बन जाएगी तथा राज्यों में अलाभकारी कर स्पर्धा से बचा नहीं जा सकेगा। जब आगत के ऊपर कर लगे तो कर के ऊपर कर लगेगा, वह संचयी रूप से लागत को बढ़ायेगा। इस संचयी प्रभाव को प्रपाती प्रभाव या (Snow balling) या कैस्केडिंग (Cascading) प्रभाव कहते हैं। निविष्टि कर क्रेडिट की व्यवस्था से कर के प्रपाती प्रभाव (Cascading) से बचन म सहायता मिलेगी। विक्रेताओं द्वारा स्व-कर निर्धारण की व्यवस्था में उत्पीड़न कम होगा एवं 5 लाख रूपए तक के कारोबार वाले छोटे व्यापारियों को वैट प्रावधानों से छूट मिलेगी। निर्यात के शून्य दर निर्धारण से भारतीय निर्यातों की प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी।

वैट की दर के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें उल्लेखनीय हैं-

(i) राज्य वैट की दो आधारभूत दरें (Basic rates) हैं- 4 प्रतिशत तथा 12.5 प्रतिशत। 550 वस्तुएं 4 प्रतिशत की दर पर तथा 270 वस्तुएं 12.5 प्रतिशत दर के अन्तर्गत होंगी। इसके अतिरिक्त एक कर मुक्त या शून्य वैट श्रेणी है तथा कुछ विशिष्ट वस्तुओं (10 वस्तुओं) की 1 प्रतिशत की दर भी अलग श्रेणी है। आधारभूत आवश्यकताओं तथा कुछ स्थानीय वस्तुओं को शून्य कर श्रेणी में रखा गया है।

(ii) असंगठित क्षेत्र की प्राकृतिक या अप्रसंस्कृत (Unprocessed) 46 वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनके ऊपर कर नहीं लगाया जा सकता तथा जिनका सामाजिक पहलू है, कोई वैट नहीं होगा।

(iii) स्वर्ण तथा चाँदी के आभूषण पर 1 प्रतिशत का विशिष्ट वैट होगा।

4 प्रतिशत की दर कुछ अन्य आवश्यक वस्तुओं पर लागू होगी। 12.5 प्रतिशत की दर उन सभी वस्तुओं पर लागू होगी जो उक्त श्रेणी में नहीं आते। इसके अतिरिक्त 20 प्रतिशत निचली स्तर की दर (Floor rate of tax) की अलग श्रेणी है पर इनमें आने वाली वस्तुएं मूल्यवान नहीं हैं (जिनके सम्बन्ध में कर-जमा) नहीं प्राप्त होगा इसमें आने वाली वस्तुएं हैं- मोटर स्प्रिट, पेट्रोल, डीजल, ऐविएशन टर्बाइन फ्यूल (Aviation Turbine Fuel), शराब।

'निर्यात' को शून्य दर श्रेणी में रखा गया है, इसके सम्बन्ध में आगत पर जमा की सुविधा भी उपलब्ध होगी।

राज्यों, व्यापारियों एवं उपभोक्ता वर्ग की चिन्ताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने राज्य स्तरीय वैट पर एक श्वेत-पत्र भी प्रकाशित किया। असाधारण उदारता का परिचय देते हुए राज्यों के कर राजस्व हानि को युक्तियुक्त तरीके से पूरा करने का वादा केन्द्र सरकार द्वारा किया गया है। साथ ही वैट से छूट प्राप्त कारोबार की सीमा को 5 लाख रूपए से बढ़ाकर 50 लाख रूपए कर दिया गया है। कर दरों में परिवर्तन के भी मिले जुले परिणाम संभावित हैं। पर इन सभी कदमों के बावजूद यदि वैट का विरोध किया जा रहा है तो उसके पीछे आशंका का मनोविज्ञान और कुछ समूहों के निहित व्यक्तिगत तथा राजनैतिक स्वार्थ दिखते हैं।

व्यापारिक वर्गों ने अपने विरोध के लिए तर्क दिए हैं कि इससे आर्थिक प्रतिक्रियाओं में अनावश्यक नौकरशाही का हस्तक्षेप और इंस्पेक्टर राज शरू होगा जिससे उनका शोषण होगा। ध्यातव्य है कि प्रस्तावित कर प्रणाली में बिक्री कर आयुक्त (यदि चाहे) 8 वर्षों के भीतर किसी भी केस को फिर से खोल सकता है और किसी भी कमी के पाये जाने पर दण्डित कर सकता है। दूसरे प्रत्येक व्यापारी को केवल एक बीजक रखना पड़ेगा। अपने कारोबार के लिए उसे अपना वैट पंजीयन करवाना पड़ेगा। प्रत्येक कारोबार लेनदेन में वैट नम्बर का प्रयोग अनिवार्य होगा। व्यापारी वर्ग का कहना है कि यह प्रक्रिया जटिल, श्रमसाध्य और खर्चीली होने के साथ-साथ सामान्य कारोबारी की समझ से बाहर होगी जिससे व्यापार कर विपरीत असर पड़ेगा।

तीसरी आपत्ति वैट में कर दरों के सामान्यतः उच्च होने और इससे मूल्य वृद्धि की आशंका से सम्बद्ध है फिर एक बात और है कि जब कुछ वस्तुओं को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अन्तर्गत करारोपित किया जा रहा है तो समूचे राज्यों में वैट लागू किया जाना कहाँ तर्क संगत है।

9.3.2 गैर कर आय के साधन

राज्यों के गैर-कर आय के साधनों के अन्तर्गत सार्वजनिक निर्माण, शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक उपक्रम, यातायात, परिवहन, ब्याज, लॉटरी आदि को शामिल किया जाता है।

(1) ब्याज- राज्य सरकारें अपने विभागीय एवं गैर विभागीय उपक्रमों, स्थानीय सरकारों तथा कृषकों को प्रदान किये गये ऋणों से ब्याज प्राप्त करती हैं।

(2) लाभांश- राज्य सरकारें कुछ उपक्रमों में अंश पूँजी के रूप में भी धन का विनियोग करती हैं, जिनसे उन्हें लाभांश प्राप्त होता है।

(3) आर्थिक सेवाएं- इन सेवाओं में वन, उद्योग, सहकारिता, खनिजों पर अधिकार शुल्क, बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओं, कृषि सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण, शक्ति परियोजनाओं, सड़क एवं जल यातायात तथा डेयरी विकास इत्यादि से प्राप्त आयों को शामिल किया जाता है।

(4) सामान्य सेवाएं- सामान्य सेवाओं की आय में न्याय, पुलिस और जेल विभाग तथा लॉटरी की आय को शामिल किया जाता है।

(5) अनुदान एवं अन्य प्राप्ति- राज्य सरकारें वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर केन्द्रीय सरकार से अनुदान प्राप्त करती हैं। कुछ विशेष योजनाओं और संकटों के लिए भी केन्द्र सरकार अनुदान देती हैं।

भारत में राज्यों को केन्द्र से तीन तरीकों से हस्तान्तरण होता है:

I वित्त आयोग द्वारा

(1) विभाजन योग्य कर सम्भरण से राज्यों को संवैधानिक हस्तान्तरण।

(2) अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत वित्त आयोग द्वारा अनुमोदित अनुदान ।

II योजना आयोग द्वारा- योजना आयोग राज्यों को होने वाले कुल संसाधन हस्तान्तरण का 30-35 प्रतिशत संसाधन हस्तान्तरण करता है। यह दो रास्तों से होता है:

(1) सामान्य केन्द्रीय सहायता- यह एक मुश्त राज्यों को दे दी जाती है जिसे राज्य अपने विवेकाधीन से व्यय करते हैं।

(2) केन्द्र समर्थित स्कीम- कुछ स्कीम के लिए केन्द्र 100 प्रतिशत, या आंशिक 90:10, 75:25 समर्थन देती है। राज्य सरकारें इसे ज्यादा पसन्द नहीं करती क्योंकि इनके संसाधनों के प्रयोग में स्वतंत्रता अवरोधित होती है।

9.4 स्थानीय निकाय के आय के स्रोत

नगर पालिकाओं के आय के मुख्य स्रोत हैं- कराधान, राज्य सरकारों से मिलने वाले सहायक अनुदान, राज्य सरकारों द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जाने वाले करों में हिस्से तथा नगर पालिका के उद्यमों से प्राप्त होने वाली गैर कर आय।

9.4.1 नगर पालिकाओं के आय के स्रोत

नगर पालिकाओं द्वारा लगाये जाने वाले कर

(1) सम्पत्ति पर कर: खाली भूमि सहित भवन व भूमि पर कर, सामान्य दर तथा सेवा कर, सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर।

(2) वस्तुओं पर कर: चुंगी तथा सीमा कर।

(3) व्यक्ति कर: पेशे, व्यापार, रोजगार पर कर, सम्पत्ति पर कर, यात्री कर तथा तीर्थ कर।

(4) वाहनों तथा पशुओं पर कर ।

(5) थियेटर, प्रदर्शन या तमाशा कर।

कराधान जाँच आयोग के अनुसार नगर पालिकाओं की आय में जो वृद्धि है वह महत्वपूर्ण नागरिक सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च की वृद्धि के सन्दर्भ में अपर्याप्त है। नगर पालिकाओं की औसत आय तथा व्यय में विभिन्न

राज्यों में बहुत अन्तर पाए जाते हैं। साधनों की कमी के कारण नगर पालिकाएं अपनी अनिवार्य सेवाओं तक को करने में समर्थ नहीं हैं।

नगर पालिकाओं के गैर कर राजस्व के मुख्य स्रोत हैं:

(1) नगर पालिकाओं की सम्पत्ति से प्राप्त लगान

(2) नगर पालिकाओं द्वारा प्रदत्त सेवाओं से प्राप्त आय

(3) नगर पालिकाओं के विनियोग से प्राप्त ब्याज

(4) लाइसेंस फीस

(5) जुर्माना

(6) सरकार से प्राप्त अनुदान

(7) ऋण

9.4.2 नगर निगम के आय के स्रोत

नगर निगमों की कर लगाने की शक्तियाँ राज्य-राज्य में और निगम-निगम में भिन्न हैं। साथ ही कर लगाने के तरीके में भी अन्तर पाया जाता है, उदाहरण मुम्बई नगर निगम जिन करों को लगा सकती है वे हैं सम्पत्ति कर, सेवाकर, नगर शुल्क, वाहनों एवं पशुओं पर कर, थियेटर कर, शिक्षा उप कर तथा एक लघु कर। मद्रास नगर निगम सम्पत्ति कर, वृत्ति, व्यापार, आजीविका व रोजगार कर, कम्पनियों पर कर, प्रयोग या बिक्री के लिए नगर में लाए जाने वाले काष्ठ पर कर, सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर, पशुओं तथा गाड़ियों पर कर और विज्ञापनों पर कर। नगर निगमों के लिए यह संभव नहीं होता कि वह अपने पास उपलब्ध वित्तीय साधनों से नगरीकरण की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था कर सकें।

9.4.3 ग्राम पंचायतों के वित्त के साधन

कर, फीस तथा अन्य चार्ज, गैर कर स्रोत तथा राज्य सरकार तथा अन्य स्रोतों से अनुदान। सभी राज्यों में ग्राम पंचायतों को कुछ करों को लगाने की शक्ति प्रदान की गई है। हालाँकि राज्य-राज्य के बीच इससे सम्बन्धित काफी अन्तर है। पंचायतों की आय के मुख्य स्रोत है सम्पत्ति कर, भू-राजस्व या लगान पर उपकर, वाहनों पर कर तथा व्यवसाय कर। ये कर सामान्यतया अनिवार्य ही होते हैं। पंचायतों के कुछ ऐसे अन्य करों व शुल्कों को भी लगाने का अधिकार दे दिया जाता है। जैसे कि चुंगी, दुकानों पर कर, विश्राम गृहों पर कर, रोशनी शुल्क, जल शुल्क आदि। किन्तु ये कर वहीं लगाये जाते हैं। जहाँ इनसे सम्बन्धित सेवाएं ग्राम पंचायतों द्वारा उपलब्ध करायी जा रही हैं। कुछ पंचायतों को सड़क के किनारे स्थित पेड़, तालाब, आदि की काफी रकम प्राप्त होती है। खासकर उन पंचायतों में जिन्हें भूमि प्रबन्ध का काम सौंपा गया है। प्रत्येक राज्य में ऐसे विधान है कि परती जमीन, पार्क, तालाब, बाजार आदि का प्रबन्ध पंचायतों को सौंप दिया जाए। पंचायतों को किन-किन सम्पत्तियों के प्रबन्ध का अधिकार दिया जाएगा इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में अन्तर पाया जाता है।

केरल की पंचायतों को मवेशी, तालाब, बाजार तथा बूचड़खाना (slaughterhouse) के प्रबन्ध का अधिकार दिया गया है और इन स्रोतों से पर्याप्त आय प्राप्त होती है। कर्नाटक में कुछ पंचायतों को कम्पोस्ट बनाने के

अधिकार प्राप्त हैं जिससे उन्हें काफी आय प्राप्त होती है। राजस्थान को कर की अपेक्षा गैर कर से अधिक आय प्राप्त होती है।

अनुदान– प्रत्येक राज्य में पंचायतों की आय का मुख्य स्रोत राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान है। कुल आय में इसका हिस्सा 2 से लेकर 90 प्रतिशत का है। भू-राजस्व, मनोरंजन कर, सेस आदि के हिस्से के रूप में अनुदान प्राप्त होते हैं। निम्न अनुदान उपयोग में हैं:

(1) भू-राजस्व के अंश के रूप में

(2) स्टाम्प ड्यूटी के अंश के रूप में

(3) मनोरंजन कर में हिस्सा

(4) समानता अनुदान

(5) बराबरी अनुदान- तमिलनाडु में भवन कर राजस्व के बराबर यह अनुदान दिया जाता है। इस अनुदान का उद्देश्य है कि पंचायत ऊँची दर पर इस कर को लगायें।

(6) राजस्थान में उपर्युक्त किसी विधि का अनुसरण नहीं किया जाता बल्कि प्रत्येक पंचायत को 20 पैसे प्रति व्यक्ति के अनुसार 400 रूपए की अधिकतम राशि के अन्तर्गत सामान्य अनुदान दिया जाता है।

(7) कुछ राज्यों में अनुदान की ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत पंचायत मंत्री के सम्पूर्ण या आंशिक वेतन के बराबर अनुदान दिया जाता है।

9.4.4 पंचायत समितियों के वित्त

पंचायत समितियों को जो धन प्राप्त होता है उनके स्रोत हैं, ब्लाक के बजट से प्राप्त निधियाँ, राज्य सरकार एजेन्सी के कार्य के रूप में जो विशिष्ट कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए पंचायत समिति को सौंपती है उनके लिए निर्धारित धन, भू-राजस्व व मालगुजारी में हिस्सा तथा राज्य सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदान। इनके अलावा कुछ राज्यों में पंचायत समितियों को कुछ करों को लगाने के भी अधिकार प्राप्त हैं जैसे गुजरात में पंचायत समिति कुछ सीमाओं के अधीन वे सभी कर लगा सकती हैं जिन्हें लगाने का अधिकार ग्राम पंचायत को होता है। उत्तर प्रदेश में समिति के आय के महत्वपूर्ण स्रोत हैं – अनुदान तथा सामुदायित विकास कार्यक्रमों से अंशदान। इसके अलावा समिति विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए राज्य सरकार से ऋण भी ले सकती है।

समिति की आय के कुछ कर के अलावा स्रोत है- दलालों पर लाइसेंस शुल्क, वाहनों पर मार्ग कर, बाजार व मेलों में बेचे जाने वाले पशुओं पर कर, दुकानदारों से बाजार शुल्क, कृषि व औद्योगिक प्रदर्शनी शुल्क, समिति की सम्पत्ति के उपयोग पर शुल्क।

9.4.5 जिला परिषद के वित्त

जिला परिषदों की आय के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं:

(1) हैसियत कर तथा सम्पत्ति व अन्य ऐसे कर जिनहें राज्य सरकार परिषद को लागू करने के लिए अधिकृत करे।

(2) राज्य सरकारों से मिलने वाले अनुदान ।

(3) मार्ग कर तथा शुल्क आदि जो जिला परिषद द्वारा लागू किये जायें।सम्पत्ति से आय तथा राज्य सरकार से मिलने वाले कर्ज।

(5) स्थानीय निकाय के निर्माण कार्यों से सम्बन्धि एवं केन्द्र द्वारा प्रेरित योजना व कार्यक्रमों के लिए अनुदान।

(6) राज्य की गैर योजना सहायता ।

(7) मेले तथा प्रदर्शनियों से आय ।

(8) भूमि पर कर

9.5 बारहवाँ वित्त आयोग एवं स्थानीय संस्थाएं

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए बारहवें वित्त आयोग ने कई सेमिनार तथा अध्ययन का आयोजन किया। इसी सिलसिले में हैदराबाद के राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (NIRD) ने ग्रामीण संस्थाओं के वित्त में सुधार लाने के निम्न सुझाव दिए:

1. पंचायतों को कुछ प्रमुख करों को लगाना चाहिए तथा गैर-कर राजस्व के दोहन को अनिवार्य कर देना चाहिए। राज्य सरकारों को ऐसी करारोपण (Levy) की दर को निश्चित करना चाहिए।
2. पंचायतों के लिए एक न्यूनतम राजस्व वसूली को अनिवार्य बना देना चाहिए।
3. इस न्यूनतम सीमा से अधिक राजस्व वसूली करने वाली संस्थाओं को प्रेरणादायक अनुदान देना चाहिए।
4. प्रयोक्ता चार्ज (User Charge) को अनिवार्य लेवी बना दिया जाए।
5. ग्राम पंचायतों की सभी सामान्य सम्पत्ति की पहचान होनी चाहिए तथा उससे राजस्व प्राप्त करना चाहिए।
6. सभी कर योग्य भूमि तथा सम्पत्ति का मूल्यांकन राज्य सरकारों के पंचायत सेल द्वारा होना चाहिए, न कि पंचायत द्वारा।
7. कृषि जोत पर कर/सेस/अधिभार लगाने की शक्ति पंचायत समिति या जिला परिषद को होनी चाहिए।
8. राज्य से पंचायत को राजस्व के आबंटन/हस्तान्तरण को वैधानिक बना देना चाहिए।
9. सहायता अनुदान के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को अपनी वचनबद्धता पर कायम रहना चाहिए पंचायत को दिए जाने वाले सभी असंबद्ध अनुदान को वैधानिक रूप से प्रदान करना चाहिए।
10. निष्पादन आडिट (Audit) व्यवस्था को अपनाना चाहिए। स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए TFC ने निम्न सुझाव दिये:
11. NIRD ने पंचायतों के साधनों में सुधार के लिए जो अच्छे सुझाव दिए उन्हें राज्य सरकारों को स्वीकार करना चाहिए।
12. स्थानीय संस्थाओं के संसाधनों का अनुमान करते समय राज्य वित्त आयोग को राजस्व और व्यय की गणना में आदर्श (Normative) दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
13. पंचायती राज संस्थाओं को जल आपूर्ति तथा स्वच्छता के कार्य को स्वयं करें तथा अनुदान का उपयोग मरम्मत/नवीकरण तथा आफिस एवं प्रबन्धन कार्य के लिए करें।
14. स्थानीय संस्थाओं को इनके वित्त के सम्बन्ध में सूचना एकत्र करने के लिए राशि उपलब्ध कराना चाहिए।

9.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) निम्न में से कौन सा कर राज्य सरकार लगाती है

(अ) धन कर (ब) निगम कर

(स) मनोरंजन कर (द) आयकर

(2) भारत में राज्य किस मद से अधिकतम राजस्व प्राप्त करते हैं

(अ) बिक्री कर (ब) भू-राजस्व

(स) कृषि आय कर (द) राज्य उत्पाद कर

(3) भारत में किस राज्य ने सबसे पहले बिक्री कर लगाया था

(अ) केरल (ब) उत्तर प्रदेश

(स) मध्य प्रदेश (द) उत्तरांचल पंचायत,

(4) नगर पालिका, नगर निगम इत्यादि स्थानीय संस्थायें शासन का

(अ) प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण करती है।

(ब) प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण करती है।

(स) शासन का न तो केन्द्रीकरण न विकेन्द्रीकरण

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(5) भू-राजस्व पर उपकर कौन लगाता है

(अ) ग्राम पंचायत (ब) जिला परिषद

(स) केन्द्र सरकार (द) नगर निगम

रिक्त स्थान भरो

(1) वित्त आयोग द्वारा अनुमोदित अनुदान अनुच्छेद ..... के अन्तर्गत दिया जाता है।

(2) तीर्थ कर ..... द्वारा लगाया जाता है।

(3) प्रत्येक राज्य में मनोरंजन कर द्वारा एकत्रित राशि ..... को हस्तान्तरित कर दी जाती है।

(4) बंगाल में कृषि आयकर ..... में लगाया गया।

(5) जो लोग कानूनी अदालतों तथा सरकारी कार्यालयों से व्यवहार करते हैं, उन्हें देना पड़ता है।

(6) गैर न्यायिक स्टाम्प शुल्कों का नियमन भारतीय स्टाम्प अधिनियम ..... द्वारा किया जाता है।

(7) मानवीय उपभोग के लिए काम में आने वाली शराब पर ..... लगाया जाता है।

9.7 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने राज्यों एवं शहरी और ग्रामीण निकायों के आय के स्रोतों के बारे में जाना। राज्यों की कर आय के मुख्य स्रोत भू-राजस्व, स्टाम्प शुल्क, न्यायालय शुल्क और रजिस्ट्रेशन, राज्य उत्पादन शुल्क और बिक्री कर हैं तथा गैर कर आय, ब्याज, लाभांश, आर्थिक सेवाओं, सामान्य सेवाओं तथा अनुदान एवं अन्य प्राप्तियों से मिलते हैं। इन आय के स्रोतों की लोच संघ के आय के स्रोतों की लोच से कम रहती है जबकि राज्यों पर

व्यय का भार अधिक है इसलिए इस कमी को पूरा करने के लिए केन्द्र से राज्यों को संघीय करों में हिस्सा तथा योजना आयोग एवं वित्त आयोग द्वारा अनुदान दिया जाता है। स्थानीय जरूरतों के लिए स्थानीय निकायों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है किन्तु उनके आय के साधन भी बहुत सीमित है इसी वजह से राज्यों एवं केन्द्र द्वारा वित्त आयोग एवं योजना आयोग से स्थानीय निकायों को मदद मिलती है।

9.8 शब्दावली (Glossary)

- **अनुपार्जित आय-** लाभांश और ब्याज जैसी आय जिनका उपार्जन प्रत्यक्ष रूप से श्रम प्रदान करके नहीं होता है।
- **लाभांश-** लाभ जो कि अंशधारियों में बांटा जाता है।
- **बजट-** यह आयोजित व्यय तथा अनुमानित प्राप्ति का एक लेखा है, जो सामान्यतः एक वर्ष के लिए होता है।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) (स) मनोरंजन कर (2) (अ)बिक्री कर (3) (स) मध्य प्रदेश

(4) (ब)प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण करती है।

(5) (अ) ग्राम पंचायत

रिक्त स्थान भरो

(1) 275 (2) नगर पालिका (3) स्थानीय निकाय (4) 1944

(5) न्यायालय शुल्क (6) 1899 (7) राज्य उत्पादन शुल्क

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंह एस.के., *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त,* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- पन्त जे.सी., *लोक अर्थशास्त्र,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- त्यागी बी.पी., *लोक वित्त,* जय प्रकाश नाथ एवं कम्पनी, मेरठ।

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- मिश्रा जे.पी., *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*, साहित्य भवन पब्लिकेशनस।
- भाटिया एच.एल., *लोकवित्त*, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.
- Report of the Twelfth Finance Commission.

9.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. भारत में राज्य सरकारों की आय के प्रमुख साधन कौन-कौन से हैं?
2. राज्य उत्पादन शुल्क पर टिप्पणी लिखिए।
3. भारत के नगरीय स्थानीय संस्थाओं की आय के प्रमुख स्रोतों की व्याख्या कीजिए।

4. भारत के ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की आय के स्रोतों को बताइये।

5. राज्य बिक्री कर की विवेचना कीजिए।

इकाई -10 संघीय बजट का विश्लेषण एवं सुधार

(Analysis and Improvement of Federal Budget)

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 बजट से तात्पर्य

10.4 बजट की आवश्यकता एवं महत्व

10.5 अच्छे बजट की विशेषतायें

10.6 बजट के प्रकार

10.7 केन्दीय बजट के प्रमुख दस्तावेज

10.8 बजट का निर्माण

10.9 बजट के अव्यय

10.10 केन्द्र तथा राज्य सरकारों के कोष

10.11 स्वतंत्रतोपरान्त केन्द्रीय बजट की मुख्य बातें

10.12 बजट सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

10.13 बजट सम्बन्धी समस्यायें एवं सुधार हेतु सुझाव

10.14 अभ्यास प्रश्न

10.15 सारांश

10.16 शब्दावली

10.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.20 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई के अन्तर्गत संघीय बजट का विश्लेषण एवं उसमें सुधार सम्बन्धी तथ्यों से अवगत होंगे। इसमें मुख्य रूप से इकाई के उद्देश्यों, बजट से तात्पर्य, बजट की आवश्यकता एवं महत्व, अच्छे बजट की विशेषतायें, बजट के प्रकार, केन्द्रीय बजट के प्रमुख दस्तावेज, बजट निर्माण, भारतीय बजट प्रणाली के अन्तर्गत बजट निर्माण, बजट निर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित पाँचों चरणों- बजट की रूपरेखा, दस्तावेज, स्वीकृति, क्रियान्वयन तथा लेखांकन को स्पष्ट करते हुए बजट के अवयवों के अन्तर्गत राजस्व एवं पूँजीगत प्राप्तियों एवं व्ययों को समझते हुए केन्द्र तथा राज्य सरकार के कोषों को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् स्वतंत्रतोपरांत बजट प्रस्तुत करने वाले प्रधान मंत्रियों एवं वित्तमंत्रियों को चार्ट द्वारा बताकर योजनाकाल में बजट नीति की सामान्य समीक्षा के साथ-साथ सम्बन्धित प्रधान मंत्रियों के केन्द्रीय नीतियों को बताया गया है। साथ ही संघीय बजट में सुधार सम्बन्धी प्रक्रिया में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों हेतु राष्ट्रीय आयोगों- आर.एस. सरकारिया एवं एम.एम. पुंछी के प्रयोगों तथा वित्त आयोगों एवं कर प्रावधानों में हुए बदलावों की चर्चा करते हुए सुझाव दिये गये हैं।

10.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- ✓ बजट, बजट की आवश्यकता, महत्व, विशेषताओं तथा प्रकारों को समझ सकेंगे।
- ✓ भारतीय बजट प्रणाली को समझ सकेंगे।
- ✓ बजट निर्माण प्रणाली से अवगत हो जाएगे।
- ✓ बजट के विभिन्न अवयवों- राजस्व, एवं पूँजीगत प्राप्तियों तथा व्ययों को समझ सकेंगे।
- ✓ स्वतंत्रतोपरांत (post independence) बजट नीति को समझ सकेंगे।
- ✓ संघीय बजट सम्बन्धी सुधारों से अवगत हो सकेंगे।
- ✓ बजट में सुधार हेतु सुझाव दे सकेंगे।

10.3 बजट से तात्पर्य (Concept of Budget)

सामान्यतया बजट आय व व्यय का एक वार्षिक विवरण है। इसमें व्ययों को करने के लिए विभिन्न साधनों व पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। भारतीय संविधान के अनुसार यह वार्षिक लेखा लोकसभा व राज्यसभा के सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। इस लेखे पर बहस के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है। पक्ष तथा विपक्ष के सभी सदस्य बहस में भाग लेते हैं। हमारे देश के बजट में गत वर्ष की वास्तविक राशि, चालू वर्ष की वास्तविक राशि, चालू वर्ष के संशोधित अनुमान तथा अगले वर्ष के अनुमान प्रस्तुत किये जाते हैं। वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से आरम्भ होकर अगले वर्ष में 31 मार्च को समाप्त हो जाता है। सरकार संसद के समक्ष **'पूरक माँगें'** रखती है। अनुमानित बजट में उल्लिखित (mentioned) धनराशि से अधिक खर्च हो जाने की स्थिति में सरकार संसद में संशोधित बजट अनुमान प्रस्तुत कर उसकी स्वीकृति प्राप्त करती है। कभी-कभी तो संशोधत अनुमान और वास्तविक रूप में व्यय हुई धनराशि में भी अन्तर रह जाता है अर्थात् वास्तविक रूप में अधिक धनराशि खर्च हो जाती है, तब संसद ही इस वास्तविक खर्चे को भी स्वीकृति प्रदान करती है। इस तरह बजट सरकार की राजस्व

नीति का एक व्यवहारिक रूप है। हमारे यहाँ बजट सामान्य तौर पर आगामी वित्तीय वर्ष हेतु माँगे पास कराकर आवश्यक सरकारी खर्चे हेतु व्यवस्था सुनिश्चित कर ली जाती है और पूर्ण वार्षिक बजट कुछ माह बाद उपयुक्त समय पर प्रस्तुत किया जाता है।

भारत में बजट प्रस्तुतीकरण का सम्बन्ध 3 वर्षों के आंकड़ों से होता है। बजट सरकार के वार्षिक आय-व्यय का ब्यौरा होने के साथ-साथ सरकार की आर्थिक नीतियों का प्रतिबिम्ब, देश की अर्थनीति एवं आर्थिक स्वास्थ्य का एक आइना, सरकारी दीर्घकालीन आर्थिक नीति की लघुकालीन अभिव्यक्ति, सरकार के आर्थिक प्रशासन का एक प्रभावशाली उपकरण, आर्थिक नीति का दर्शन, वर्षभर के आर्थिक क्रियाकलापों का दिशा निर्धारक एवं व्यवस्थित रूपाकार आदि शब्दों से भी जाना जाता है। कर राजस्व में निगम कर, आयकर, दानकर, सीमा शुल्क आदि तथा गैर कर राजस्व में ब्याज प्राप्तियाँ, विभागीय या सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त लाभांश, लाभ, विदेशी अनुदान आदि सम्मिलित होते हैं। पूँजीगत प्राप्तियों में ऋणों की वसूली, बाजार ऋण, ट्रेजरी बिल के माध्यम से रिजर्व बैंक से प्राप्त ऋण, विदेशों से प्राप्त ऋण, राज्यों से ऋण की वापसी आदि की प्राप्तियाँ सम्मिलित रहती हैं।

व्यवहारिक अर्थों में बजट एक ऐसा सरकारी विवरण-पत्र है जिसमें सरकार की गत वर्ष की आय-व्यय की स्थिति, चालू वर्ष में सरकारी आय-व्यय के संशोधित आकलन, आगामी वर्ष के लिए आय-व्यय के अनुमानित आँकड़े तथा आगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय के घटाने-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण दिया होता है। हमारे संविधान में प्रतिवर्ष बजट को संसद से पास कराने की व्यवस्था निर्धारित करके सरकारी मशीनरी द्वारा वर्ष भर में किए जाने वाले किसी भी व्यय के लिए संसद की अनुमति अनिवार्य है अर्थात् सरकार द्वारा वर्ष में किए जाने वाले खर्चे पर संसद के नियन्त्रण को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। कई बार सरकार को बजट में निर्धारित राशि के अतिरिक्त भी धनराशि व्यय करनी पड़ती है।

बजट के खर्चों में योजनागत और गैर-योजनागत दोनों मदों को सम्मिलित किया जाता है। योजनागत व्यय से तात्पर्य केन्द्रीय योजना पर होने वाले व्यय से होता है। इसे राजस्व व्यय तथा पूँजीगत व्यय में विभाजित किया जाता है। गैर-योजना व्यय सरकार द्वारा नियमित दायित्वों के निर्वहन पर किया जाने वाला व्यय होता है। इसे भी राजस्व व्यय तथा पूँजीगत व्यय नामक दो मदों में विभाजित किया जाता है। गैर-योजना राजस्व व्यय के अन्तर्गत ब्याज, सब्सिडी, किसानों को ऋण, सामाजिक, आर्थिक सेवाएं, राज्यों को अनुदान, विदेशों को अनुदान, पेंशन, रक्षा राजस्व पर किया जाने वाला व्यय होता है तथा गैर-योजना पूँजीगत व्यय में रक्षा पूँजी, सरकारी उद्यमों को ऋण, राज्य सरकारों को उधार, केन्द्र-शासित प्रदेशों का व्यय तथा गैर योजना व्यय को जोड़कर या फिर राजस्व व्यय तथा पूँजीगत व्यय को जोड़कर निकाला जा सकता है।

10.4 बजट की आवश्यकता एवं महत्व (Necessity and Importance of Budget)

बजट किसी भी देश या प्रदेश की अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक नीति का परिचायक होता है। इससे वहाँ की अर्थिक स्थिति और आगामी वर्ष में सम्भावित आर्थिक उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है। बजट के माध्यम से संसद/विधानसभायें कार्यपालिका के कार्य पर अंकुश रखते हुए देश की अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण करती हैं। बजट की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता हैः

1. बजट के माध्यम से सरकारें अपने आय-व्यय को वैधानिक रूप से कार्यान्वित करती हैं।
2. बजट सरकारी व्ययों की वैधानिक सीमायें निर्धारित करता है।
3. बजट सरकारों के आय-व्यय की क्रियाओं का निर्देशन करता है।
4. बजट में लोक कल्याणकारी नीतियों एवं सामाजिक दायित्वों का स्पष्ट उल्लेख होने से सरकार की जन-नीतियों का ज्ञान होता है।
5. बजट द्वारा विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक आर्थिक असंतुलन कम करने का प्रयास किया जाता है।
6. बजट द्वारा प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से न केवल आर्थिक विषमता को कम किया जाता है बल्कि विकास कार्यक्रम हेतु अधिक धन भी इकट्ठा किया जाता है।
7. बजट द्वारा निर्बल वर्गों के विकास हेतु आवश्यक सुविधायें एवं सहायता प्रदान की जाती है।
8. बजट द्वारा कीमतों को स्थिर रखने का प्रयास किया जाता है। इसी क्रम में **'अतिरिक्त का निर्यात'** तथा **'कम का आयात'** किया जाता है।
9. बजट द्वारा वित्तीय असन्तुलनों को कम करने का प्रयास किया जाता है।
10. बजट में गरीबी दूर करने, सामाजिक विषमता कम करने तथा रोजगार अन्य कार्यक्रमों हेतु अतिरिक्त धन की व्यवस्था की जाती है।
11. बजट में व्यापार संतुलन को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

10.5 अच्छे बजट की विशेषतायें (Characteristics of Good Budget)

यद्यपि बजट से सभी लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। परन्तु सामान्य रूप में एक अच्छे व सन्तुलित बजट की निम्न विशेषतायें होनी चाहिए:

1. सरकारी आय-व्यय में संतुलन होना चाहिए।
2. उद्योग तथा कृषि क्षेत्रों में उच्च विकास दर बनाते हुए समग्र विकास दर ऊँचा बनाना चाहिए।
3. अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों से वित्तीय असन्तुलन कम करना चाहिए।
4. रूपए को महत्वपूर्ण बनाये रखने हेतु पूर्ण परिवर्तनशीलता की नीति का परित्याग करना चाहिए।
5. निर्यात वृद्धि तथा अपव्ययी आयात को कम करने की नीति पर बल दिया जाना चाहिए।
6. रोजगार वृद्धि हेतु उचित एवं व्यवहारिक प्रावधानों को लागू करना चाहिए।
7. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अनिवार्य क्षेत्र में ही महत्व मिलना चाहिए।
8. विलासिता की वस्तुओं पर करों को नहीं घटाना चाहिए।
9. सामान्य उपयोग वस्तुओं पर करों की दरें घटनी चाहिए।
10. आयकर की दरों के साथ-साथ अन्य करों को भी युक्ति-संगत बनाना चाहिए।
11. बजट घाटा कम से कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

10.6 बजट के प्रकार (Types of Budget)

अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप के बदलते आयामों, उद्देश्यों व परिस्थितियों आदि के फलस्वरूप बजट की प्रक्रिया और स्वरूपों में समय-समय पर परिवर्तन किये जाते रहे हैं। मुख्य रूप में प्रचलन में आये बजट के विभिन्न स्वरूपों का विवरण निम्नवत् हैः

1 **पारम्परिक अथवा आम बजट - 'पारम्परिक'** बजट को आम बजट का प्रारम्भिक रूप माना जा सकता है। इस प्रकार के बजट का मुख्य उद्देश्य विधायिका का कार्यपालिका पर वित्तीय नियंत्रण स्थापित करना रहा है। इसके अनुसार बजट में मुख्यतः वेतन, मजदूरी, यात्रा, मशीनें तथा उपकरण आदि के रूप में किए जाने वाले व्यय तथा विभिन्न मदों में होने वाली आय को प्रस्तुत किया जाता रहा है। इसमें किस क्षेत्र में कितना धन व्यय करना है उसी का उल्लेख होता था, किन्तु इस व्यय के खर्च से क्या-क्या परिणाम प्राप्त करने हैं, उनका ब्यौरा नहीं दिया जाता था। इस प्रकार के बजट का मुख्य उद्देश्य सरकारी खर्चों पर नियन्त्रण करना है न कि तीव्र गति से विकास तथा विकास कार्यों को महत्व देना। इसलिए कालान्तर में पारम्परिक बजट पद्धति स्वतंत्र भारत की समस्याओं को सुलझाने तथा इसकी महत्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने में असमर्थ रही है। यही कारण है कि भारत में पिछले कुछ वर्षों से निष्पादन बजट की आवश्यकता तथा महत्ता को स्वीकार किया गया है तथा इसे परम्परागत बजट के पूरक के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

2 **निष्पादन बजट**- **'निष्पादन बजट'** को उपलब्धि बजट या कार्यपूर्ति बजट भी कहा जाता है। अतः कार्य के परिणामों या निष्पादन को आधार बनाकर निर्मित होने वाला बजट निष्पादन बजट कहलाता है। निष्पादन बजट से अभिप्राय उस प्रविधि से है जो सरकारी कार्यवाही को कार्यों, कार्यक्रमों तथा क्रिया-कलापों के रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें उपलब्धि के साधनों से बल हटाकर स्वयं उपलब्धियों पर बल दिया जाता है। इसका मुख्य केन्द्र बिन्दु वे उद्देश्य हैं जिनको सरकार पूरा करना चाहती है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित कार्यक्रमों की लागत को प्रत्येक कार्यक्रम के अधीन संख्यात्मक आँकड़े जो कार्यक्रम कार्यान्वयन और उपलब्धियों का मापन करते हैं, निर्धारित किये जाते हैं। निष्पादन बजट को एक व्यापक कार्यवाही का दस्तावेज भी कहा जाता है जो कार्यक्रमों, परियोजनाओं तथा कार्यकलापों के लिए तथा भौतिक पहलुओं से घनिष्ठता के साथ प्रारम्भ होता है।

निष्पादन बजट का प्रारम्भ सर्वप्रथम 1951 में अमेरिका में हुआ। धीरे-धीरे अन्य देशों ने भी प्रयोग किया। वर्तमान में,भारत में यही प्रणाली प्रचलित है। निष्पादन बजट के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना है कि निष्पादन बजट सरकारी प्रचलन के कार्यों, कार्यक्रमों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं को पेश करने की एक कार्यविधि है। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में संक्षेप में कहा जा सकता है कि निष्पादन बजट मूलतः लक्ष्योन्मुखी तथा उद्देश्यपरक प्रणाली पर आधारित है। जिसमें केवल संगठनात्मक आय-व्यय का हिसाब ही नहीं, बल्कि प्राप्त हुए निष्कर्षों या कार्य निष्पादन को मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।

3 **जीरोबेस बजट या सूर्यास्त बजट प्रणाली -** बजट में पाए जाने वाले निरन्तर घाटा तथा निष्पादन बजट प्रणाली के क्रियान्वयन को सही रूप देने हेतु व्ययों में कटौती तथा घाटे पर अंकुश लगाने के लिए जीरोबेस बजट प्रणाली को उचित माना गया। इस प्रणाली के जनक अमेरिका के टेक्सास इन्स्ट्रूमेण्ट के बजट निदेशक पीटर ए. पायर (1970) माने जाते हैं। इस प्रकार के बजट को पहली बार 1973 में जार्जिया प्रान्त के **गवर्नर जिमी कार्टर** ने किया तथा बाद में राष्ट्रपति बनने के बाद 1979 में उन्होंने अपने राष्ट्रीय बजट में भी इसको अपनाया। इस प्रणाली को *सूर्यास्त बजट प्रणाली (Sunset Budget System)* भी कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि वित्तीय वर्ष के सूर्यास्त से पूर्व प्रत्येक विभाग को एक शून्य आधारीय बजट प्रस्तुत करना होता है, जिसमें उसके प्रत्येक क्रियाकलाप व उपलब्धियों का लेखा-जोखा रहता है।

भारत में जीरोबेस बजटिंग की प्रक्रिया की शुरूआत सरकारी क्षेत्र के एक प्रमुख शोध संगठन *'वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (Council of Scientific and Industrial Research)'* द्वारा की गई। केन्द्र सरकार के सभी मन्त्रालयों तथा विभागों में लागू करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा इसे बजट 1987-88 से लागू करने का निर्णय लिया गया। केन्द्र सरकार के इस निर्णय के अनुक्रम में वित्त मन्त्रालय के अधीन व्यय विभाग ने केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों एवं विभागों में जीरोबेस बजटिंग लागू करने के लिए विस्तृत मार्गदर्शक नियम बनाने हेतु वित्तिय सलाहकारों की एक समिति नियुक्त की। इस समिति द्वारा तैयार दिशा-निर्देशों के आधार पर वर्ष 1987-88 का बजट बनाते समय केन्द्र सरकार के सभी विभागों द्वारा जीरोबेस पद्धति पर बजट बनाने का प्रयास किया गया। इस वर्ष जीरोबेस बजटिंग के आधार पर कुछ सुरक्षा संस्थानों, सरकारी प्रिन्टिग प्रेस, कुछ आर्डिनेन्स कारखानों, खाद्य एवं रसद विभाग (Food & Logistics Department), इस्पात विभाग, दूरसंचार विभाग, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर्स, विदेश संचार निगम तथा सरप्लस एवं डिस्पोजल विभाग के आकार और क्रियाओं में भारी कटौती करने का निर्णय लिया गया। इस प्रणाली की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसके बाद के वर्षों में भी इसको प्रयोग में लाने पर जोर दिया जाता रहा है।

केन्द्र सरकार के अतिरिक्त विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी बढ़ते सरकारी खर्चों और अनुपयोगी होती जा रही अनेक स्कीमों और कार्यक्रमों पर होने वाले भारी- भरकम व्ययों को कम करने के उद्देश्य से इसको प्रयोग में लाना प्रारम्भ किया गया है। सरकारों द्वारा जीरोबेस बजटिंग को वर्ष 1987-88 से ही लागू करने का फैसला किया गया। मध्य प्रदेश और राजस्थान सरकारों द्वारा जीरोबेस बजटिंग प्रणाली को वर्ष 1995-96 में सख्ती से सभी विभागों में लागू करने का निर्णय लिया गया। आज लगभग सभी राज्य सरकारों द्वारा पूर्णरूपेण न सही तो आंशिक रूप से इसे लागू किया जा रहा है तथा इस बात पर बल दिया जा रहा है कि इसे यथासम्भव अधिक से अधिक विभागों और कार्यकलापों अथवा कार्यक्रमों में प्रभावी रूप से लागू किया जाए। सम्भवतया ऐसा किया जाना आज की आर्थिक परिस्थितियों के कारण उनकी मजबूरी भी होती जा रही है।

4 **आउटकम बजट -** इस बजट के अन्तर्गत एक वित्तीय वर्ष के लिए किसी मन्त्रालय अथवा विभाग को आवन्टित किये गए बजट में अनुश्रवण तथा मूल्यांकन किए जा सकने वाले भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण इस उद्देश्य से किया जाता है, ताकि बजट के क्रियान्वयन की गुणवत्ता को परखा जाना सम्भव हो सके। केन्द्र सरकार द्वारा बजट की इस नयी पद्धति की शुरूआत की घोषणा वर्ष 2005-2006 के बजट में की गयी और देश के संसदीय इतिहास में पहली बार 25 अगस्त, 2005 को आउटकम बजट वित्त मन्त्री द्वारा संसद में प्रस्तुत किया गया। **'आउटकम बजट'** की शुरूआत से विकास के प्रमुख कार्यक्रमों में प्रगति की गति के बारे में समय से समुचित जानकारी प्राप्त करने की सम्भावनाएं बढ़ी हैं। इसी कारण से आउटकम बजट को एक नयी प्रविधि के रूप में सामान्य बजट की तरह से अधिक उपयोगी पाये जाने की सम्भावनाएं भी व्यक्त की गई हैं। **'आउटकम बजट'** सामान्य बजट की तुलना में एक कठिन प्रक्रिया है जिसमें वित्तीय प्रावधानों को परिणामों के सन्दर्भ में देखा जाना होता है। यह प्रक्रिया कई चरणों से गुजर कर पूर्ण की जाती है। जिसमें एक निश्चित अवधि में सम्भावित परिणामों को अनुश्रवण योग्य तथा मापने योग्य परिणामों में बदलने हेतु विशेष तरीके से परिभाषित किया जाना होता है तथा प्राप्त होने वाले लाभों के इकाई मूल्य का प्रमापीकरण भी करना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें पिछले परिणामों के आधार पर बेंच मार्किंग करने के अतिरिक्त परिणामों की गुणवत्ता और अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों का भी ध्यान रखना अनिवार्य है। इस प्रक्रिया से **'आउटकम बजट'** में कार्य सम्पादन हेतु किसी भी स्तर पर देर करने या रूकावट पैदा करने के स्थान पर निर्धारित धनराशि को सही समय और सही मात्रा और सही गुणवत्ता में पहुँचाने को सुनिश्चित करना होता है, ताकि निर्धारित धनराशि का उचित उपयोग सम्भव हो सके।

आउटकम बजट परफार्मेंस बजट का ही विस्तृत रूप है। ऐसे बजट से ही यह स्पष्ट रूप से पता चल सकेगा कि आउटकम बजट में निर्धारित किये गये लक्ष्यों को कहाँ तक प्राप्त करना सम्भव हो सका है। आशा की जानी चाहिए कि आउटकम बजट के माध्यम से अब जनता भी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन, गति और स्तर से रूबरू हो सकेगी।

5 **जेण्डर बजटिंग-** महिला अधिकारिता और सशक्तिकरण की दिशा में देश में महिला अधिकारिता और महिला सशक्तिकरण की दिशा में बजट के योगदान को स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा जेण्डर बजटिंग की शुरूआत भी की गयी है। जेण्डर बजटिंग के माध्यम से सरकार द्वारा महिलाओं के विकास, कल्याण और सशक्तिकरण से सम्बन्धित योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए प्रतिवर्ष बजट में एक निर्धारित राशि की व्यवस्था सुनिश्चित करने के प्रावधान किए जाते हैं।

विशेष रूप से महिला आधारित कार्यों मुख्यतः पानी की समस्या, शिशु स्वास्थ्य समस्या, घरेलू समस्या हेतु विशेष महिला अदालतों का गठन, स्वावलम्बन हेतु महिला रोजगार एवं कल्याण सम्बन्धित अनेक कार्यों का सम्पादन किया जाता है। भारत में इस तरह की अनेक योजनाएं संचालित हैं परन्तु इस बात पर विशेष बल होना चाहिए जिससे ऐसी योजनाएं व्यवहारिक उपयोगी तथा परिणामोन्मुखी हो जिससे निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

10.7 केन्दीय बजट के प्रमुख दस्तावेज (Important Documents of Central Budget)

सामान्यतया केन्द्रीय 'बजट' में निम्नांकित सात दस्तावेज शामिल होते हैं:

1) **वित्त मन्त्री का भाषण -** यह दस्तावेज दो भागों में बँटा होता है- पहले भाग में सामान्य आर्थिक परिदृश्य तथा दूसरे भाग में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर प्रस्ताव तथा सरकार की आर्थिक नीतियों का विवरण होता है।
2) **वार्षिक वित्तीय कथन -** इस दस्तावेज में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए अनुमानित सरकारी आय और व्यय पर विस्तृत टिप्पणियाँ दी जाती हैं।
3) **बजट का सार-** इस दस्तावेज में पूरे बजट का सारांश संक्षिप्त आँकड़ों और ग्राफों के रूप में दिया जाता है। विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों से केन्द्र सरकार को प्राप्त होने वाली धनराशि तथा उन्हें दी जाने वाली धनराशि का विवरण भी बजट सार में दिया जाता है।
4) **वित्त विधेयक-** इस दस्तावेज में सरकार द्वारा प्रस्तावित कर प्रस्तावों का विवरण दिया होता है।
5) **बजट प्राप्तियाँ-** इसमें आगामी वर्ष में सरकार को प्राप्त होने वाल अनुमानित राजस्व, पूँजी प्राप्तियाँ तथा घरेलू और विदेशी ऋण का विवरण दिया जाता है।
6) **बजट व्यय-** इस दस्तावेज में आगामी वर्ष में सरकार द्वारा व्यय की जाने वाली धनराशि, विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों पर आयोजनागत (planned) और गैर आयोजनागत (Non-planned) मदों के अन्तर्गत व्यय की जाने वाली धनराशि का विवरण दिया जाता है।
7) **अनुदान की मांग-** इसमें विभिन्न मंत्रालयों की अपनी निजी माँगों के साथ-साथ समस्त अनुदानों की माँगों का सारांश दिया जाता है।

10.8 बजट का निर्माण (Preparation of the Budget)

बजट निर्माण एक अत्यन्त विस्तृत एवं जटिल आर्थिक प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों और कई प्रमुख संस्थाओं का योगदान रहता है। हमारे यहाँ वित्तीय वर्ष की अवधि जिसके लिए बजट बनाया जाता है, प्रत्येक वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक की रहती है।

भारत में बजट को कार्यकारिणी सभा द्वारा बनाया जाता है। बजट तैयार करने के पूर्व विभिन्न विभागों को एक नोट भेजा जाता है जिसमें विभागों के अध्यक्षों से यह अनुरोध किया जाता है कि वे अपने-अपने विभाग के आय और व्ययों के लेखों का अनुमान लगाकर वित्त-मन्त्रालय को भेजें। वित्त-मन्त्रालय अगस्त तक विभिन्न मन्त्रालयों को एक अनुमान फॉर्म भेज देता है। इस अनुमान फॉर्म को भरकर अन्य मन्त्रालय वित्त-मन्त्रालय के पास अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक भेज देते हैं।

अनुमान फॉर्म को दो भागों में विभाजित किया जाता है- प्रथम भाग में वर्तमान आय तथा व्यय से सम्बन्धित अनुमान होते हैं, जबकि दूसरे भाग में आने वाले वर्ष के आय-व्यय सम्बन्धी अनुमान होते हैं। इस प्रकार प्रथम भाग का सम्बन्ध वर्तमान से तथा दूसरे भाग का सम्बन्ध भविष्य से होता है। पहले भाग में आय और व्यय अलग-अलग दिखाये जाते हैं, जिनके मुख्य शीर्षक निम्नवत् हैं

1) पिछले वर्ष की वार्षिक आय तथा व्यय,

2) चालू वर्ष के आय तथा व्यय सम्बन्धी स्वीकृती अनुमान,
3) चालू वर्ष तथा पिछले वर्ष के वास्तविक आय-व्यय सम्बन्धी आँकड़े,
4) भावी वर्ष के बजट अनुमान तथा
5) चालू वर्ष के दुहराये हुए आय-व्यय अनुमान।

1 बजट निर्माण में सावधानियाँ (Precaution for Budgetary Procedure)

बजट बनाने से पूर्व निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

1. संकट काल को छोड़कर सामान्य काल में बजट संतुलित होना चाहिए।
2. बजट में सभी प्रकार की आयों को सम्मिलित करनी चाहिए। बजट का आधार नकद होना चाहिए।
3. बजट के आय-व्यय अनुमान काल्पनिक न होकर वास्तविकता के आस-पास होना चाहिए।
4. बजट में समाप्ति के नियम को आधार मानकर जिस वर्ष के लिए व्यय की राशि स्वीकृत होती है। उस राशि को उसी वर्ष व्यय किया जाना चाहिए। यही व्यवस्था उत्तम व्यवस्था है और भारत में इसी व्यवस्था को लागू किया गया है।

2 बजट निर्माण प्रकिया (Budgetary Procedure)

बजट बनाने के पूर्व उपर्युक्त बातों को ध्यान मे रखा जाना चाहिए।इसके बाद बजट बनाने की प्रक्रिया शुरू करनी चाहिए। भारतवर्ष के सन्दर्भ में बजट की प्रक्रिया को पाँच चरणों में बाँटा जा सकता है:

1 बजट का प्राक्कलन या रूपरेखा- बजट निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत सर्वप्रथम वित्त मन्त्रालय द्वारा प्रशासनिक मन्त्रालयों, योजना आयोग तथा नियंत्रक महालेखा परीक्षक के सहयोग से बजट की रूपरेखा तैयार की जाती है। इसमें प्रशासकीय मन्त्रालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों से प्राप्त विवरण के आधार पर वित्त मन्त्रालय को प्रशासकीय आवश्यकताओं की जानकारी प्रदान करते हैं। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के बारे में परामर्श देता है तथा नियन्त्रक महालेखा परीक्षक **'बजट का प्राक्कलन'** तैयार करने हेतु वित्त मन्त्रालय को लेखा कौशल उपलब्ध कराता है। इस प्रकार पहले चरण में व्ययों के अनुमान तैयार किए जाते हैं जिसके लिए वित्त मन्त्रालय द्वारा जुलाई/अगस्त में विभिन्न मन्त्रालयों एवं विभागों को एक प्रारूप प्रेषित किया जाता है। इस प्रपत्र में विनियोग के शीर्षक तथा उपशीर्षक, गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय, वर्तमान वर्ष की स्वीकृत अनुमान, वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान, आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन के अतिरिक्त आय-व्यय में हुई कमी/बढ़ोत्तरी के कॉलम होते हैं। इस प्रपत्र को भरकर विभिन्न विभाग अपने प्रशासकीय मन्त्रालय को भेजते हैं, जो उन्हे संशोधित करके नवम्बर के मध्य तक वित्त मन्त्रालय को प्रेषित करते हैं। इस प्रपत्र की एक प्रति सभी सम्बन्धित विभाग, महालेखा परीक्षक के पास भी विचारार्थ भेजते हैं जो अपनी टिप्पणी के साथ इसे वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासकीय मन्त्रालय के पास भेजता है। प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा बजट के अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण सरकारी नीतियों के सन्दर्भ में किया जाता है, जबकि वित्त मन्त्रालय द्वारा इसका परीक्षण

मितव्ययिता के उद्देश्य से किया जाता है। व्यय के अनुमानों के परीक्षण के दौरान योजना आयोग से भी परामर्श लिया जाता है।

इस प्रकार व्ययों के अनुमान तैयार हो जाने के बाद वित्त मन्त्रालय द्वारा सरकारी आय अथवा राजस्व के अनुमान तैयार किये जाते हैं। इस हेतु वित्त मन्त्रालय द्वारा आयकर विभाग, सीमा शुल्क विभाग तथा केन्द्रीय उत्पादन कर विभाग से विगत वर्ष में संग्रह की गई धनराशि के आँकड़ों के आधार पर आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सम्भावित आय का अनुमान लगाया जाता है जिसके आधार पर आगामी वर्ष में करों की दरों का पुनर्निधारण करने हेतु प्रस्ताव तैयार किया जाता है।

2 बजट का दस्तावेज - बजट का दस्तावेज तैयार करने हेतु वित्त मन्त्रालय द्वारा समस्त विभागों की माँगो को एकत्रित करके तथा वित्तीय नीति सम्बन्धी मामलों में सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद में निर्णय लेकर दो अलग-अलग भागों में आय और व्यय का विवरण तैयार किया जाता है, जो बजट दस्तावेज कहलाता है। वित्त मन्त्री द्वारा इस दस्तावेज को सामान्यतया फरवरी के अन्तिम कार्य दिवस में लोक सभा मे प्रस्तुत किया जाता है और इसके बाद वित्त मन्त्री द्वारा बजट भाषण दिया जाता है जिसमें जनता, राजनेता, कर्मचारी तथा व्यापारी वर्ग आदि सभी लोग बड़ी उत्सुकता रखते हैं। भारत में संघीय शासन व्यवस्था होने के कारण राज्यों व केन्द्र के अलग-अलग बजट होते हैं। 1911 के बाद भारत में रेलवे बजट को अलग से प्रस्तुत किया जाने लगा है।

3 बजट की स्वीकृति- बजट के बन जाने के बाद उसे राज्य सभा व लोकसभा के द्वारा पारित कराया जाता है। बजट पर संसद में चर्चा करायी जाती है। इस हेतु लोक सभा के कार्य संचालन नियम संख्या 207 (1) (2) में बजट प्रस्तुतीकरण के बाद की जाने वाली सामान्य चर्चा के दिशा-निर्देश उल्लिखित हैं। इसमें प्रावधान यह है कि संसद सम्पूर्ण बजट के बारे में विचार-विमर्श कर सकती है, लेकिन वाद-विवाद के मध्य न तो कोई प्रस्ताव पेश किया जा सकता है और न ही सदन में बजट पर मतदान कराया जा सकता है। लोक सभा में अलग-अलग मन्त्रालयों के लिए क्रमवार अनुदान माँगों को पेश किया जाता है। हमारा आम बजट 109 माँगों में विभाजित रहता है जिसमें 103 माँगे लोक व्यय से सम्बन्धित हैं तथा 6 माँगे सुरक्षा व्यय से सम्बन्धित होती हैं।

बजट जब तक स्वीकृत नहीं हो जाता है तब तक वह प्रभावी नहीं माना जाता है। लोकसभा द्वारा बजट का पारित होना अनिवार्य है। संसद के सामने वित्तमंत्री के द्वारा बजट का लेखा प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वह अपना बजट- भाषण भी देता है, जिसमें पूरे वर्ष की आर्थिक नीति की समीक्षा होती है। बजट- भाषण में नये करों व नये व्ययों का विवरण दिया जाता है और ऐसा करने का उद्धेश्य भी स्पष्ट किया जाता है। बजट घाटा अथवा बचत के भी हो सकते हैं। अतः वित्तमन्त्री को इस बात पर प्रकाश डालना होता है कि उसने ऐसा बजट क्यों बनाया? इस प्रकार के बजट की क्या आवश्यकता पड़ गयी और इससे सामान्य जनता को क्या लाभ होने वाला है, आदि। इन सभी बातों को स्पष्टीकरण बजट- भाषण में दिया जाता है। वित्त- मन्त्री द्वारा सदन में जो भाषण सुनाया जाता है, उसकी छपी हुई एक-एक प्रति सदस्यों में वितरित की जाती है।

जब वित्तमन्त्री अपना पूरा भाषण पढ़ देते हैं तब उस भाषण पर बहस के लिए अलग से दिन निश्चित कर दिया जाता है। बजट पर बहस का दिन निश्चित कर लेने के बाद फिर उस पर प़क्ष-विपक्ष के सदस्यों के द्वारा सामान्य रूप से चर्चा की जाती है। कुछ मदें होती हैं जिन पर पक्ष अथवा विपक्ष के सदस्य समान रूप से उसकी आलोचना या उसका सराहना कर सकते हैं। बजट पर सामान्य बहस हो जाने के बाद विभिन्न विभागों के मन्त्री अपने-अपने विभागों के लिए अनुदानों की माँग करते हैं और इन पर अलग-अगल बहसें होती हैं।

व्यय की कुछ मदें ऐसी होती है जिनके लिए संचित कोष से प्रत्यक्ष माँग की जाती है। इन मदों पर सदस्यों को मतदान करने का अधिकार नहीं होता है, परन्तु इन मदों पर चर्चा हो सकती है। इस चर्चा का लाभ यह होता है कि सरकार को यह पता लग जाता है कि बजट के प्रति सदस्यों की क्या धारणा है। नियम बनाने वाली सभा के सदस्यों को सरकार के प्रत्येक खर्चे पर अपनी राय प्रकट करने का अधिकार नहीं है।

अनुदान माँगों पर विचार होते समय विपक्षी सदस्यों को बजट की आलोचना का पूरा अवसर मिलता है और उनके द्वारा अनेक प्रकार की कटौतियों के प्रस्ताव सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। कटौती का उद्देश्य मितव्ययता होता है। इस स्थिति को वित्तमन्त्री के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। वह यह बताता है कि अमुक-अमुक मद में अमुक-अमुक कारणों से कटौती नहीं हो सकती हैं, या हो भी सकती है। यदि वित्तमन्त्री के स्पष्टीकरण से सदस्य सन्तुष्ट न हों तो वे उस पर मतदान करा सकते हैं। यदि कटौती का प्रस्ताव पारित नहीं होता, तो इसका अभिप्राय सरकार के प्रति अविश्वास का मत हो सकता है। परन्तु ऐसी दशा में सरकार अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य नहीं है। यदि कटौतियों के सम्बन्ध में वित्तमन्त्री का स्पष्टीकरण सदस्यों को सन्तुष्ट कर देता है तो वे कटौती का प्रस्ताव वापस ले लेते हैं और मतदान नहीं होता।

अनुदान माँगों पर विचार- विमर्श की अवधि 26 दिन की होती है। इसमें विनियोजन विधेयक पास करवाया जाता है, जिससे सरकार को सरकारी कोष से धन खर्च करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके बावजूद व्यय की प्रतिपूर्ति हेतु- वित्तीय साधनों की प्राप्ति कर प्रस्तावों द्वारा ही सम्भव होती है, जिसके लिए वित्त विधेयक को प्रस्तुत किया जाता है। वित्त विधेयक में करों की दरों में संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। विनियोजन विधेयक तथा वित्त विधेयक दोनों सदनों-लोक सभा एवं राज्य सभा के लिए प्रेषित किया जाता है जिसके बाद राष्ट्रपति के हस्ताक्षरोपरान्त ही विधेयक कानून बन जाता है। इसी तरह राज्यों का बजट विधान सभाओं तथा विधान परिषदों से पास कराया जाता है और जब माँगों पर वोंटिग समाप्त हो जाती है तब केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपाल की स्वीकृति ली जाती है। इन लोगों को यह भी अधिकार होता है कि जिन लोगों की मदों को विधानसभा ने स्वीक्त नहीं किया है उनके लिए भी स्वीकृति दे दें। यदि वे चाहें तो बजट को पुनः विचार के लिए विधानसभा को भेज सकते हैं तथा पुनः स्वीकृति ली जाती है।

4 बजट का क्रियान्यवन- सामान्यतया जब बजट की माँगों पर बहस समाप्त हो जाती है तब एक विनिमय बिल रखा जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य पारित की गयी माँगों को कानूनी रूप प्रदान करना तथा संचित कोष में से धन निकालने का अधिकार प्राप्त करना होता है। भारतवर्ष में करों से प्राप्त होने वाली आय को संचित कोष में जमा किया जाता है और बाद में इस राशि को धीरे-धीरे निकाला जाता है। विनियोग बिल के पारित हो जाने पर संसद द्वारा पारित की गयी माँगों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, वे माँगे स्थायी रूप ले लेती हैं। विनियोग बिल के पारित हो जाने पर केन्द्रीय आय बोर्ड को आय एकत्र करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस बोर्ड में विभिन्न विभाग आय को प्राप्त करके कोषागार में जमा करा देते हैं और बाद में इस राशि का उपयोग होने लगता है।

बजट के पास हो जाने के बाद कार्यकारिणी सभा इस बात पर नजर रखती है कि बजट में व्यय के लिए जो राशि स्वीकृत की गयी है उस राशि को व्यय किया जा रहा है अथवा नहीं। इस लेखे की जाँच करने के लिए एक **'राजकीय हिसाब समिति'** होती है जो इसकी जाँच करती है। बजट के पास हो जाने पर उसकी सूचना विभिन्न विभागों द्वारा भेज दी जाती है। इसके बाद कोई भी अधिकारी स्वीकृत राशि को तब तक व्यय नहीं कर सकता है जब कि वह ऐसा करने के लिए अपने से उच्च अधिकारियों की स्वीकृति न ले लेता हो। इस तरह बजट के सही क्रियान्वयन हेतु यह ध्यान दिया जाता है कि बजट के क्रियान्वयन से सम्बन्धित सरकारी तन्त्र पूर्ण निष्ठा और कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित हो।

बजट के कार्यान्वयन में सामान्यतया पाँच प्रक्रियाएं सम्मिलित रहती हैं।

(1) वित्तीय स्रोतों का एकत्रीकरण

(2) वित्तीय संसाधनों का संरक्षण,

(3) वित्तीय संसाधनों का वितरण,

(4) सरकारी आय-व्यय का लेखा,

(5) लेखांकन।

बजट के क्रियान्वयन में लेखांकन का विशेष महत्व होता है। इसी वजह से **'नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक'** के अधीन लेखा एवं अंकेक्षण विभाग की अलग से स्थापना की गई है, जो सभी प्रकार के सरकारी लेन-देन के ब्यौरेवार वर्गीकरण तथा मासिक एवं वार्षिक संकलन आदि के लिए उत्तरदायी होता है। प्रत्येक राज्य में इसके अधीन एक महालेखाकार का कार्यालय स्थापित किया गया है। वित्तीय कोषों का लेखांकन चार स्तरों पर सम्पादित होता है –

(1) प्रारम्भिक लेखों की पूर्ति उपकोषागार स्तर पर होती है। जहाँ सभी प्रकार का लेन-देन होता है।

(2) दूसरे चरण में शीर्षकों के अनुसार सभी प्रकार के लेन-देन का वर्गीकरण किया जाता है।

(3) तीसरे चरण में लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन किया जाता है और

(4) चौथे चरण में भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा वार्षिक संकलन किया जाता है।

5 वित्तीय कोषों का लेखांकन एवं लेखा परीक्षण- सामान्यतया सभी सरकारी विभागों द्वारा प्रतिमाह के हिसाब महालेखाकार के कार्यालय को प्रेषित किए जाते हैं। यहाँ पर इन्हें आय-व्यय के लिए

निर्धारित विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है और फिर इन लेखों का नियमित रूप से लेखाधिकारियों द्वारा अंकेक्षण किया जाता है। अंकेक्षण के बाद महालेखा परीक्षक द्वारा इन लेखों का वार्षिक संकलन राजस्व खाता, पूँजीगत खाता, ऋण खाता तथा दूरस्थ प्राप्तियों मुख्य चार शीर्षकों में किया जाता है, जो बजट-सत्र के समय संसद के समक्ष प्रस्तुए किए जाते हैं और इस प्रकार बजट का अन्तिम चरण पूर्ण होकर बजट सम्बन्धी प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

10.9 बजट के अवयव (Factors of Budget)

बजट के दो अवयव- पहला सार्वजनिक आय तथा दूसरा सार्वजनिक व्यय होते हैं। किसी भी प्रकार के बजट का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है - सरकार को एक वित्तीय वर्ष में प्राप्त होने वाली आय, जिसे हम सार्वजनिक आय कहते हैं तथा उसी वित्तीय वर्ष में होने वाले व्यय का अनुमान - जिसे हम सार्वजनिक व्यय कहते हैं।

जिसका विवरण निम्न रूप में दिया जा सकता है:

(1) सार्वजनिक आय - बजट में सार्वजनिक आय को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

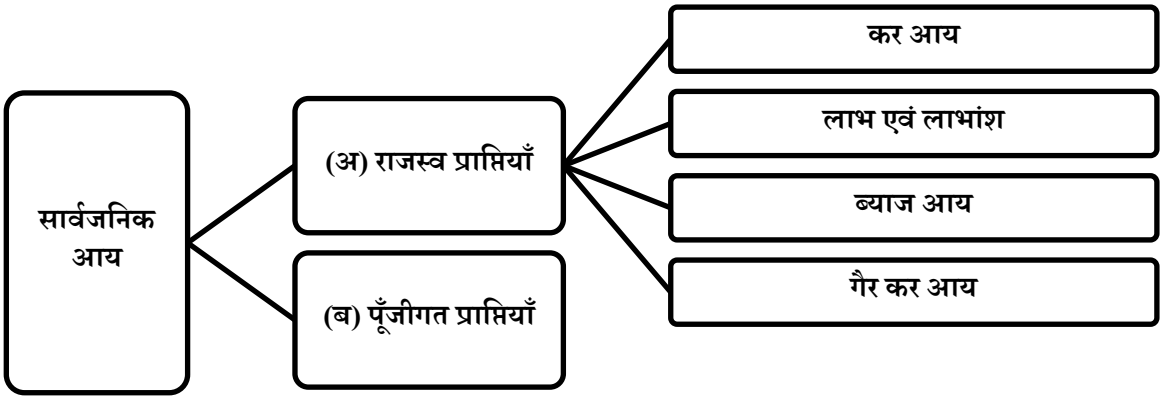

(अ) राजस्व प्राप्तियाँ - इसके अन्तर्गत उस आय को रखा जाता है, जिसका सम्बन्ध उसी वित्तीय वर्ष से होता है इसे चालू खाता के नाम से भी जाना जाता है। इस खाते में आय के उन स्रोतों को शामिल किया जाता है जिनके बदले में कोई भुगतान नहीं करना होता है, जैसे - करों द्वारा प्राप्त आय, सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा अर्जित लाभ, सरकारी उधारों पर प्राप्त ब्याज तथा गैर-कर आय। ऐसे राजस्व प्राप्तियों से सरकार की देयताओं में किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं होती। इसके अन्तर्गत निम्न आते हैं:

1. कर आय - करों द्वारा प्राप्त होने वाली आय दो प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होती है - (क) प्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय तथा (ख) अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय।

(क) प्रत्यक्ष कर - केन्द्र सरकार आय-कर (व्यक्तियों, अविभाजित हिन्दू परिवारों तथा संस्थाओं की आय पर), निगम-कर (कम्पनियों की आय पर कर), धन-कर, एस्टेट कर, उपहार-कर, व्यय-कर तथा ब्याज-कर प्राप्त करती है, जबकि राज्य सरकारें - होटल, भू-राजस्व, कृषि आय, व्यवसाय, गैर-शहरी अचल सम्पत्तियों एवं बेरोजगारों पर कर प्राप्त करती है।

(ख)**अप्रत्यक्ष कर -** अप्रत्यक्ष करों के रूप में केन्द्र सरकार सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, केन्द्रीय बिक्री-कर, तथा सेवा-कर प्राप्त करती है, जबकि राज्य सरकारें बिक्री-कर/व्यापार-कर, डीजल/पेट्रोल पर बिक्री-कर, स्टाम्प एवं पंजीयन शुल्क, राज्य उत्पाद शुल्क, वाहनों पर कर, वस्तुओं एवं यात्रियों पर परिवहन कर, विद्युत पर कर एवं शुल्क, गन्ने की खरीद पर शुल्क तथा उपकर, प्रवेश कर, विज्ञापन कर, शिक्षा उपकर, कच्चे जूट पर कर एवं सट्टेबाजी पर कर प्राप्त करती है।

2. लाभ एवं लाभांश - केन्द्र सरकार स्वयं कई प्रकार की औद्योगिक तथा वित्तीय संस्थाओं और सेवाओं का संचालन करती है, जैसे - तेल तथा प्राकृतिक गैस निगम (ONGC), स्टील अथॉरिटी आफ इण्डिया लिमिटेड (SAIL), राज्य व्यापार निगम (STC), खनिज तथा धातु व्यापार निगम (MMTC), राष्ट्रीयकृत बैंक, जीवन बीमा निगम आदि। सरकार को इनसे प्रतिवर्ष लाभ तथा लाभांश प्राप्त होता है।

3. ब्याज आय - कई बार केन्द्र (भारत सरकार) के द्वारा राज्य सरकारों, अन्य संस्थाओं तथा विदेशी सरकारों को उधार दिया जाता है जिस पर केन्द्र सरकार को वार्षिक ब्याज के रूप में आय मिलती है।

4. करोत्तर या गैर कर आय - सरकार द्वारा प्रदत्त सेवाओं, यथा - डाकतार सेवाएं, रेडियो तथा TV के विज्ञापन आदि पर शुल्क प्राप्त होता है, जिसे हम करोत्तर आय कहते हैं।

करोत्तर आय में मुख्यतः केन्द्र सरकार अपने सार्वजनिक प्रतिष्ठानों - रेलवे, डाक अन्य से प्राप्त निवल अंशदानों को प्राप्त करती है। इसके साथ-साथ ब्याज प्राप्तियाँ, राजकोषीय सेवाओं, सामान्य सेवाओं, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं, आर्थिक सेवाओं तथा बाह्य सहायताओं को भी करोत्तर आय में सम्मिलित किया जाता है।

राज्य सरकारों द्वारा उनके वाणिज्यिक उपक्रमों से प्राप्त निवल अंशदान, सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त लाभांश तथा आय, दिये गये उधारों से प्राप्त ब्याज, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं से प्राप्त आय तथा आर्थिक सेवाओं से प्राप्त आय को करोत्तर आयों में सम्मिलित किया जाता है।

(ब) पूँजीगत प्राप्तियाँ:- पूँजीगत प्राप्तियों को पूँजी खाता (Capital Account) भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत आय के उन समस्त स्त्रोतों को रखा जाता है, जिसके बदले में भविष्य में भुगतान करना, आवश्यक होता है। यद्यपि कि यह भुगतान उसी वर्ष में न होकर आगामी वित्तीय वर्ष में किये जाते हैं। इस प्रकार राजस्व प्राप्तियों की प्रकृति जहाँ अल्पकालीक किस्म की होती है, वहीं पूँजीगत प्राप्तियों की प्रकृति दीर्घकालीक किस्म की होती है। पूँजीगत खाते के प्रमुख स्त्रोत हैं - निवल घरेलू ऋण, निवल विदेशी ऋण, ऋण वापसी तथा लोक लेखा प्राप्तियाँ।

राज्य सरकारों के पूँजीगत प्राप्तियों में निवल बाजारी ऋण, केन्द्र से प्राप्त ऋण, अन्य निवल ऋण, निवल राज्य भविष्य निधियाँ तथा विविध पूँजीगत प्राप्तियों को सम्मिलित किया जाता है।

2. सार्वजनिक व्यय - सार्वजनिक आय की भाँति सार्वजनिक व्यय को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है:

(अ) राजस्व व्यय तथा (ब) पूँजीगत व्यय।

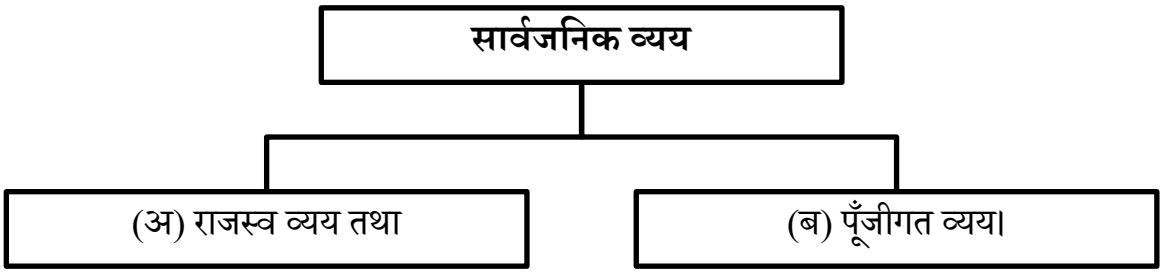

(अ) राजस्व व्यय - सरकार के बजट में सर्वप्रथम राजस्व व्यय या चालू व्यय को विकासात्मक व्यय तथा गैर विकासात्मक व्यय के रूप में विभाजित किया जा सकता है। विकासात्मक व्यय में सामाजिक एवं सामुदायिक सेवायें (शिक्षा, कला एवं संस्कृति, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सेवायें, चिकित्सा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, आवास, रोजगार, सूचना एवं प्रचार अन्य), सामान्य आर्थिक सेवायें (विदेश व्यापार एवं निर्यात सम्बर्धन, सहकारिता अन्य), कृषि एवं सहायक सेवायें, उद्योग एवं खनिज, रासायनिक उर्वरक सब्सिडी; विद्युत, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण, परिवहन एवं संचार, लोक निर्माण, राज्यों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों को अनुदान तथा राज्यों का सांविधिक अनुदान आदि सम्मिलित है। गैर विकासात्मक व्यय के अन्तर्गत मुख्यत सरकारी सेवाओं (प्रतिरक्षा, प्रशासकीय, आर्थिक तथा सामाजिक) पर होने वाला व्यय, सरकारी सब्सिडी, ब्याज अदायगी, सरकारी अनुदान सम्मिलित हैं।

(ब) पूँजीगत व्यय - पूँजीगत खाते व्यय में सरकार उन व्ययों को सम्मिलित करती है, जिनमें व्यय तो चालू वर्ष में किया जाता है, किन्तु उसका प्रभाव सामाजिक कल्याण में चालू वर्ष के साथ-साथ आगामी वर्षों में भी होता रहता है। उदाहरण के लिये किसी चिकित्सालय अथवा विद्यालय की स्थापना से वर्तमान में भवन, वाहन, सर्जरी के सामान पर किया गया व्यय आगामी वर्षों में भी लाभ प्रदान करता रहेगा। इस कारण इन पर होने वाला व्यय पूँजी खाते में सम्मिलित किया जाता है, जबकि डॉक्टर, शिक्षक, दवा अन्य पर किया जाने वाले मासिक व्यय चालू खाते का व्यय माना जाता है।

10.10 केन्द्र तथा राज्य सरकारों के कोष (Central and State Governments Funds)

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के कोषों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। चालू वित्तीय वर्ष में होने वाले व्यय के अनुमान लगाये जाते हैं। जिसको चालू व्यय (राजस्व व्यय) तथा खाता व्यय (पूँजीगत व्यय) में बांटा जाता है।

1. संचित कोष (Consolidated Fund)- इसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त सभी आय उनके द्वारा स्थापित संचित कोषों में जमा किया जाता है। इसमें कर तथा करोत्तर आयों, ऋण प्राप्तियों अन्य सभी आयों को सम्मिलित किया जाता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के सभी व्यय भी उनके द्वारा स्थापित संचित कोषों से ही किये जाते हैं। इस कोष से संविधान में निर्दिष्ट कुछ व्ययों को छोड़कर (जैसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक आदि के वेतन भुगतान अन्य शेष व्यय हेतु केन्द्र सरकार संसद से तथा राज्य सरकारें राज्य संचित कोष से व्यय हेतु विधान सभाओं से अनुमोदन प्राप्त करती हैं।

2. **आकस्मिक कोष (Contigency Fund)-** इस कोष से ऐसे आकस्मिक व्ययों को पूरा किया जाता है, जिनकी तत्काल आवश्यकता होती है। ऐसे व्ययों को तत्काल संसद अथवा विधान सभाओं द्वारा स्वीकृत कराना संभव नहीं होता, जिनको व्यय के बाद संसद/राज्य विधान सभाओं से स्वीकृति करा लिया जाता है। इस कोष का कोई भी अंश व्यय हो जाने के बाद सदन की अनुमति से संचित कोष से भरपाई की जाती है।
3. **लोक खाता (Public Account)-** इस खाते में एकत्रित धनराशि सरकार की नहीं होती। इस खाते में लघु बचतों, जमाओं और भविष्य निधि के रूप में प्राप्त सरकारी जमाओं में से किसी भी प्रकार के भुगतान हेतु सरकार को लोक सभा/राज्य विधान सभाओं से अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।

10.11 स्वतंत्रतोपरान्त केन्द्रीय बजट की मुख्य बातें (Some Important Facts of Central Budget after Independence)

(अ) सन् 1947 से 2012-13 के बीच केन्द्रीय बजट प्रस्तुत करने वाले वित्त एवं प्रधान मंत्रियों को निम्न तालिका 10.1 में देख सकते हैं।

तालिका 10.1 बजट प्रस्तुत करने वाले विभिन्न वित्त मन्त्री

क्र.स.	अवधि	वित्त मंत्री
1.	1947-49	आरके षणमुखाम चेट्टी
2.	1950-51	डॉ. जॉन मथाई
3.	1951-57	डॉ. सी.डी. देशमुख
4.	1957-58	टी.टी. कृष्णामचारी
5.	1958-59	जवाहरलाल नेहरू
6.	1959-64	मोरारजी आर. देसाई
7.	1964-65	टी.टी. कृष्णामचारी
8.	1966-67	सचिन चौधरी
9.	1967-69	मोरारजी देसाई आर, उप प्रधानमंत्री
10.	1969-70	श्रीमती इन्दिरा गांधी
11.	1971-74	वाई.बी. चव्हाण
12.	1975-77	सी. सुब्रमण्यम
13.	1977-78	एच.एम. पटेल
14.	1979	एच एन बहुगुणा
15.	1979	चरण सिंह, उप प्रधानमंत्री
16.	1980-82	आर. वेंकटरमन
17.	1982-84	प्रणव मुखर्जी
18.	1984-86	वी.पी. सिंह
19.	1987	राजीव गांधी
20.	1987-88	एन.डी. तिवारी

21.	1988-89	एस.बी. चव्हाण
22.	1989-90	मधु दण्डवते
23.	1990-91	यशवन्त सिन्हा
24.	1991-96	डॉ. मनमोहन सिंह
25.	1996	यशवंत सिन्हा
26.	1996-98	पी. चिदम्बरम्
27.	1998-02	यशवंत सिन्हा
28.	2002-04	जसवंत सिंह
29.	2004-08	पी. चिदम्बरम
30.	2009-12	प्रणव मुखर्जी
31.	2012-14	पी. चिदम्बरम
32.	2014	श्री अरुण जेटली
33.	2019	श्रीमती निर्मला सीतारमण

Source https://dor.gov.in/

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार की बजट नीति में अभूतपूर्व परिवर्तन आये। राष्ट्रीय सरकार ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बजटों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। उसके मुख्य उद्देश्य देश में बेरोजगारी को दूर करना, आय की असमानता को कम करना तथा लोक-कल्याणकारी कार्यों का संचालन करना था। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया। इस प्रकार समय-समय पर भारत सरकार ने बजट-नीति में नये-नये मोड़ देने प्रारम्भ कर दिये।

स्वतन्त्रता के बाद देश स्वतंत्र व्यापार की नीति को समाप्त कर दिया गया। संविधान के अनुसार एक ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करने की सोची गयी, जिसमें आर्थिक विकेन्द्रीकरण को महत्व मिले। देश के आर्थिक विकास के लिए ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाने लगे। उत्पादन के साधनों का मितव्ययतापूर्वक उपयोग करने तथा सार्वजनिक उपक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये जाने लगे। व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामूहिक व सामाजिक हित को अधिक महत्व दिया जाने लगा। बचत करने की इच्छा व योग्यता को प्रोत्साहित करने के लिए नये-नये उपाय किये जाने लगे। प्रशुल्क नीति में बड़े भारी परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। रोजगार प्रदान करना सरकार का मुख्य उद्देश्य बन गया। लोगों का आर्थिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए राहत के कार्यों को भी प्रमुख स्थान दिया जाने लगा। कुल मिलाकर लोक-कल्याणकारी राज्य की कल्पना को साकार करना ही सरकार का मुख्य उद्देश्य था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भारत के लिए *'प्रजातान्त्रिक समाजवादी समाज'* की नीति को तन, मन, धन से स्वीकार किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए देश की राजकोषीय व बजट-नीति का महत्वपूर्ण स्थान हो गया।

स्वतन्त्रता के बाद भारत को विरासत में अभावों के अतिरिक्त और कुछ हासिल नहीं हुआ था। भले ही उसे राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी, परन्तु अब उसे आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना था। अतः स्वतन्त्र होते ही भारत में शरणार्थी समस्या, युद्ध, खाद्य-समस्या, बेकारी, बीमारी जैसी भयंकर समस्याओं से लड़ने के लिए नये-नये कार्यक्रम बनाये जाने लगे। अंग्रेज मुद्रा-प्रसार के बीज बो गये थे, सरकार को उस पर नियन्त्रण लगाना था।

आयातों को कम करने तथा निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए नये-नये उपाय अपनाने थे। प्रशासनिक व सैन्य-बल पर लगातार व्यय बढ़ रहा था। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय, कराधान, सार्वजनिक ऋण, वित्तीय प्रशासन की व्यवस्था आदि में अनेकानेक परिवर्तन करने पड़े और उसी के अनुरूप बजटों का निर्माण होने लगा।

(ब) योजना-काल में बजट-नीति (Budgatry Policy During Plans)- भारत में 1951 में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ किया गया था। अब भारत के सामने एक नये कार्यक्रम को अपनाने की चुनौती आ खड़ी हुई थी। उसके व्यय-भार बढ़ने प्रारम्भ हो गये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। योजना-काल में भारत सरकार के राजस्व पूँजीगत खातों में आय-व्यय बढ़ने लगा। पाँचवी योजना तक राजस्व खाते के आय और व्यय में लगभग आठ गुना वृद्धि हो चुकी थी। समाजवादी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण सेवाओं पर बड़े पैमाने पर व्यय किया जाने लगा। बार-बार के युद्धों के कारण प्रतिरक्षा-व्यय में वृद्धि होने लगी। दूसरी ओर, नागरिक प्रशासन में भी व्यय-भार बढ़ने लगा। जिस प्रकार संघ सरकार के व्ययों में वृद्धि होने लगी उसी प्रकार राज्य सरकारों के व्ययों में भी वृद्धि होने लगी, क्योंकि राज्य सरकारों को भी अपने-अपने क्षेत्रों में अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को अपनाना था। राज्यों के आय के साधन बेलोच थे, जबकि उनका व्यय लोचदार। परिणामस्वरूप राज्यों की केन्द्र के प्रति निर्भरता लगातार बढ़ती गयी और केन्द्र के द्वारा राज्यों को दिया जाने वाला अनुदान भी बढ़ता गया। वित्त आयोगों द्वारा राज्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करने के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये गये जाने लगे जिन्हें केन्द्रीय सरकार को स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार केन्द्र का व्यय-भार और अधिक बढ़ गया। यदि केन्द्रीय सरकार वित्त आयोगों की सिफारिशों को स्वीकार न करती तो राज्यों व केन्द्र के बीच मनमुटाव होता रहता। यदि हम आज से 56 वर्ष पूर्व के भारतीय बजटों का अध्ययन करें तो आज की तुलना में हम पायेंगे कि बजटों की नीति पूर्णतया बदल चुकी है और भविष्य में भारतीय बजट का स्वरूप कैसा होगा, यह कहा नहीं जा सकता है। 1991 की आर्थिक नीतियों में परिवर्तन के साथ-साथ बजटों में परितर्वन आना स्वाभाविक है।

भारत सरकार की अब तक की बजट-नीति में मिश्रित प्रभाव देखने को मिले हैं। भारत की बजट-नीति आर्थिक विकास के लिए साधनों को गतिशील बनाने की दृष्टि से अनुकूल रही है, भले ही इसके स्फीतिक प्रभाव भी देखने में आये हैं। इसके अतिरिक्त, आय की असमानता व मूल्यों में निरन्तर वृद्धि जारी रही, फिर भी सरकार का यह प्रयन्त रहा कि देश में एकाधिकार तथा आर्थिक केन्द्रीकरण कम से कम हो। आय की असमानता को दूर करने के लिए ऊँची आय वालों पर ऊँची दर के करारोपण किया जाने लगा। अनार्जित आय के सन्दर्भ में भी इसी प्रकार की नीति अपनायी जाने लगी। बड़े पैमाने पर व्यय करने के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में रोजगार के अवसर सुलभ कराये जाने लगे। ग्रामीण क्षेत्रों में भी छिपी बेरोजगारी दूर होने लगी। इतने पर भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। फिर भी प्रत्येक बजट में ऐसा प्रयास किया जा रहा है कि हम उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही बेरोजगारी की समस्या का हल कर सकें और आर्थिक विकास के कार्यक्रम को भी तेजी से लागू करें।

जैसा कि तालिका 10.1 से स्पष्ट है कि अलग-अलग पार्टियों की सरकारें देश की आवश्यकता तथा अपने चुनावी घोषणाओं के अनुरूप समय-समय पर बजट नीतियों में परिवर्तन करती रही हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू का बजट *'प्रजातांत्रिक समाजवादी समाज'* की स्थापना था, तो लाल बहादुर शास्त्री जी का बजट कृषि पर

बल देना था। इन्दिरा गॉधी जी का बजट समाजवादी था, तो मोरारजी का बजट व्यापार को प्रोत्साहन करने वाला था। चरण सिंह जी का बजट कृषि को प्रोत्साहित करने वाला था, तो राजीव गांधी जी का बजट नई तकनीक की तरफ प्रेरित था। विश्वनाथ प्रताप सिंह का बजट सामान्य माना जाता है, जबकि चन्द्रशेखर जी का बजट समाजवादी माना जाता है। एच. डी. देवगौड़ा का बजट कृषि विकास आधारित था तो वाजपेयी जी का बजट समन्वयवादी था जबकि मनमोहन जी का बजट नई आर्थिक नीतियों वाला माना जाता है। जिसके अन्तर्गत क्रमशः समाजवादी नीतियों का परित्याग करते हुए उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की दिशा में तेजी से बढ़ना था।

1991 में वित्तमंत्री के रूप में पुष्पित पल्लवित मनमोहन सिंह जी का उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (Liberalization, Privatization and Globalization – LPG) बजट 2013 में बढ़ती महंगाई, रूपए की घटती क्रय शक्ति, निर्यात-आयात की बढ़ती खाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, घाटे की स्थिति अन्य बिगड़ती हुई ऐसी परिस्थिति बना चुकी है, जहाँ भारतीय अर्थव्यवस्था की दशा 1991 की स्थिति जैसी ही खराब मानी जा रही है।

10.12 बजट सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य (Some Important Facts of the Budget)

बजट सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को निम्न रूप में लिखा जा सकता है:

1) स्वतंत्र भारत का पहला बजट 26 नवम्बर, 1947 को, पहले वित्त मंत्री आर.के. षणमुखम् शेट्टी द्वारा पेश किया गया था, यह बजट 15 अगस्त, 1947 से 31 मार्च, 1948 तक की साढ़े सात माह की अवधि के लिए था।
2) जॉन मथाई को वर्ष 1950 में गणतंत्र भारत का पहला केन्द्रीय बजट पेश करने का गौरव हासिल हुआ।
3) गैर हिन्दी भाषी होने के बावजूद सी.डी. देशमुख ने वित्त मंत्री रहते हुए 1955-1956 का बजट पेश करने से पहले इस बात को सुनिश्चित किया था कि बजट के सभी दस्तावेज हिन्दी में भी छपे इससे पूर्व ये सिर्फ अंग्रेजी में ही छपते थे।
4) देश में चार प्रधानमंत्री ऐसे हुए हैं, जो वित्त मंत्री पद पर भी काम कर चुके हैं, मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह, विश्वनाथ प्रताप सिंह और मनमोहन सिंह।
5) प्रधानमंत्री पद पर रहते हुए जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी और मनमोहन सिंह के पास वित्त मंत्री पद भी रहा।
6) जवाहरलाल नेहरू ने वर्ष 1958-59 का बजट पेश किया और उस बजट को पेश करते हुए उन्होंने घोषणा की थी, अगले साल से बजट 28 फरवरी के दिन ही पेश किया जाएगा
7) भारत में सबसे ज्यादा बजट पेश करने वाले वित्त मंत्री मोरारजी देसाई थे, उन्होने कुल दस बजट पेश किए, जबकि पी. चिदम्बरम ने आठ बजट पेश किए।
8) जॉन मथाई भारत के तीसरे वित्त मंत्री बने, उन्होंने संसद में 1949-50 व 1950-51 के दो बजट पेश किए।
9) वित्त मंत्रालय का भार प्रधानमंत्री के पास होने के बावजूद भी विदेशी मामलों के मंत्री प्रणव मुखर्जी ने वर्ष 2009-10 का अन्तरिम बजट पेश किया।

10) हेमवती नन्दन बहुगुणा, के.सी. नियोगी और मनमोहन सिंह वित्त मंत्री रहने के बावजूद भी बजट पेश नहीं कर पाए।
11) वित्त मंत्री के रूप में वर्ष 1991 में डॉ. मनमोहन सिंह ने देश में आर्थिक उदारीकरण की नीति लागू करने की घोषणा की।
12) अंग्रेजों ने भारत के लिए जब बजट पेश करना शुरू किया तो उसके लिए शाम के पाँच बजे का समय रखा गया था, लेकिन 1999 में राजग सरकार (N.D.A. government) के वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने बजट पेश करने का समय दिन के 11 बजे कर दिया।
13) 25 फरवरी, 1992 में भारत में पहली बार रेल बजट और 29 फरवरी, 1992 को सामान्य बजट का टेलीविजन पर प्रसारण शुरू हुआ था।
14) केन्द्र तथा राज्यों के बीच वितरित होने वाले राशियों एवं अनुदानों पर क्रमशः विवाद बढ़ते गये।
15) केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर सर्वप्रथम 1983 में गठित राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति आर.यस. सरकारिया के रिपोर्ट का 1988 से लागू होना।
16) केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर दूसरा 2007 में गठित राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति एम.एम. पुंछी की रिपोर्ट एवं उस पर निर्णय लिया जाना।

10.13 बजट सम्बन्धी समस्यायें एवं सुधार हेतु सुझाव (Related Problems of the Budget and Suggestions for Improvements)

बजट सम्बन्धी कुछ मुख्य समस्याओं तथा सुधारों हेतु सुझावों को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:

1) बजट निर्माण एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। इसमें सभी मंत्रालयों को अपना-अपना बजट बनाना होता है। बजट बनाते समय महालेखापरीक्षक की टिप्पणी तथा प्रशासकीय सूक्ष्म परीक्षणों एवं योजना आयोग तथा अन्य सम्बन्धित विभागों की टिप्पणीयॉ अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। जिनका व्यवहारिक समाधन देते हुए बजट बनाना चाहिये।
2) केन्द्र तथा राज्य सरकारें बजट के आर्थिक पक्ष को कम महत्व देते हुए सामान्यतया लोक लुभावन तथा चुनावी बजट बनाती रहती हैं। जिसमें अनावश्यक अपव्यय होता है, जिससे राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक विकास-दर में गिरावट आती है। इस हेतु राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर अर्थव्यवस्था की वास्तविक वृद्धि का ध्यान रखा जाना चाहिए।
3) ऐसी राज्य सरकारें जहाँ केन्द्र के अतिरिक्त अन्य पार्टी की सरकारें हैं, सामान्यतया केन्द्र पर सौतेलेपन का आरोप लगाती रहती हैं। उनका कथन है कि केन्द्र अपने पिछलग्गू तथा समर्थित पार्टियों की सरकारों को अपेक्षाकृत विशेष महत्व देकर अपने विरोधी राज्य सरकारों के उचित माँगों को भी नकारती है। जिससे बजट का सही वितरण नहीं हो पाता तथा विकास दर बाधित होता है। ऐसे समय केन्द्र तथा राज्य सरकारों दोनों को अपने-अपने विवाद को कम करते हुए संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए राष्ट्रीय तथा प्रादैशिक विकास को लक्ष्यों को पूरा करना चाहिये।

4) कभी-कभी वोट राजनीति के चक्कर में बजट का प्रारूप विकास के मूल उद्देश्य से भटक जाता है। ऐसे समय बजट से समाज में संतुलन स्थापित करने के साथ-साथ भावी तथा वर्तमान विकास की दशा तथा दिशा सही होनी चाहिये।
5) व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य तथा अधिक आय को प्राप्त करने हेतु प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों का आकलन व्यवहारिक होना चाहिये। राज्य सरकारों को अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु स्वयम् संसाधनों का क्षेत्र तथा संग्रह बढ़ाकर केन्द्र की पराश्रयता को कम करना चाहिये।
6) केन्द्र तथा राज्य सरकारों को अपने उपक्रमों को लाभदायक बनाने हेतु सामान्य व्यापारिक नियमों का पालन करना चाहिये जिससे उसके उपक्रम सफेद हाथी न बन जायें।
7) विदेशी मुद्रा का सही प्रयोग कर अतिरिक्त विकास स्त्रोतों का निर्माण कर विकास की गति सही करना चाहिये। इस हेतु अपव्यय रोकने हेतु ठोस कदम उठाना चाहिये।
8) विकासात्मक लक्ष्य प्राप्त करने हेतु विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा पत्रकारिता को अपने-अपने दायित्वों का सही पालन करते हुए बजट से सम्बन्धित समस्याओं का समुचित तथा शीघ्र समाधान ढूढ़ना चाहिये।
9) प्रतिरक्षा व्यय, प्रशासनिक व्यय, आर्थिक एवं सामाजिक सेवा सम्बन्धी व्ययों में उचित समंजन होना चाहिये जिससे अर्थव्यवस्था को व्यापक आयाम मिल सके।
10) ब्याज अदायगी, अनुदान, सब्सिडी का क्षेत्र व्यापक एवं व्यवहारिक होना चाहिये। कथनी करनी में समानता लाकर सरकारों को जन विश्वास बढ़ाना चाहिये। इस हेतु बजट लोगों की आकांक्षाओं के अनुकूल तथा विकासात्मक होना चाहिए।
11) बजट की प्रतिबद्धता केन्द्र एवं राज्य सरकारों में वित्तीय अनुशासन बनाये रखना है। इस हेतु राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम 2003 (Fiscal Responsibility and Budget Management Act 2003) के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर राजस्व घाटा शून्य किया जाना चाहिये तथा अधिक्य प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। इसका लक्ष्य 2008-09 तक राजस्व घाटा शून्य करना था।
12) यद्यपि मंदी से निपटने के लिए सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में केन्द्र ने राज्य सरकारों को राजकोषीय घाटे की सीमा में कुछ छूट प्रदान की है, राजकोषीय नियामक एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम (FRBM Act) के तहत चालू वित्तीय वर्ष 2008-09 में राज्यों को अपना राजकोषीय घाटा उनके सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) का अधिकतम 3 प्रतिशत तक ही रखने की अनुमति थी, बाद में यह सीमा वित्तीय वर्ष 2008-09 में सकल राज्य घरेलू उत्पाद के 3.5 प्रतिशत तक ही कर दी गई थी, किन्तु अगले वित्तीय वर्ष 2009-10 में उन्हें यह घाटा 3 प्रतिशत तक ही लाना था, परन्तु यह सब कुछ अभी तक भी नहीं हो पाया है।
13) वित्तीय समेकन (Financial Consolidation) हेतु 13वें वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत रूपरेखा के तहत राज्यों से 2014-15 तक हर हालत में राजस्व घाटा समाप्त करने तथा राजकोषीय घाटे को अपने सकल घरेलू उत्पाद (GSDP) का 3 प्रतिशत तक लाने की अपेक्षा वर्ष 2011-12 के बजट में की गई है, इस

दौरान राज्यों का संयुक्त ऋण सकल घरेलु उत्पाद (GDP) के 24.3 प्रतिशत का लक्ष्य भी प्राप्त करना है, किन्तु अभी तक यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सके हैं।

14) वस्तुतः आम बजट ऐसा होना चाहिये जिसमें ***'निष्पादन या कार्यपूर्ति'*** की जिम्मेदारी हो, घाटा कम से कम हो जिससे वह ***'जीरोबेस बजट'*** के करीब हो तथा जिसका ***'आउटकम या परिणाम'*** उचित हो, ***'महिला सशक्तिकरण'*** को बल मिले। दूसरे शब्दों में ऐसा बजट होना चाहिए जो बजट घाटा रहित होकर, अपने निर्धारित कार्यों का उचित निष्पादन करते हुए शून्य सरप्लस के नियमों का पालन कर विकास के प्रतिबद्ध रहे तथा समाज की असमानता कम कर सके।

15) दुर्भाग्य से भारत का बजट उपर्युक्त नियमों पर खरा नहीं रहा। समान्यतया सरकार की चुनावी तथा लोक लुभावन बजटों से विकास की गति बाधित रही। रही सही कसर कार्यपालिका की लालफीता शाही तथा भ्रष्टाचार, न्यायपालिका की समय-अप्रतिबद्धता तथा पत्रकारिता की जनभावना के प्रति गैरजिम्मेदारी ने भी बजट के मार्ग में अनेक रूकावटें डाली हैं। सभी को अपनी जिम्मेदारी पूरी करनी होगी तभी आदर्श बजट का सपना साकार हो सकेगा।

10.14 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

निम्न पर टिप्पणी लिखें:

अ. बजट की आवश्यकता तथा महत्व
ब. अच्छे बजट की विशेषताएं
स. निष्पादन बजट
द. शून्य बजट प्रणाली
य. जेण्डर बजट
र. केन्द्रीय बजट के प्रमुख दस्तावेज
ल. पूँजीगत प्राप्तियाँ
व. राजस्व व्यय
श. संचित कोष
ष. आकस्मिक कोष

10.15 सारांश (Summary)

जैसा कि आप देख चुके हैं कि इस इकाई में संघीय बजट से सम्बन्धित अनेक बातों को समझने का प्रयास किया गया है। इकाई का प्रारम्भ प्रस्तावना से प्रारम्भ कर इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए बजट के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। बजट सरकार का संवैधानिक दायित्व है, जिसके अन्तर्गत वह अपने प्राप्तियों तथा व्ययों का विवरण देता है। बजट की आवश्यकता तथा महत्व की व्याख्या कर विधायिका की कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित की जाती है। तत्पश्चात् अच्छे बजट की विशेषतायें बताते हुए बजट को तद्रूप बनाते हुए आम बजट को निष्पादन, परिणाम परक, शून्य सरप्लस वाला होने के साथ-साथ महिला सशक्तिकरण को प्रेरित करने वाला भी होना चाहिये। इस प्रकार बजट के प्रकारों की चर्चा की गयी है। केन्द्रीय बजट के प्रमुख दस्तावेजों-वित्त मंत्री का भाषण, वार्षिक वित्तीय कथन, बजट का सार, वित्तीय विधेयक, बजट प्राप्तियों, बजट व्यय तथा अनुदानों की माँगों को स्पष्ट करते हुए बजट निर्माण एवं बजट प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। मुख्य रूप से बजट निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत बजट की रूपरेखा, दस्तावेज, संसद की स्वीकृति, क्रियान्वयन तथा लेखांकन एवं लेखा परीक्षणों की व्यापक चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् बजट के सभी प्रमुख अवयवों सार्वजनिक आय तथा सार्वजनिक व्यय के विभिन्न स्रोतों (राजस्व एवं पूंजीगत) को समझते हुए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के संचित, आकस्मिक तथा

लोक कोषों की चर्चा के साथ स्वतंत्रतोपरान्त भारतीय बजट के केन्द्रीय बजट की मुख्य बातों की व्यापक चर्चा की गयी है। बजट सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करते हुए बजट सम्बन्धी समस्याओं एवं उनके समाधानों की चर्चा कर विषय को व्यवहारिक, ग्राह्य तथा उपयोगी बनाया गया है।

10.16 शब्दावली (Glossary)

- **वित्त विधेयक-** नए करों को लागू करने, पुराने करों में घटत-बढ़त या उन्हें यथावत रखने के बारे में सरकारी प्रस्ताव वित्त विधेयक कहलाता है, संविधान के अनुच्छेद 110 के अनुसार वित्त विधेयक एक धन विधेयक है।
- **समेकित कोष -** कर तथा ऋण आदि के द्वारा सरकार जो धन प्राप्त करती है, वह समेकित कोष कहलाता है, सरकार अपना सम्पूर्ण व्यय भी इसी कोष से करती है, संसद की स्वीकृति के बिना इस निधि में से कोई भी रकम नहीं निकाली जा सकती है।
- **आकस्मिक कोष -** अप्रत्याशित और आकस्मिक खर्च के लिए संसद से सरकार यह आकस्मिक कोष स्वीकार कराती है, जिस पर प्रतिवर्ष संसद की अलग स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। रकम की निकासी के लिए बाद में संसद की स्वीकृति प्राप्त कर ली जाती है और खर्च की गई धनराशि निधि में वापस डाल दी जाती है।
- **राजस्व बजट -** इसमें कर तथा शुल्क आदि से प्राप्त होने वाली सरकारी आमदनी शामिल होती है। दूसरी तरफ इनके संग्रह पर किए जाने वाला व्यय भी राजस्व बजट में शामिल होता है।
- **जनलेखा -** करों से प्राप्त आमदनी के अतिरिक्त सरकार के पास कुछ ऐसी धनराशि भी होती है, जिसकी वह मालिक नहीं, केवल ट्रस्टी होती है और जिसे वह निर्धारित समय पर नियमानुसार ब्याज के साथ लौटा देती है। चूँकि यह धन देर सवेर सरकार को सम्बन्धित पक्षों को लौटाना पड़ता है, इसलिए इस पर भी संसद की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती।
- **पूँजीगत बजट -** इसमें सरकार द्वारा प्राप्त किया गया ऋण, उस पर किया गया खर्च तथा सरकारी परिसम्पत्तियों से होने वाली आय तथा व्यय शामिल होते हैं।
- विनियोग विधेयक - संसद द्वारा स्वीकृत बजट में से आवश्यक धनराशि निकालने के लिए जो विधेयक पेश किया जाता है, उसे विनियोग विधेयक कहते हैं।
- **अनुदान माँग -** बजट में अलग-अलग विभागों की अपने विकास और कार्य संचालन पर व्यय किए जाने वाली माँग को अनुदान माँग कहते हैं। बजट पर बहस के दौरान यह माँग प्रायः सम्बन्धित विभाग के मंत्री द्वारा ही प्रस्तुत की जाती है और वही बहस का जबाब भी देते हैं।
- **कटौती प्रस्ताव -** संसद सदस्यों द्वारा बजट में दिखलाए गए खर्च को कम करने के लिए जो प्रस्ताव पेश किए जाते हैं, उन्हें कटौती प्रस्ताव कहते हैं। इन प्रस्तावों का असली उद्देश्य बजट के उस भाग पर विस्तार से बहस करना होता है। यदि कोई कटौती प्रस्ताव सरकार की इच्छा के विपरीत पारित हो जाए तो उसका अर्थ सरकार के विरूद्ध अविश्वास माना जाता है।

- **लेखानुदान -** पिछला बजट 31 मार्च को समाप्त हो जाता है। इसके बाद उसे नहीं बढ़ाया जा सकता। इसलिए पहली अप्रैल को सरकार को अपने खर्च के लिए नए बजट की आवश्यकता होती है, परन्तु नया बजट प्रायः पहली अप्रैल से पूर्व पारित नहीं हो पाता, इसलिए संसद अस्थायी रूप से सरकार को व्यय के लिए अग्रिम धनराशि देती है।
- **पूरक बजट -** यदि कभी बजट में स्वीकृत धनराशि 31 मार्च से पहले ही समाप्त हो जाती है, तो उस स्थिति में सरकार संसद के सम्मुख पूरक बजट प्रस्तुत करती है, जिसमें शेष समय के लिए अतिरिक्त धन की माँग की जाती है।
- **वित्तीय घाटा -** वित्तीय घाटा खजाने की सबसे सच्ची तस्वीर है, इसमें बजट घाटे के साथ-साथ सरकार की शुद्ध उधारी को भी जोड़कर देखा जाता है।

10.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

10.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- डॉ. एस. के. सिंह, *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी, *लोक अर्थशास्त्र*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र, *राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त*, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल, *लोक वित्त*, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र, *लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त* विजडम बुक्स, वाराणसी

10.19 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया, एच. एल (2006)-*लोक वित्त* , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005) *राजस्व* ,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997)-*राजस्व*, साहित्य भवन पब्लिकेशन हॉस्पिटल रोड, आगरा।
- सिंह, एस. के. (2013)-*लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) *Public Finance*, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) *Modern Public Economics*, Routledge, London
- Mcnutt, P. (2002) *The Economics of Public Choice*, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) *Modern Public Finance*, Himalaya Publishing House, Mumbai

- Mueller, D. C. (1979) *Public Choice*, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) *The Theory of Public Finance*, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) *Finance Commissions and Fiscal Federalism in India,* New Century Publications, New Delhi

10.20 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बजट से आप क्या समझते हैं? बजट की आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट कीजिये।
2. बजट से आपका क्या तात्पर्य हैं? बजट के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. बजट निर्माण से क्या समझते हैं? बजट निर्माण प्रक्रिया को समझाइये।
4. बजट से क्या समझते हैं? बजट के अवयवों का वर्णन कीजिए।
5. स्वतंत्रतोपरान्त केन्द्रीय बजट नीति की व्याख्या कीजिये।
6. बजट की समस्याओं की चर्चा करते हुए सुधार हेतु उपाय सुझायें।

इकाई - 11 परम्परागत, निष्पादन और शून्य आधार बजटिंग
(Traditional, Performance and Zero Base Budgeting)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 बजट का आशय

- **11.3.1 बजट की परिभाषाएँ**
- **11.3.2 बजट तथा राजकोषीय नीति**

11.4 परम्परागत बजटिंग

- **11.4.1 परम्परागत बजटिंग का आशय**
- **11.4.2 परम्परागत बजटिंग की विशेषताएँ**

11.5 निष्पादन बजटिंग

- **11.5.1 निष्पादन बजटिंग का आशय**
- **11.5.2 निष्पादन बजटिंग का आधार**

11.6 शून्य आधार बजटिंग

- **11.6.1 शून्य आधार बजटिंग की विशेषताएँ**
- **11.6.2 शून्य आधार बजटिंग की कठिनाइयाँ**
- **11.6.3 भारत में बजटिंग प्रक्रिया**
- **11.6.4 भारत में शून्य आधार बजटिंग**

11.7 अभ्यास प्रश्न

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

आपने पूर्व की इकाई के अन्तर्गत करापात एवं कर विवर्तन से सम्बन्धित अनेक पक्षों को भली-भांति समझ लिया होगा। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप परम्परागत बजटिंग के साथ-साथ निष्पादन बजटिंग एवं शून्य आधार बजटिंग का भली-भांति अध्ययन कर सकेंगे। आप बजट की अवधारणाओं एवं परिभाषाओं से परिचित होने के साथ बजट की राजकोषीय नीति से सम्बद्धताओं का भी अध्ययन कर सकेंगे।

परम्परागत बजटिंग के विभिन्न आयामों की विवेचना करने के बाद निष्पादन बजटिंग के विभिन्न पहलुओं तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। शून्य आधारित बजट की अवधारणा एवं मुख्य विशेषताओं से आपको परिचित कराया जा सकेगा। इसके साथ शून्य आधार बजट को अपनाने एवं क्रियान्वित करने में आने वाली कठिनाइयों से भी आप भली-भांति परिचित हो सकेंगे।

बजट शब्द की व्युत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द '**Bougette**' से हुई है। सामान्य रूप से बजट एक अर्थव्यवस्था के कुशल एवं नियंत्रित संचालन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके अभाव में किसी अर्थव्यवस्था के निहितार्थों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकता है। बजट सरकार की आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करने के साथ उस देश की वास्तविक आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का आइना प्रस्तुत करता है। जिसके आधार पर उस देश की अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति तक पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार बजट देश के वित्तीय प्रवाहों का उल्लेख है जो नीतियों एवं कार्यक्रमों की सफलता के लिए अत्यन्त ही आवश्यक समझा जाता है।

11.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कने के बाद आप अच्छी तरह से समझ सकेंगे कि -

- ✓ बजट का क्या आशय है तथा किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बजट की क्या सार्थकता पायी जाती है?
- ✓ परम्परागत बजटिंग के विभिन्न आयामों को समझने के साथ इसके मूलभूत तत्वों को आप भली-भांति समझ सकेंगे।
- ✓ अर्थव्यवस्थाओं के लिए अलग-अलग प्रकार के बजटिंग प्रणाली की क्या आवश्यकता है तथा भविष्य में उनकी क्या उपयोगिता सिद्ध हो सकती है।
- ✓ अर्थव्यवस्थाओं में व्याप्त अनेक प्रकार की वित्तीय अनियमितताओं के चलते शून्य आधार बजटिंग क्यों महत्वपूर्ण है तथा इसके मार्ग में किस प्रकार की तथा क्यों कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।
- ✓ एक बजटिंग प्रक्रिया किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए क्यों आवश्यक एवं उपयोगी सिद्ध होती है।

11.3 बजट का आशय

बजट से हमारा आशय सरकार या लोकसत्ताओं द्वारा वित्तीय संसाधनों को जुटाने एवं उनको व्यय करने सम्बन्धी कार्यक्रमों की रूपरेखा से लगाया जाता है। बजट एक सरकारी प्रपत्र होता है जिसमें सार्वजनिक कार्यक्रमों को संचालित करने के लिये आवश्यक कार्यों की पूर्ति करने के स्रोत एवं मात्रा के साथ सम्बन्धित मदों का पूर्ण विवरण होता है। जिसका सम्बन्ध किसी एक निश्चित समयावधि से होता है। इस प्रकार बजट सरकार के अर्थपूर्ण

प्रशासन एवं कुशलता का प्रतीक माना गया है। बजट सरकारी कार्यों का एक प्रस्तावित विवरण एवं आवश्यक धनराशि के संग्रहण के लिए प्रस्तावित एवं अनुमानित व्यवस्था होती है। बजट की मुख्य विशेषताओं एवं मुख्य आयामों से आप बजट के आशय को भली-भांति समझ सकेंगे।

11.3.1 बजट की परिभाषायें

अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई बजट की मुख्य परिभाषायें निम्नलिखित हैं:-

शिराज के अनुसार, ***"बजट आय तथा व्यय का विवरण है। यह सरकार द्वारा अनुमानित व्यय को पूरा करने के लिए बनाया जाता है। इसमें सामान्यतः दो वित्तीय अवधियाँ होती हैं - समाप्त होने वाली अवधि तथा आगामी अवधि। संक्षेप में बजट में पिछले वर्ष के आय-व्यय का अनुमान तथा घाटों को पूरा करने और बचत को वितरित करने के लिए प्रस्ताव होते हैं।"***

किंग के अनुसार, ***"बजट एक प्रशुल्क योजना है, जिसके द्वारा व्यय को आय से सन्तुलित किया जाता है।"***

गैस्टन जेज के अनुसार, ***"एक आधुनिक राज्य में बजट एक पूर्व कल्पना तथा सार्वजनिक आय एवं व्यय का एक अनुमान है तथा कुछ विशिष्ट व्ययों को करने व आय को प्राप्त करने का अधिकार है।"***

पी. एफ. टेलर के शब्दों में, ***"बजट सरकार की मास्टर वित्तीय योजना है। यह आगामी आय के अनुमान तथा बजट के प्रस्तावित व्ययों के अनुमान साथ-साथ प्रदान करता है।"***

डब्ल्यू. पी. विलोबी के शब्दों में, ***"बजट एक साथ एक रिपोर्ट एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा वित्तीय प्रशासन की सभी विधियों को सम्बन्धित किया जाता है। उसकी तुलना की जाती है और उसमें समन्वय स्थापित किया जाता है।"***

डॉल्टन के अनुसार, ***"सन्तुलित बजट की सामान्य विचारधारा यह है कि एक समयावधि में आय बढ़ती है या व्यय से कम नहीं रहती है।"***

पी. एल. बिल्यू के शब्दों में, ***"यह एक निश्चित अवधि की अनुमानित आय एवं व्ययों का विवरण है, यह तुलनात्मक तालिका है जिसमें प्रापत होने वाली आय तथा किये जाने वाले व्ययों की राशियों को दिखाया जाता है।"***

11.3.2 बजट तथा राजकोषीय नीति

इस उपखण्ड के अन्तर्गत आपको यह बताने का प्रयास किया गया है कि बजट तथा राजकोषीय नीति के मध्य क्या अन्तर्सम्बन्ध हैं तथा राजकोषीय नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में बजट प्रणाली किस सीमा तक सहायक सिद्ध होती है। सरकारों द्वारा निर्धारित राजकोषीय नीतियों में समयानुसार आवश्यक परिवर्तन होते रहते हैं जिसका बजटिंग प्रणाली से अटूट सम्बन्ध रहता है। वर्तमान में सामानयतः सभी देशों की राजकोषीय नीति का प्रयोग आर्थिक-स्थिरता बनाये रखने, मूल्य नियंत्रण, बेरोजगारी दूर करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिये किया जाता है। राजकोषीय नीति के उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बजटिंग प्रणाली एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करती है। सार्वजनिक उपक्रमों के लिए आवश्यक वित्तीय व्यवस्था, कीमत नियंत्रण के लिए कर प्रणाली की संरचना, बेरोजगारी दूर करने के लिए कार्यक्रमों एवं योजनाओं का निर्माण एवं कुशलतम क्रियान्वयन

तथा आर्थिक विकास के लिए आवश्यक वित्तीय-संसाधनों की व्यवस्था एक उचित बजटिंग प्रणाली द्वारा ही सम्भव हो सकती है। बजटिंग का उचित निर्माण एवं कुशलतम क्रियान्वयन करके ही देश की अर्थव्यवस्था को विकास के मार्ग पर सही रूप में अग्रसर किया जा सकता है।

उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यय, ऋण व्यवस्था, कर, आय तथा हीनार्थ प्रबन्धन आदि की व्यवस्था राजकोषीय नीति के अन्तर्गत् की जाती है लेकिन इन सभी व्यवस्थाओं का समावेशन बजटिंग प्रणाली के अन्तर्गत किया जाता है। वहीं दूसरी ओर राजकोषीय नीति के आधार पर ही बजट का प्रकार आकार तथा क्रियान्वयन आदि का निर्धारण किया जाता है। बजट का आकार, प्रकार तथा क्रियान्वयन का राजकोषीय नीति से सीधा तथा सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है।

11.4 परम्परागत बजटिंग

इस खण्ड के अन्तर्गत परम्परागत बजटिंग का आषय एवं विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

11.4.1 परम्परागत बजटिंग का आशय

सामान्यतः दी जाने वाली सार्वजनिक बजटिंग की अवधारणा को परम्परागत बजटिंग से ही सम्बन्धित किया जाता रहा है। आपको यहाँ यह समझने में आसानी होगी कि परम्परागत बजटिंग के अन्तर्गत उन विधियों, व्ययों तथा मदों को सामान्य रूप से शामिल किया जाता है जिन्हें विगत वर्षों या समयावधियों में महत्व दिया जाता रहा है। इस प्रकार परम्परागत बजटिंग से हमारा तात्पर्य ऐसे बजट से है जो एक लम्बे समय से एक परम्परागत रूप में निर्मित व क्रियान्वित किया जाता रहा है। बजट के आवंटन में भी परम्परागत मदों को ही आधार बनाया जाता रहा है। बजट को अर्थपूर्ण बनाने एवं इसके प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने के लिए परम्परागत बजटिंग के दो मुख्य आयामों को मुख्य रूप से समाहित किया गया है।

1. बजट का राजस्व खाता
2. बजट का पूँजी खाता

बजट के परम्परागत राजस्व खाते के अन्तर्गत किसी आर्थिक इकाई को चालू व्यय मदों की वित्तपूर्ति अपनी वर्तमान आय से ही की जाती है। इसकी वित्तपूर्ति के लिये परिसम्पत्तियों में कमी नहीं की जाती है तथा इसके साथ सरकार की देयदाताओं में भी वृद्धि नहीं की जाती है। इस मद की राशियाँ निवेशित राशियों से भिन्न हाती हैं। पूंजी खाते के अन्तर्गत वे प्राप्तियाँ शामिल की जाती हैं जिसको सम्बन्ध निवेशित राशियों से होता है तथा सरकार की देयताओं में वृद्धि होती है या सरकार की परिसम्पत्तियों में कमी। इस मद की राशियों का सम्बन्ध चालू खर्चों के वित्त पोषण से नहीं होता है।

परम्परागत बजटिंग के अन्तर्गत चालू खाता तथा पूँजी खाते को आपस में संतुलित बनाये रखा जाता है।

11.4.2 परम्परागत बजटिंग की विशेषताएँ

परम्परागत बजटिंग की अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद यहाँ पर इस बजटिंग की मुख्य विशेषताओं को समझाने का प्रयास किया गया है।

1) परम्परागत बजट चालू खाता तथा पूँजी खाते में विभाजित होता है जिन्हें बजट के मुख्य भागों के रूप में देखा जाता है।

2) परम्परागत बजट सामान्य रूप से सन्तुलित बजट के मुख्य आयाम पर आधारित किया गया है। पूँजी खातों तथा चालू खातों को आपस में संतुलित किया जाता है।
3) परम्परागत बजट को संतुलित बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था की आवश्यकता माना जाता है। इसके पीछे अर्थशास्त्रियों का तर्क था कि संतुलित बजट सरकार की अपव्यय करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने में सहायक सिद्ध होता है।
4) यह बजट अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर्गत आने वाले आर्थिक चक्रों/व्यापारिक चक्रों को नियंत्रित करने एवं रोकने के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है।
5) परम्परागत बजट में पिछली मदों एवं कार्यक्रमों पर सामान्य रूप से धनराशियों का आवंटन किया जाता है तथा पिछली समयावधियों की योजनाओं को पूरा भी किया जाता है।
6) यह बजट सामान्य रूप से अधिकांश देशों द्वारा अपनाया जाता रहा है।

11.5 निष्पादन बजटिंग

आप इस खण्ड के अन्तर्गत निष्पादन बजटिंग के आशय समझने के बाद इसके मूलभूत आधारों को समझेंगे।

11.5.1 निष्पादन बजटिंग का आशय

इस उपखण्ड के अन्तर्गत आप सामान्य बजट से अलग हटकर बजट की एक नयी अवधारणा से अवगत हो सकेंगे। निष्पादन बजटिंग का तात्पर्य ऐसी बजट प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत बजट में शामिल कार्यक्रमों तथा योजनाओं का क्रियान्वयन इस प्रकार से किया जाय ताकि अपेक्षित तथा वास्तविक निष्पादन के मध्य कम से कम अन्तर हो तथा परियोजनाओं का क्रियान्वयन इष्टतम स्तर पर हो सके। इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि बजट के प्रत्येक चरण में अपेक्षित व्यय तथा अपेक्षित प्राप्तियों का एक नियोजित रूप रेखा तैयार की जाए तथा कार्यक्रमों का क्रियान्वयन एवं संचालन उच्च स्तर का हो सके तथा वांछित परिणामों को आसानी से प्राप्त किया जा सके।

बजट के क्रियान्वयन के लिए निर्मित कसौटियों के आधार पर सार्वजनिक व्यय में पूर्ण मितव्ययता बरती जाय तथा बजट का संचालन एक कुशल प्रबन्ध तंत्र द्वारा किया जाय। इस प्रकार निष्पादन बजटिंग में कुशल प्रशासनिक कार्य तंत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। क्योंकि कार्यक्रमों या योजनाओं का इष्टतम निष्पादन कुशल प्रशासनिक कार्यतंत्र पर ही पूर्ण रूप से आधारित होता है।

11.5.2 निष्पादन बजटिंग का आधार

निष्पादन बजटिंग निम्न लिखित मान्यताओं पर आधारिनत किया गया है जो इसके औचित्य को प्रकट करती है:-

1) निष्पादन बजटिंग संसाधनों के अभाव एवं सीमितता पर आधारित किया गया है। इसीलिये इस बजट में कुशलतम क्रियान्वयन पर जोर दिया गया है।
2) निष्पादन बजटिंग के अन्तर्गत लागत-हित की अवधारणा को आधार बनाया गया है। इसके लिये बजट के क्रियान्वयन के प्रत्येक चरण के लिये एक समय-सारणी को आधार बनाया गया है जो योजनाओं एवं

कार्यक्रमों के निष्पादन को बेहतर बना सकता है। बिना समय-सारणी के बजट उद्देश्यों के प्रति पूर्ण रूप से सकारात्मक नहीं बनाया जा सकता है।

3) यह बजट विभिन्न विभागों एवं मंत्रालयों के मध्य सामंजस्य पर जोर देता है ताकि संसाधनों का कुशलतम प्रयोग सम्भव हो सके एवं वांछित प्राप्तियों का उच्च स्तर बनाया जा सके।
4) सरकार के पास कोई वित्तीय उपलब्धियेां का एक स्वचालित तंत्र नहीं है। मानवीय कुशलता ही बजटिंग का आधार है। इसके आधार पर ही अनुमान, क्रियान्वयन एवं निष्पादन की प्रक्रिया को प्राप्त किया जा सकता है।
5) इस बजटिंग के अन्तर्गत किसी भी मद को तटस्थ रूप में नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि इसका अन्य मदों पर प्रतिकूल प्रभाव होगा जो कार्यक्रमों के निष्पादन को प्रतिकूल दिशा में ही प्रभावित करेगा।

11.6 शून्य आधार बजटिंग

जैसा कि आपको इस अवधारणा के नाम से ही स्पष्ट है कि इस बजट के अन्तर्गत कोई पूर्व निर्धारित आधार नहीं होता है। अतः इस बजट के निर्माण के लिए पूर्ववर्ती मदों को शून्य मान लिया जाता है। अर्थात् इस बजट का निर्माण बिना किसी आधार के किया जाता है। यह बजट पूर्ण रूप से लेखा परीक्षण की पद्धति पर अधारित किया गया है। आपको यह समझना होगा कि शून्य आधार बजट में पूर्व में आवंटित राशि वाली मदों या कार्यक्रमों को आवश्यक रूप से स्थान नहीं दिया जाता है। चालू वित्तीय वर्ष के बजट के लिए नया आर्थिक आधार तैयार किया जाता है जो पूर्व के वित्तीय वर्ष में संचालित कार्यक्रमों या योजनाओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

सामान्य रूप से शून्य आधार बजटिंग का मुख्य आधार कार्यक्रम या योजनाओं की लागत के बाद उसके परिणामों का आलोचनात्मक विश्लेषणा माना गया है। इस बजट में उसी मद को व्यय के लिए उचित ठहराया जाता है तो लागत-हित विश्लेषण के आधार पर पूर्ण रूप से खरी उतरती है। इस बजट में इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती है कि एक बार में आवंटित होने वाली मद का आगामी वित्तीय वर्ष या बजट में यथास्थान बना रहेगा। किसी भी मद को बजट में उस समय तक स्थान नहीं दिया जाता है जब तक कि उस मद को लागत-हित विश्लेषण के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सके। शून्य आधार बजट में मदों एवं योजनाओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन के आधार पर सार्वजनिक व्यय के अपव्यय को रोकने का प्रयास किया जाता है।

शून्य आधार बजटिंग बजट को अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है।

पीटर पायरेर के अनुसार, ***"शून्य पर आधारित बजटिंग एक संचालित नियोजन एवं बजटिंग प्रक्रिया है, जिसमें प्रत्येक मैनेजर के अपने सम्पूर्ण बजट प्रस्तावों का औचित्य शून्य से बताना होता है तथा प्रत्येक मैनेजर पर सबूत का भार डाल दिया जाता है कि उसे कोई धन क्यों व्यय करना चाहिये।"***

जिमी कार्टर के शब्दों में, ***"शून्य पर आधारित बजटिंग में बजट को इकाइयों में रखा जाता है जिसे 'निर्णय पैकेज' कहा जाता है और जो प्रत्येक स्तर पर मैनेजर द्वारा तैयार किये जाते हैं। यह पैकेज विभाग की विद्यमान या प्रस्तावित क्रियाओं को पूर्ण करते हैं।"***

शून्य आधार बजटिंग की नयी अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम 1977 में अमेरिका के राष्ट्रपति **जिमी कार्टर** ने अपने देश में अपनाया था। भारत में प्रथम बार 1986 में तत्कालीन वित्तमंत्री **वी.पी. सिंह** ने अपनाना स्वीकार किया था। 1987-88 में केन्द्रीय सरकार के अनेक विभागों ने इस तकनीकी को अपनाया था।

11.6.1 शून्य आधार बजटिंग की विशेषताएँ

शून्य आधारित बजटिंग की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित रूप में दी गयी हैं जो आपको शून्य आधार बजटिंग के विभिन्न आयामों तक पहुँचने में सहायक हो सकती हैं।

1) शून्य आधार बजटिंग का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक व्ययों पर नियंत्रण करने से लगाया गया है ताकि सरकारी धन का अपव्यय न हो सके एवं उसका प्रयोग सार्वजनिक हित में हो सके।
2) शून्य आधार बजटिंग के अन्तर्गत पूर्ववर्ती कार्यक्रमों अथवा योजनाओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन की व्यवस्था की गयी है जिसके आधार पर उस मद को बजट में यथास्थान दिलाया जा सके।
3) यह बजट लागत-लाभ विश्लेषण पर आधारित है। इसलिये यह प्रयास किया जाता है कि किसी कार्यक्रम या मद पर आने वाली-लागत तथा उस मद से प्राप्त होने वाले सामाजिक हित के मध्य कम से कम अन्तर हो।
4) शून्य आधारित बजटिंग में किसी कार्यक्रम या योजना को अनिवार्य रूप से भविष्य में बनाये रखना आवश्यक नहीं होता है
5) इस प्रकार की बजटिंग प्रणाली के संचालन के लिए कुशल एवं ईमानदार कर्मचारियों एवं अधिकारियों की आवश्यकता है जो सभी अर्थव्यवस्थाओं में प्रायः सम्भव नहीं है।
6) शून्य आधार बजटिंग के लिए बजट बनाते समय पूर्व में संचालित मदों की पूर्ण एवं सही जानकारी होनी चाहिए ताकि उस मद के औचित्य को सही रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

11.6.2 शून्य आधार बजटिंग की कठिनाइयाँ

शून्य आधार बजटिंग के निर्माण एवं क्रियान्वयन में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

1) शून्य आधारित बजट के अन्तर्गत कार्यक्रमों एवं योजनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन उसी विभाग एवं मंत्रालय के अधिकारियों एवं प्रभारियों द्वारा किया जाना होता है जिसके अन्तर्गत यह कार्यक्रम या योजनायें संचालित हैं। ऐसी स्थिति में स्वमूल्यांकन उनके विरूद्ध नहीं जा सकता है। इसीलिये पूर्ववर्ती मदों को ही आधार बनाना आवश्यक हो जाता है जो शून्य आधार बजट की संकल्पना के अनुकूल नहीं है।
2) शून्य आधारित बजट के निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए ईमानदार एवं पूर्ण कुशल अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता है जो प्रायः सभी देशों में सम्भव नहीं है। इसके साथ बजट का प्रत्येक चरण एक तकनीकी प्रशिक्षण पर आधारित होता है इसके लिये सम्बन्धित कर्मचारियों को पूर्ण प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी जो स्वयं में ही एक समस्या बन जाती है।

3) शून्य आधारित बजटिंग मितव्ययता एवं पूर्ण नियंत्रणात्मक सार्वजनिक व्यय पर आधारित है जो प्रजातांत्रिक एवं सत्ता महत्वाकांक्षी सरकारों द्वारा संभव नहीं हो सकता है। आपको यहाँ विदित हो कि प्रजातांत्रिक सरकारें जनता को खुश करने के लिये अपव्यय तथा गैर नियंत्रणात्मक व्ययों का सहारा लेती हैं।
4) विकाशील तथा पिछड़े देशों में शून्य आधारित बजटिंग की प्रणाली कारगर सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि यहाँ पर बजट प्रणाली में लचीलापन अत्यन्त ही आवश्यक समझा गया है जो शून्य आधारित बजट के विपरीत है।

11.6.3 भारत में बजटिंग प्रक्रिया

भारत में बजट कार्यकारिणी सभा द्वारा तैयार किया जाता है। संघीय बजट को लोक सभा के केन्द्रीय मंत्रीमण्डल तथा राज्यों में विधानसभाओं की कार्यकारिणियों द्वारा तैयार किया जाता है। बजट का निर्माण करने से पूर्व निम्न मदों/शीर्षकों को दर्शाया जाता है।

1. पिछले वर्ष की वास्तविक आय तथा वास्तविक व्यय
2. चालू वर्ष से सम्बन्धित स्वीकृत आय तथा व्यय के अनुमान
3. चालू वर्ष के वास्तविक आय-व्यय के आंकड़े
4. आगामी वर्ष के बजट अनुमान
5. चालू वर्ष के संशोधित आय-व्यय के अनुमान

उपर्युक्त दस्तावेजों के साथ भारत में बजटिंग को अनेक महत्वपूर्ण प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, जिनको आप निम्न बिन्दुओं के आधार पर आसानी से समझ सकते हैं।

1. बजट की तैयारी करना: भारतीय बजट बनाने की शुरूआत प्रत्येक वर्ष अगस्त माह में कर दी जाती है। भारतीय वित्त मंत्रालय द्वारा विभिन्न मंत्रालयों द्वारा अनुमानित आय तथा व्यय के अनुमानित लेखे मांगे जाते हैं। अक्टूबर माह के प्रथम सप्ताह तक सभी मंत्रालयों द्वारा अपने-अपने अनुमानित आय तथा व्यय के अनुमान वित्त मंत्रालय को भेज दिये जाते हैं। भारत में संघीय तथा राज्जीय बजट की तैयारी केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अलग-अलग की जाती है।

2. बजट को पेश करना: सम्बन्धित सभी मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा अनुमानित आय तथा व्यय के अनुमान प्राप्त हो जाने के उपरान्त सम्पूर्ण बजट दस्तावेजों को संसद में प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वित्तमंत्री अपना बजट भाषण प्रस्तुत करता है जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक समीक्षा होती है। बजट भाषण में नये कर लगाने तथा नये व्ययों को करने का उल्लेख किया जाता है।

नये करों को लगाने तथा नये व्ययों के उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया जाता है। बजट के प्रकार तथा आवश्यकता पर प्रकाश डाला जाता है। बजट द्वारा सामान्य जनता पर पड़ने वाले प्रभावों का भी स्पष्टीकरण वित्तमंत्री द्वारा दिया जाता है। वित्त मंत्री द्वारा जो बजट भाषण सदन में दिया जाता है उसकी एक-एक प्रति सभी सदस्यों के मध्य अध्ययन हेतु वितरित कर दी जाती है। ताकि आगामी प्रक्रिया में सदस्य अपना तर्क-वितर्क दे सके।

3. **सामान्य बहस का होना:** बजट पेश करने के बाद बजट भाषण पूरा होने पर बजट का अध्ययन करने के लिए सदस्यों को सामान्यतः कुछ दिन का समय दिया जाता है तथा बजट भाषण पर बहस के लिये एक दिन निश्चित कर दिया जाता है। उस दिन बजट भाषण पर पक्ष तथा विपक्ष के सदस्यों द्वारा सामान्य रूप से चर्चा की जाती है। सदस्यों को बजट से सम्बन्धित आय तथा व्यय की मदों की आलोचना एवं समीक्षा की जाती है तथा बजट के प्रकार तथा सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर पक्ष तथा विपक्ष द्वारा अनेक प्रश्न किये जाते हैं जिनका जवाब वित्तमंत्री द्वारा दिया जाता है। बजट सम्बन्धी अनेक आशंकाओं का समाधान सत्तापक्ष द्वारा किया जाता है। सामान्य बहस में बजट के सामान्य जनता के जीवन के विभिन्न पक्षों पर पड़ने वाले प्रभावों की आलाचेनात्मक समीक्षा की जाती है। सामान्य रूप से नये कर लगाने एवं कर की दरें बढ़ाने तथा गरीब जनता पर बजट के पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की आलोचना की जाती है।
4. **मतदान:** बजट पर सामान्य बहस होने के बाद विभिन्न मंत्रालयों के मंत्री अपने-अपने विभागों के लिये अनुदान की मांग करते हैं तथा इन मांगों पर बहस होती है। व्यय की कुछ मदें अनिवार्य रूप की होती हैं जिन्हें संचित कोष से मांगा जाता है। इन मांगों पर सदस्यों को मतदान करकाने का अधिकार नहीं होता है। विभाग के प्रत्येक मंत्री को अपनी अनुदान मागों के औचित्य को स्पष्ट करना होता है।

   अनुदानों मांगों पर बहस एक से अधिक दिनों तक भी चल सकती है। पहले दिन जब बहस पूरी नहीं होती है तब दूसरे दिन की बहस जारी रहती है। कुछ अनुदानों की मांगों में कटौती प्रस्ताव लाया जा सकता है। सामान्य रूप से कटौती प्रस्ताव का उद्देश्य अनुदान मांगों का मितव्ययपूर्ण होता है। कटौती प्रस्ताव पर वित्त मंत्री द्वारा स्पष्टीकरण दिया जाता है। फिर भी यदि सदस्यों के सन्तुष्ट न होने पर कटौती प्रस्ताव पर मतदान कराया जाता है। कटौती प्रस्ताव पारित भी हो सकता है तथा यह प्रस्ताव गिर भी जाता है। कटौती प्रस्ताव पारित होने पर प्रायः यह मान लिया जाता है कि सरकार अल्पमत में आ गयी है। लेकिन ऐसी स्थिति में सरकार को त्यागपत्र देने की कोई बाध्यता नहीं होती है। वित्तमंत्री द्वारा सदस्यों को संतुष्ट करने पर सदस्यों द्वारा कटौती प्रस्ताव वापिस ले लिया जाता है और मतदान नहीं होता है।
5. **विनियोग विधेयक:** बजट की माँगों पर सामान्य बहस के बाद सदन में विनियोग विधेयक लाया जाता है। यह विनियोग विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है। साधारण विधेयक की तर्ज पर विनियोग विधेयक सरकार द्वारा नये कर लगाने तथा पुराने करों की दरों में वृद्धि करने से सम्बन्धित होता है। इस विधेयक पर भी लोकसभा में सामान्य बहस होती है। इन कर सम्बन्धी परिवर्तनों के औचित्य को स्पष्ट किया जाता है जो करारोपण के लिए आवश्यक होता है। सदन द्वारा अधिक आपत्ति या विरोध करने पर विनियोग विधेयक में आवश्यक संशोधनों को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। विनियोग विधेयक के अन्तर्गत वित्त विधेयक (finance bill) तथा द्रात्यिक विधेयकों (secondary bills) को शामिल किया जाता है। विनियोग विधेयक के पारित होने पर इसे राज्य सभा की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। विवादास्पद स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला ली जाती है।
6. **अनुपूरक माँगें:** आपको यह भी स्पष्ट करना होगा कि कभी-कभी किसी वर्ष सरकार की व्यय राशि स्वीकृत तथा निर्धारित व्यय से अधिक हो जाती है तथा निर्धारित व्यय वर्ष की समाप्ति से पूर्व ही समाप्त हो जाता है। वर्ष की शेष अवधि के लिए और धनराशि की आवश्यकता होती है। इसके लिए सदन में

अनुपूरक मांगे रखी जाती हैं। अनुपूरक मांगों पर सामान्य बहस के बाद पारित किया जाता है तथा बिल पारित होने पर उसे उच्च सदन की स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है।

7. **सांकेतिक मांगे:** सामान्य बजट अनुमानों को अर्थव्यवस्था की सामान्य स्थितियों के आधार पर लगाया जाता है। लेकिन कभी कभी अर्थव्यवस्था के सम्मुख ऐसी स्थितियाँ बन जाती हैं कि बजट से बाहर वाली मदों पर भी व्यय करना पड़ता है। जैसे युद्ध, अकाल, बाढ़ तथा कोई अन्य प्राकृतिक आपदा आदि के कारण सरकारी व्यय की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में सरकार एक रूपए का व्यय भी बिना सदन की स्वीकृति के नहीं कर सकती है। सांकेतिक मांगों को सामान्य बजट की तरह ही पारित किया जाता है।
8. **बजट को क्रियान्वित किया जाना:** आपको बजट निर्माण की प्रक्रिया भलीभांति समझ में आ गयी होगी। बजट के निर्माण तथा पारित होने के बाद बजट के क्रियान्वित करने के लिए अर्थव्यवस्था पर लागू किया जाता है। बजट का क्रियान्वयन 1 अप्रैल से आगामी वर्ष की 31 मार्च तक क लिये किया जाता है। बजट में प्रस्तावित करों से प्राप्त आय को भारत के संचित कोष में जमा किया जाता है। बाद में इस राशि को आवश्यकतानुसार निकाला जाता है। इसी प्रकार बजट की व्यय राशि को उच्च अधिकारियों की अनुमति से सम्बन्धित अधिकारी खातों से निकालते हैं।

11.6.4 भारत में शून्य आधार बजटिंग

आपने शायद ध्यान दिया होगा कि भारत में सर्वप्रथम 1985-86 में शून्य आधार बजट की अवधारणा को स्वीकार किया गया था। केन्द्र सरकार द्वारा इस शून्य आधार बजट को अपनाने के लिए समस्त विभागों को निर्देश दिये गये थें वर्ष 1986-87 में केन्द्र सरकार के सभी विभागों ने शून्य आधार बजट को स्वीकार किया। सामान्यतः भारत में शून्य आधार बजट में अनुत्पादक व्यय तथा अधिकारियों की लापरवाही ने अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा की लेकिन अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भारत में शून्य आधार बजट की अत्यन्त आवश्यकता थी। भारत में शून्य आधार बजट के लिये निम्नलिखित तथ्यों पर विशेष जोर दिया गया।

1. बजट की मदों पर लागत-लाभ विश्लेषण करना।
2. निष्क्रियता के स्थान पर सक्रिय मदों को स्थान देना।
3. उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयासों की सही-सही जानकारी प्राप्त करना।
4. विकल्पों की खोज के साथ मितव्ययता को महत्व देना।
5. निर्णय सम्बन्धी पैकेज का डिजाइन तैयार करना तथा उसे क्रमबद्ध करना।

11.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बजट को परिभाषित कीजिए?
2. *''बजट सरकार की मास्टर वित्तीय योजना है।...''* यह कथन किस अर्थशास्त्री का है?

सही / गलत कथन का चयन कीजिए?

1. शून्य आधार बजट का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिका में किया गया।
2. भारत में शून्य आधार बजट वर्ष 1986 में अपनाया गया।

3. भारत में परम्परागत बजटिंग की प्रणाली प्रचलित है।

4. निष्पादन बजट कार्यक्रमों/योजनाओं की प्रबन्ध कुशलता से सम्बन्धित है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. निष्पादन बजट को लागू करने की सिफारिश .....आयोग द्वारा की गयी थी।
2. शून्य आधार बजट में पिछली.....का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाता है।
3. बजट का सम्बन्ध सरकार की .....तथा ..... से है।
4. निष्पादन बजट के अन्तर्गत .....निष्पादन को प्रधानता दी गयी है।

निम्नलिखित तथ्यों को सुमेलित कीजिए?

अ		ब
1. बजट की समयावधि	(क)	मितव्ययता
2. शून्य आधार बजटिंग	(ख)	पूर्ववर्ती मद
3. निष्पादन बजट	(ग)	वित्तीय वर्ष
4. परम्परागत बजट प्रणाली	(घ)	लेखा परीक्षण प्रणाली

11.8 सारांश (Summary)

विभिन्न खण्डों के अन्तर्गत आपने बजटिंग से सम्बन्धित अनेक आयामों का अध्ययन किया। सामान्य रूप से बजटिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जो लोकसत्ताओं की आय तथा व्यय के मार्ग को निर्धारित करती है तथा उस पर आवश्यक नियंत्रण लगाती है। बजट के अन्तर्गत सरकार द्वारा व्यय किये जाने वाली मदों के साथ व्यय के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने के लिए आय की मदों को भी स्पष्ट किया जाता है। बजट को अनेक अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने स्तर से परिभाषित कियाक है जिसमें शिराज, किंग, गैस्टन जेज, डॉल्टन, टेलर आदि की परिभाषाओं को महत्वपूर्ण माना गया है। बजट का किसी देश की राजकोषीय नीति से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। देश की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण उपकरण यदि कोई है तो उसे बजट ही कहा जायेगा। राजकोषीय नीति के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये एक अच्छे बजट की अत्यन्त आवश्यकता है। बजट का निर्माण तथा बजट का क्रियान्वयन दोनों के मध्य उचित समन्वय की अधिक आवश्यकता पायी जाती है।

परम्परागत बजटिंग के अन्तर्गत पूर्व में आवंटित मदों के आधार पर ही बजट का निर्माण किया जाता है। प्रायः परम्परागत बजट को संतुलित करने की धारणा प्रचलित रही है। परम्परागत बजटिंग को चालू खाता तथा पूँजीगत खाते में विभाजित करने की भी धारणा प्रचलित रही है। परम्परागत बजटिंग में आवश्यक सुधार करने के लिये अनेक देशों द्वारा निष्पादन तथा शून्य आधारित बजटिंग को अपनाना अधिक उपयोगी समझा। राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति तथा अर्थव्यवस्थाओं की बदलती प्रवृत्तियों के कारण परम्परागत बजटिंग को अपनाये रखना जरूरी नहीं समझा गया। वर्तमान में वैश्वीकरण के प्रभाव तथा सरकारों के अपव्यय को रोकने के लिए निष्पादन

बजटिंग तथा शून्य आधारित बजटिंग को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि दोनों बजटिंग किसी देश की अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक है फिर भी इस बजटिंग के मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा की गयी हैं।

11.9 शब्दावली (Glossary)

- **राजकोषीय नीति -** सरकार की वह नीति जिसका सम्बन्ध राजकोष से लगाया जाता है।
- **हीनार्थ प्रबन्धन -** सरकारी घाटे की पूर्ति के लिए अपनायी जाने वाली वह व्यवस्था जिसे नयी मुद्रा छाप कर या केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर पूरी की जाती है।
- **निष्पादन -** कार्य संचालन के बाद उद्देश्य प्राप्तियाँ।
- **कसौटी -** योजनाओं/मदों की जाँच के लिए बनायी गयी नीतियाँ एवं उपकरण।
- **लेखा-परीक्षण -** वित्तीय अभिलेखों की जाँच-पड़ताल
- **स्वमूल्यांकन -** स्वयं द्वारा नियंत्रित एवं संचालित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का स्वयं द्वारा समीक्षा करना।
- **मितव्ययता -** उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक व्यय की प्रवृत्ति।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

सही / गलत कथन का चयन कीजिए?

1. सही, 2. सही, 3. गलत, 4. सही,

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. हूबर, 2. कार्यक्रम/योजनाओं, 3. आय-व्यय, 4. ईष्टम

निम्नलिखित तथ्यों को सुमेलित कीजिए?

1. ग 2. क 3. घ 4. ख

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- भाटिया एच.एल. (2006), *लोकवित्त,* विकास पब्लिषिंग हाउस प्रा0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे.सी. (2005), *राजस्व,* लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाषक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे.सी. (1997), *राजस्व,* साहित्य भवन पब्लिकेषन्स, हॉस्पिटल रोड, आगरा।

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- सेठी, टी.टी. (2005), *मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त*, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010), *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस.चन्द एण्ड क.लि., नई दिल्ली।

- मिश्र, जगदीश नारायण (2011), *भारतीय अर्थव्यवस्था*, किताब महल पब्लिषर्स, हरिसदन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

11.13 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बजट से आप क्या समझते हैं? इसे परिभाषित करने हुए परम्परागत बजटिंग को समझाइये।
2. परम्परागत बजटिंग तथा शून्य आधार बजटिंग में क्या असमानतायें पायी जाती हैं? स्पष्ट कीजिए?
3. निष्पादन बजटिंग से आपका क्या आशय है? निष्पादन बजटिंग के मुख्य आधारों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
4. शून्य आधार बजटिंग की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसकी मुख्य कठिनाइयों को समझाइये?
5. भारत में बजटिंग प्रक्रिया को समझाते हुए शून्य आधार बजट पर प्रकाश डालिए?

इकाई - 12 घाटे की वित्त व्यवस्था एवं घाटे का मुद्रीकरण और राजकोषीय क्षेत्र सुधार (Deficit Finance and Monetization of Deficit and Fiscal Sector Reforms)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 घाटे की वित्त से तात्पर्य

12.4 भारत में बजटीय घाटे की अवधारणाएं

12.5 भारत में सरकारी घाटों के आकलन के सूत्र

12.6 भारत में घाटे की वित्त - व्यवस्था का उद्देश्य

12.7 भारतवर्ष में हीनार्थ प्रबन्धन का मूल्यांकन

12.8 भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव

12.9 भारत में हीनार्थ प्रबन्ध के बुरे प्रभाव को राकने के उपाय

12.10 राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम

12.11 घाटे का मुद्रीकरण या मौद्रीकृत घाटा

12.12 भारत में राजकोषीय क्षेत्र में सुधार

12.13 अभ्यास प्रश्न

12.14 सारांश

12.15 शब्दावली

12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.19 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में सरकार की विभिन्न प्राप्तियों तथा व्ययों के अन्तर को पूरा करने हेतु हीनार्थ प्रबंन्धन अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेगें।

जैसा कि आप जानते है कि बढ़ते लोक कल्याणकारी जिम्मेदारियों तथा इसके बढ़ते हुए व्ययों को पूरा कर पाना सरकारों के लिए बहुत मुश्किल हो रहा है। विशेष रूप से विकासशील राष्ट्रों में अनेक जटिल समस्याये हैं।

आय के स्त्रोत सीमित हैं तथा लक्ष्य अनेक हैं। जनतांत्रिक सरकारों की स्थापना तथा जनकल्याणकारी कार्यों का अंतहीन लक्ष्य सरकार की प्राप्तियों से पूरा हो सकना संम्भव नहीं है। विदेशी सरकारें या तो ऋण देने में अनाकानी करती हैं अथवा ऋण के साथ अनेक शर्तें थोपती हैं। ऐसे समय आन्तरिक स्त्रोत में रूप में हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा अतिरिक्त मुद्रा का सृजन करके तत्कालीन समस्याओं से निदान पाया जाता है।

इस इकाई में भारत के सन्दर्भ में परिभाषित अनेक बातों को समावेश किया गया है। विशेष रूप से घाटे की वित्त व्यवस्था से तात्पर्य, अमेरिकन एवं भारतीय दृष्टिकोण, बजटीय घाटे की विभिन्न अवधारणाओं, भारतीय बजट का सार, घाटे की वित्त व्यवस्था के उद्देश्यों, भारत में हीनार्थ प्रबंधन का मूल्यांकन, घाटे की वित्त का प्रभाव, हीनार्थ प्रबंधन रोकने के उपाय, राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, मौद्रीकृत घाटा, राजकोषीय क्षेत्र में सुधारों की चर्चा करते हुए सारांश दिया गया है, जिसके अन्तर्गत भारतीय हीनार्थ प्रबंधन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों को समझा जा सकता है।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- ✓ घाटे की वित्त व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में घाटे की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- ✓ बजटीय घाटे की विभिन्न अवधारणाओं का बोध होगा।
- ✓ घाटे सम्बन्धी अनेक सूत्रों का ज्ञान।
- ✓ घाटे के उद्देश्यों को जानना।
- ✓ भारत में हीनार्थ प्रबंधन का मूल्यांकन करना।
- ✓ घाटे की वित्त व्यवस्था के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान।
- ✓ हीनार्थ प्रबंधन के प्रभाव को रोकने के उपाय।
- ✓ FRBM Act 2003 का ज्ञान प्राप्त करना।
- ✓ मौद्रीकृत घाटा का ज्ञान।

12.3 घाटे की वित्त से तात्पर्य (Concept of Deficit Financing)

साधारण बोलचाल की भाषा में **'घाटे की वित्त व्यवस्था'** का अर्थ है सरकार की आय की तुलना में व्यय का अधिक होना। ऐसे समय सरकार अपने बजट में उत्पन्न होने वाले घाटे को पूरा करने हेतु जो व्यवस्था देती है, उसे हीनार्थ प्रबंधन अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था कहते हैं। सामान्यता ऐसे घाटे तीन प्रकार से पूरा किये जाते हैं:

(क) आन्तरिक ऋण,

(ख) बाह्य या विदेशी ऋण,

(ग) नई मुद्रा जारी कर या छापकर।

आय एवं व्यय के मध्य उत्पन्न खाई (Gap) का पूरा करने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में हीनार्थ प्रबंधन की निम्न दो विचारधारा देखने को मिलती है:

1 अमेरिकन दृष्टिकोण (American Concept)

अमेरिकी दृष्टिकोण से सम्बन्धित अधिकांश पश्चिमी देशों में जब कभी सरकारी व्यय उसकी आय से अधिक हो जाती है तब सरकार अतिरिक्त व्यय को पूरा करने हेतु अपने बैंकों अथवा जनता अथवा दोनों से ऋण लेकर अपने घाटे की पूर्ति करता है और इस व्यवस्था को घाटे की वित्त व्यवस्था अथवा हीनार्थ प्रबंधन कहा जाता है। इस तरह अधिकांश पश्चिमी देश ऋणों की व्यवस्था को घाटे की वित्त व्यवस्था मानते हैं। इनका मानना है कि ऋणों से व्यक्ति अथवा बैंकों की निष्क्रिय मुद्रा सक्रिय होकर उपयोग में आ जाने से व्यय की बढ़ी मात्रा को पूरा कर लिया जाता है। परन्तु भारत में सार्वजनिक ऋणों से पूरे किये जाने वाले व्यय को घाटे की वित्त व्यवस्था नहीं माना जाता है।

2. भारतीय दृष्टिकोण (Indian Concept)

भारत में जब सरकार की कुल आय (राजस्व खाते+पूंजीगत खाते की आय), इसके कुल व्यय से कम होती है तो इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार रिजर्व बैंक में जमा अपने नगद कोषों से धन निकालती है अथवा रिजर्व बैंक तथा व्यापारिक बैंकों से ऋण प्राप्त करती है अथवा नये नोट छापती है तो इसे हीनाथ प्रबंधन कहते हैं। इन सभी उपायों से चलन में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है।

दूसरे शब्दों में, भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था का आशय केवल उस व्यय से लगाया जाता है जो सरकार की चालू आय तथा गैर-बैंकिंग उधार से अधिक मात्रा में होता है। यहाँ जनता से जो उधार लिया जाता है उसे घाटे की परिधि से बाहर रखा जाता है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इससे कुल राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि नहीं होती। परन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब सरकारी उधार लोगों की बचतों से प्राप्त हो जाये। जबकि सदैव ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। यही नहीं जब सरकार उधार लेती तब उसे यह ज्ञात नहीं रहता कि वह जो ऋण व्यक्तियों से प्राप्त कर रही है उस ऋण को व्यक्ति कहाँ से दे रहे हैं।

भारत के सन्दर्भ में घाटे की वित्त व्यवस्था की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं:

डॉ. वी.के. आर.वी. राव (V.K.R.V. Rao) के अनुसार, ***"जब सरकार जान बूझकर किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपनी आय से अधिक व्यय करे और इस घाटे की पूर्ति किसी भी ऐसी विधि से करे जिससे देश में मुद्रा की मात्रा बढ़े तो उसे घाटे की वित्त व्यवस्था ही कहना चाहिये।"***

डॉ. आर.जी. कुलकर्णी के अनुसार, ***"हीनार्थ प्रबंधन वाक्यांश का प्रयोग सार्वजनिक आय एवं सार्वजनिक व्यय के बीच जानबूझकर उत्पन्न किये गये अन्तर की वित्त व्यवस्था को सूचित करने हेतु किया जाता है।"***

भारतीय योजना आयोग के अनुसार, ***"घाटे की वित्त व्यवस्था शब्द बजट के घाटे द्वारा कुल राष्ट्रीय व्यय में प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है, यह घाटे चाहे आय खाते से सम्बन्धित हो अथवा पूंजी खाते से। ऐसी नीति अपनाने का सार यही होता है कि सरकार अपनी उस आय से अधिक मात्रा में व्यय करती है जो उसे कारारोपण, सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त आय, जनता से प्राप्त ऋण, जमा एवं कोष तथा अन्य मदों से प्राप्त होती है। सरकार इस घाटे की पूर्ति या तो अपने संचित शेषों को प्रयोग में लाकर करती हैं अथवा बैंको से उधार लेकर (मुख्यतः देश के केन्द्रीय बैंक से) और इस प्रकार मुद्रा का सृजन करके करती है।"***

12.4 भारत में बजटीय घाटे की अवधारणाएं (Concept of Budgetary Deficits in India)

वर्तमान में कार्य कर रही सरकारें अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित सरकारी कार्यों को सम्पादित करने के क्रम में सार्वजनिक व्यय करती हैं तथा इस व्यय को पूरा करने के लिए विभिन्न स्त्रोतों से धन प्राप्त करती हैं जिन्हें ***सार्वजनिक प्राप्तियाँ*** कहा जाता है। सार्वजनिक घाटा वस्तुतः सार्वजनिक व्ययों तथा सार्वजनिक प्राप्तियों के अन्तर से सम्बन्धित हैं।

सार्वजनिक व्ययों एवं सार्वजनिक प्राप्तियों से सम्बन्धित वित्तीय व्यवहार को निम्न चार्ट 12.1 द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

चार्ट 12.1

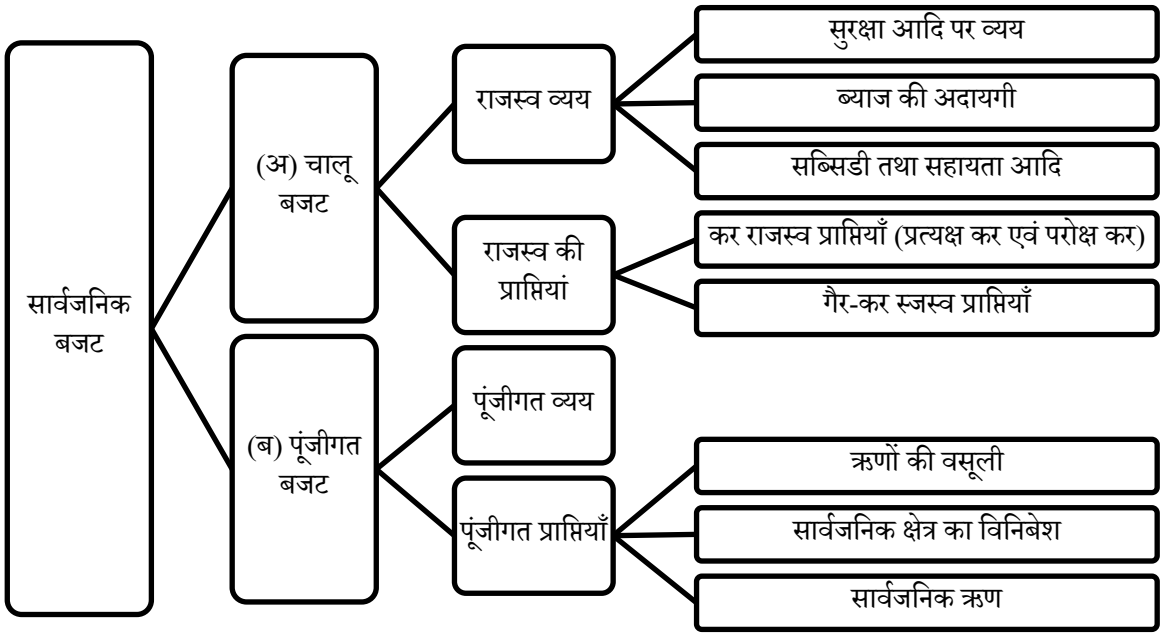

ऊपर प्रदर्शित किए गए चार्ट में स्पष्ट है कि, सार्वजनिक वित्तीय व्यवहारों को दो भागों में बाटा जा सकता है:-

1. चालू वित्तीय व्यवहार
2. पूंजीगत स्वभाव का व्यवहार

चालू बजट को ही राजस्व बजट कहा जाता है।

राजस्व बजट के दो भाग होते हैं- राजस्व व्यय तथा राजस्व आय। राजस्व बजट को जिस खाते में प्रदर्शित किया जाता है उसे राजस्व खाता कहा जाता है। भारत में चालू व्ययों अर्थात राजस्व व्यय के अन्तर्गत मुख्य रूप से सुरक्षा, ब्याज की अदायगी तथा सब्सिडी आदि को सम्मिलित किया जाता है। राजस्व प्राप्तियों को भी दो भागों (कर राजस्व तथा गैर- कर राजस्व) में विभाजित किया जाता है। कर राजस्व के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों को रखा जाता है।

पूंजीगत बजट को भी इसी तरह दो भागों में बांटा जा सकता है - पूंजीगत व्यय तथा पूंजीगत प्राप्तियाँ। पूंजीगत व्यय के अन्तर्गत उन व्ययों को सम्मिलित किया जाता है। जोकि निवेश अथवा पूँजी निर्माण से सम्बन्धित होते हैं जबकि पूंजीगत प्राप्तियों में पूंजी स्वभाव की प्राप्तियों को शामिल किया जाता है। भारत में पूंजीगत प्राप्तियों के अन्तर्गत सार्वजनिक ऋणों, ब्याज की वसूली तथा सार्वजनिक उद्यमों, आदि की बिक्री से प्राप्त विनिवेश आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह पूंजीगत व्यय तथा पूंजीगत प्राप्तियों को जिस खाते में प्रदर्शित किया जाता है उसे पूंजी खाता (Capital Account) अथवा पूंजी बजट (Capital Budget)कहते है।

इस तरह, राजस्व खाता तथा पूंजी खाता मिलकर सरकार के आय-व्यय से सम्बन्धित समस्त वित्तीय व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं। सार्वजनिक घाटा, वास्तव में इन्हीं दोनों खातों में प्रदर्शित शेष (Balance) से सम्बन्धित होता है। राजस्व घाटा एवं राजस्व आधिक्य को उपयुक्त विवेचना के आधार पर निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता हैं

1. राजस्व घाटा (Revenue Deficit)- यदि कुल राजस्व व्यय की मात्रा ($\sum R_{\mathrm{E}}$) कुल राजस्व प्राप्तियों ($\sum E_{\mathrm{R}}$) से अधिक हो जाता है अर्थात् ($\sum R_{\mathrm{E}} > \sum R_{\mathrm{R}}$) तब यह आधिक्य राजस्व घाटे को प्रदर्शित करता है। अर्थात् राजस्व घाटा $(R_{\mathrm{D}}) = \sum R_{\mathrm{E}} - \sum R_{\mathrm{R}})$ यहाँ $R_{\mathrm{E}} =$ Revenue Expenditure है। इस तरह राजस्व घाटा, राजस्व व्यय तथा राजस्व प्राप्तियों का अन्तर होता है।

राजस्व आधिक्य (Revenue Surplus)- यदि कुल राजस्व व्यय की मात्रा $\sum R_{\mathrm{E}}$ कुल राजस्व प्राप्तियों $(\sum R_{\mathrm{R}})$) से कम अर्थात् $\sum R_{\mathrm{R}} > \sum R_{\mathrm{E}}$ हैं तब इसे राजस्व आधिक्य कहा जायेगा। अर्थात राजस्व आधिक्य $(R_{\mathrm{S}} = \sum R_{\mathrm{R}} - \sum R_{\mathrm{E}})$ यहाँ $R_{\mathrm{S}} =$ Revenue Surplus है।

इसी तरह, पूंजीगत व्यय C_{E} तथा पूंजीगत प्राप्तियों C_{R} के आधार पर पूँजी खाते के घाटे को प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि कुल पूंजीगत व्यय $(\sum C_{\mathrm{E}})$ की तुलना में कुल पूंजीगत प्राप्तियाँ $(\sum C_{\mathrm{R}})$ कम होती है अर्थात $\sum C_{\mathrm{E}} > \sum C_{\mathrm{R}}$ तब इसे पूँजी खाते का घाटा कहा जायेगा अर्थात

पूंजीगत घाटा पूंजीगत व्यय तथा पूंजीगत प्राप्तियों का अन्तर होता है। इस तरह पूँजी खाते का घाटा.

$$C_D = \sum C_{\mathrm{E}} - \sum C_{\mathrm{R}}$$

2. बजटरी शेष (Budgetary Balance)- राजस्व खाते के शेष तथा पूंजी खाते के शेष को जोड़कर बजटरी शेष प्राप्त किया जा सकता है। अन्य शब्दों में,

$$\text{बजटरी शेष} = \text{राजस्व खाते का शेष} + \text{पूंजी खाते का शेष}$$

$$= (\text{कुल राजस्व प्राप्ति} - \text{कुल राजस्व व्यय}) + (\text{कुल पूंजीगत प्राप्ति} - \text{कुल पूंजीगत व्यय})$$

$$= (\text{कुल प्राप्तियां} - \text{कुल व्यय})$$

$$= (\text{कुछ राजस्व प्राप्तियां} + \text{कुल पूंजीगत प्राप्तियां}) - (\text{कुल राजस्व व्यय} + \text{कुल पूंजीगत व्यय})$$

$$= \sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{R}} - (\sum R_{\mathrm{E}} - \sum C_{\mathrm{E}})$$

उल्लेखनीय है कि बजटरी शेष, धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। धनात्मक बजटरी शेष बजट आधिक्य का तथा ऋणात्मक बजटरी शेष बजटरी घाटे को प्रदर्शित करेगा।

इस तरह, बजट का घाटा कुल प्राप्तियां तथा कुल व्यय (राजस्व तथा पूँजी दोनों) का अन्तर है। बजटरी घाटे की आपूर्ति सरकार रिजर्व बैंक से नकद निकासी अथवा तदर्थ कोषागार बिलों (अत्यन्त ही अल्पकालीन प्रतिभूतियां सामान्यतया 90 दिन की) के आधार पर रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करके करती हैं। इस तरह,

$$\text{बजटरी घाटा} = \text{रिजर्व बैंक से नकद निकासी} + 90 \text{ दिनों के कोषागार बिलों में वृद्धि } (\Delta TB)$$

3. राजकोषीय घाटा- Fiscal Deficit- FD)-

राजकोषीय घाटा, बजट घाटे की एक वृहत् संकल्पना है। यह धारणा केन्द्रीय सरकार की ऋणग्रस्तता पर राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है। वास्तव में, राजकोषीय घाटा वह समग्र घाटा है जो सरकार की समग्र वित्तीय आय (समग्र प्राप्तियां नहीं, क्योंकि समग्र प्राप्तियों में लोक ऋण को सम्मिलित किया जाता है जो आय नहीं है। सरकार के ऊपर आय को वापस करने का दायित्व नहीं रहता जबकि सरकार को ऋण वापस करना होता है) सम्बन्धी व्यवहारों तथा समग्र व्यय सम्बन्धी क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। अन्य शब्दों में, समग्र व्यय का आधिक्य ही राजकोषीय घाटा होता है। इसका गणितीय रूप निम्न है:

$$\text{समग्र व्यय} = (\text{कुल राजस्व व्यय} + \text{कुल पूंजीगत व्यय}) = \sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{E}}$$

$$\text{समग्र आय} = (\text{कुल राजस्व आय} + \text{कुल पूंजीगत आय}) = \sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{E}}$$

(यहां पूंजीगत आय में लोक ऋण शामिल नहीं है)

चूँकि, समग्र पूंजीगत प्राप्ति $\sum C_{\mathrm{R}}$ = कुल पूंजीगत आय $\sum C_{\mathrm{Y}}$ +लोक ऋण तथा अन्य दायित्व

अतः समग्र आय = कुल राजस्व आय + कुल पूंजीगत प्राप्ति − लोक ऋण तथा अन्य दायित्व

या समग्र आय $= \sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{E}}$ − लोक ऋण तथा अन्य दायित्व।

इसी तरह राजकीय घाटा $(\mathrm{F.D.}) = $ समग्र व्यय $-$ समग्र आय

$= (\sum R_{\mathrm{E}} + \sum C_{\mathrm{E}}) - (\sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{R}})$लोक ऋण तथा अन्य दायित्व)

$= (\sum R_{\mathrm{E}} + \sum C_{\mathrm{E}}) - (\sum R_{\mathrm{R}} - \sum C_{\mathrm{R}})$लोक ऋण तथा अन्य दायित्व)

राजकीय घाटा $(\mathrm{F.D.})$ लोक ऋण तथा अन्य दायित्व $(\sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{E}}) - (\sum R_{\mathrm{R}} + \sum C_{\mathrm{R}})$

या,

F.D. - सावर्जनकि ऋण तथा अन्य दायित्व = बजटरी घाटा

या, राजकोषीय घाटा $(F.D)$ $-$ बजटेरी घाटा $=$ लोक ऋण तथा अन्य दायित्व

इस तरह, राजकोषीय घाटा, लोक ऋण में शुद्ध वृद्धि को प्रदर्शित करता है। यह सरकार की प्राप्तियों तथा व्ययों के मध्य अन्तराल प्रदर्शित करने के साथ- साथ इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किसी चालू वर्ष में सरकार द्वारा लिए जाने वाले लोक ऋण की मात्रा कितनी रहेगी। इस तरह, राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था में संसाधन अन्तराल (Resource Gap) भी प्रदर्शित करता है।

4. प्राथमिक अथवा मूल घाटा (Primary Deficit)-

राजकोषीय घाटे में से सरकार के ब्याज के भुगतानों को निकाल देने पर प्राथमिक घाटा प्राप्त होता है। अन्य शब्दों में, प्राथमिक घाटा वह राजकोषीय घाटा है जिसमें से ब्याज अदायगियाँ घटा दी गयी हैं। घाटे की यह संकल्पना, जिसे गैर- ब्याज घाटे के रूप में जाना जाता है, सरकारी बजट की विवेकपूर्ण नीति (discretionary Policy) के प्रभाव को मापने के काम आती है। इसका उपयोग सरकारी घाटों के औचित्य के मूल्यांकन के लिए भी किया जा सकता है।

सार्वजनिक ऋणों पर किया गया ब्याज का भुगतान विगत वर्षों में हुए घाटे के परिणामस्वरूप होता है, उसका सरकार के वर्तमान व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः यदि सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवहार के कारण उत्पन्न घाटे का आकलन करना हो तो ब्याज के रूप में किए गए सम्पूर्ण भुगतान को घटाना होगा। सार्वजनिक क्षेत्र की ऋण आवश्यकता (Public Sector Borrowing Requirement-PSBR) में से जब हम कुल ब्याज के भुगतान को घटा देते हैं तब प्राथमिक घाटा प्राप्त हो जाता है।

प्राथमिक घाटे की कोई एक सर्वसम्मत संकल्पना नहीं है। सामान्यतया जिस राजकोषीय घाटे की संकल्पना का उपयोग किया जाता है उसमें व्यय के खाते में निबल उधार (Net Lending) शामिल रहते हैं। ऐसे राजकोषीय घाटे को सकल राजकोषीय घाटा (Gross Fiscal Deficit) कहा जाता है।

सकल राजकोषीय घाटे (GFD) में से प्राथमिक घाटा निकालने के सम्बन्ध में कोई एक धारणा नहीं है। एक धारणा के अनुसार GFD में से सरकार के ब्याज भुगतानों को निकल देने पर प्राथमिक घाटा प्राप्त होता है। दूसरी धारणा के अनुसार GFD में से निबल ब्याज भुगतान को निकाल देने पर प्राप्त होता है। कुल ब्याज भुगतान में से ब्याज प्राप्ति को घटा देने पर निवल ब्याज भुगतान प्राप्त होता है। जिस राजकोषीय घाटे में सरकार का निवल उधार शामिल नहीं रहता उसे निबल राजकोषीय घाटा (Net Fiscal Deficit) कहा जाता है। सरकार द्वारा दिए गए निवल उधार तथा अग्रिम एवं उधार की वसूली

का अन्तर होता हैं। जब निवल राजकोषीय घाटा में से निवल ब्याज भुगतान को घटा दिया जाता है तब निवल प्राथमिक घाटा प्राप्त होता है।

12.5 भारत में सरकारी घाटों के आकलन के सूत्र (Formula for the Measurement of Government Deficit in India)

इसे हम सारणी 12.1 में देख सकते हैं

1. बजटीय घाटा

= कुल प्राप्तियाँ– कुल व्यय

= (राजस्व प्राप्तियाँ + पूँजीगत प्राप्तियाँ) – (आयोजना भिन्न व्यय + आयोजना व्यय)

= [(कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व) + (ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियां+ उधार और अन्य देयताएँ)] – [(राजस्व खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना भिन्न व्यय) + (राजस्व खाते पर आयोजना व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना व्यय)]

2. राजस्व घाटा

= राजस्व प्राप्तियाँ – राजस्व व्यय

= (कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व) – (राजस्व खाते भिन्न व्यय + राजस्व खाते पर आयोजना व्यय)

3. राजकोषीय घाटा

= बजटीय घाटा + उधार और अन्य देयताएँ

= (राजस्व प्राप्तियाँ + ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियाँ) – (कुल व्यय)

= (कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व + ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियाँ) (आयोजना भिन्न व्यय + आयोजना व्यय)

= (कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व + ऋणों की वसूली+ अन्य प्राप्तियाँ) – (राजस्व खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + राजस्व खाते पर आयोजना व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना व्यय)

= (कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व + ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियाँ) – (राजस्व खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + राजस्व खाते पर आयोजना व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना व्यय)

4. प्राथमिक घाटा

= राजकोषीय घाटा – ब्याज की अदायगियाँ

= (कर राजस्व + कर भिन्न राजस्व + ऋणों की वसूली + अन्य प्राप्तियाँ) – (राजस्व खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना भिन्न व्यय + राजस्व खाते पर आयोजना व्यय + पूँजी खाते पर आयोजना व्यय + ब्याज की अदायगी)

5. मौद्रिकृत घाटा

= केन्द्र सरकार के लिए भारतीय रिर्जव बैंक की निबल साख (Net RBI Credit) में होने वाली वृद्धि

= भारतीय रिजर्व बैंक के बकाया ट्रेजरी बिलों (Holding of Treasury Bills of RBI) की शुद्ध वृद्धि + सरकार की बाजार उधार में रिजर्व बैंक का योगदान

उपर्युक्त सारणी 12.1 के सूत्रों को स्पष्ट करने के लिय केन्द्रीय सरकार के बजट 2012-13 का उदाहरण सारणी 12.2 से प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे विभिन्न प्रकार के घाटों को समझाना सरल होगा।

सारणी 12.2 से स्पष्ट है कि रुपए 14,90,925 करोड़ के प्रस्तावित व्यय की आपूर्ति के लिये रुपए 9,35,685 करोड़ राजस्व प्राप्तियों से व शेष रुपए 5,55,241 करोड़ पूंजीगत प्राप्तियों के रूप प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। राजस्व प्राप्तियों में (7,71,071) कर राजस्व व शेष रुपए 1,64,614 करोड़ गैर कर राजस्व के रूप में सरकार को प्राप्त होता होंगे।

सारणी 12.2 भारत के 2012-13 केन्द्रीय बजट का सार (रुपए करोड़ रूपए में)

	2010-11 वास्तविक	2011-12 बजट अनुमान	2011-12 संशोधित अनुमान	2012-13 बजट अनुमान
1. राजस्व प्राप्तियाँ (Revenue Receipts)	**788471**	**789892**	**766989**	**935685**
2. कर राजस्व (केन्द्र को निवल)	569869	664457	642252	771071
3. कर- भिन्न राजस्व	218602	125435	124737	164614
4. पूँजी प्राप्तियाँ (Capital Receipts) (5+6+7)$)	**408857**	**467837**	**551730**	**555241**
5. ऋणों की वसूली	12240	15020	14258	11650
6. अन्य प्राप्तियाँ	22846	40000	15493	30000
7. उधार और अन्य देयताएं	373591	412817	521980	513590
8. कुल प्राप्तियाँ (1+4)	**1197328**	**1257729**	**1318720**	**1490925**
9. आयोजना- भिन्न व्यय	**818299**	**816182**	**892116**	**969900**
10. राजस्व खाते पर जिसमें से	726491	733558	815740	865596
11. ब्याज भुगतान	234022	267986	275618	319759
12. पूँजी खाते पर	91808	82624	76376	104304
13. आयोजना व्यय	**379029**	**441547**	**426604**	**521025**
14. राजस्व खाते पर	314232	363604	346201	420513
15. पूँजी खाते पर	64797	77943	80404	100512
16. कुल व्यय (9+13)	**1197328**	**1257729**	**1318720**	**1490925**
17. राजस्व व्यय (10+14)	1040723	1097162	1161940	1286109
18. जिसमें पूँजी परि संपत्तियों के सृजन हेतु अनुदान	87487	146353	137505	164672
19. पूँजी व्यय (12+15)	156605	160567	156780	204816
20. राजस्व घाटा (17-1)	**252252**	**307270**	**394951**	**350424**
	(3.3)	**(3.4)**	**(4.4)**	**(3.4)**

21. प्रभावी राजस्व घाटा (20-18)	**164765**	**160417**	**257446**	**185752**
	(2.1)	**(1.8)**	**(2.9)**	**(1.8)**
22. राजकीय घाटा (16- (1+5+6)	**373591**	**412817**	**521980**	**513590**
	(4.9)	**(4.6)**	**(5.9)**	**(5.1)**
23. प्राथमिक घाटा (22-11)	**139569**	**144831**	**246362**	**193831**
	(1.8)	**(1.6)**	**(2.8)**	**(1.9)**

इस तालिका में वर्ष 2010-11 के वास्तविक आँकड़े अनंतिम हैं।

टिप्पणी: सीएसओ द्वारा जारी 2011-12 के अग्रिम अनुमानों (रुपए 8912179 करोड़) की तुलना में 14 प्रतिशत की वृद्धि मानते हुए 2012-13 के बजट अनुमान में जीडीपी बढ़कर रुपए 10159884 करोड़ होने का पूर्वानुमान है।

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि रुपए 5,55,241 करोड़ की पूंजीगत प्राप्तियाँ में रुपए 11,650 करोड़ ऋणों की वसूली से, रुपए 5,13,590 करोड़ उधारियों से तथा रुपए 30,000 करोड़ सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश से प्राप्त करने का सरकार का इरादा है। प्राप्तियों एवं व्ययों के इन अनुमानों के चलते 2012-13 में सरकार का राजस्व घाटा रुपए 3,50,425 करोड़ रहने का अनुमान बजट में लगाया गया है। यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) 2012-13 में राजकोषीय घाटा रुपए 5,13,5900 करोड़ बजट में अनुमानित है। जो सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 5.1 प्रतिशत होगा। इस तरह उक्त सारणियों 12.1 से गणितीय सूत्रों तथा 12.2 से 2012-13 के केन्द्रीय बजट अनुमानों को समझा जा सकता है।

12.6 भारत में घाटे की वित्त - व्यवस्था का उद्देश्य (Objectives of Deficit Financing in India)

वस्तुतः भारत में योजनाओं के भारी व्यय को पूरा करने तथा इनकी सफलता के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाया गया, जो कि पूर्णतया सत्य है, तथा यही इसका उद्देश्य भी है। योजना के व्यय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उसकी पूर्ति केवल कराधान से नहीं की जा सकती है और न ही जनता से उधार लेकर की जा सकती है। साधनों की कमी को अंशतः विदेशी सहायता या ऋणों से दूर किया जा सकता है, परन्तु यह विकल्प भी हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है। इसीलिए घाटे के बजटों को अपनाया जाता है। योजनाओं में उत्पादन तथा रोजगार के लक्ष्य प्रारम्भ में ही निर्धारित कर दिये जाते हैं। जब ये लक्ष्य उन खर्चों के द्वारा पूरे नहीं होते जिनकी वित्त -व्यवस्था कराधान तथा उधार द्वारा की जाती है, तब उनके लिए अतिरिक्त साधन ढूँढ़ने होते हैं। घाटे की वित्त व्यवस्था हेतु सोच-समझकर निर्णय करते हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था तो मात्र एक उपाय है जो सरकार की ओर से साधनों के स्थानान्तरण में सहायता प्रदान करती है। आर्थिक विकास के लिए जिन वास्तविक साधनों की आवश्यकता होती है वे सामग्री, साज- सज्जा, चातुर्य और श्रम के रूप में होते हैं। इन सब को हम मात्र नोट छापकर प्राप्त नहीं कर सकते हैं। घाटे की वित्त - व्यवस्था सरकार को धन अवश्य दे सकती है जिसका उपयोग साधनों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है, परन्तु शर्त यह है कि वे साधन देश में ही उपलब्ध हो सकते हों। यदि एक सीमा से आगे इस व्यवस्था को लागू किया गया तो इनके परिणाम हानिकारक हो सकते हैं। कीमतों में ऐसी वृद्धि होगी जिसे रोकना मुश्किल होता है फलतः जनता का विश्वास अपनी मुद्रा से उठ जाता है। ऐसी दशा में इसके

प्रभाव हानिकारक ही होंगे। अतः घाटे की वित्त-व्यवस्था को सोच- समझकर व नियन्त्रित रूप से ही अपनाया जाना चाहिए।

12.7 भारतवर्ष में हीनार्थ प्रबन्धन का मूल्यांकन (Evaluation of the Indian Deficit Financing)

भारत में हीनार्थ प्रबन्ध का सीधा सम्बन्ध मूल्य- स्तरों से जुड़ा है। प्रथम योजना को छोड़ कर शेष योजनाओं में हीनार्थ प्रबन्ध से मूल्य- स्तर में वृद्धि होती रही। हमारे देश में हीनार्थ प्रबन्ध की व्यवस्था विवादास्पद रही है। कुछ लोगों का कहना था कि योजनाओं की सफलता के लिए घाटे की वित्त- व्यवस्था की सहायता लेनी होगी, परन्तु दूसरा मत इसके विपरीत था। दूसरे मत के अनुसार प्रथम योजना के बाद घाटे की वित्त-व्यवस्था के कारण देश में मूल्य- स्तर लगातार बढ़ते गये और साख- नियन्त्रण के लिए अपनाये गये सभी प्रयोग विफल हो गये।

भारत में हीनार्थ प्रबन्ध के दुष्परिणाम सामने आये हैं। अर्थशास्त्रियों को कहना है कि देश में अब हीनार्थ प्रबन्ध की सीमा आ चुकी है, उसे अब और अधिक हीनार्थ प्रबन्ध नहीं करना चाहिए। परन्तु स्थिति सरकार के बूते के बाहर है, न चाहते हुए भी घाटे की वित्त- व्यवस्था को अपनाया जा रहा है। यदि अनायास घाटे की राशि में कटौती कर दी गयी तो इससे उपभोग, रोजगार व प्रभावोत्पादक माँग में कमी आयेगी। यदि सरकार सावधानी के साथ सही मात्रा में हीनार्थ प्रबन्ध की सहायता लेती है, तो इसके परिणाम बुरे नहीं होंगे। पूर्व प्रधानमन्त्री **मोरारजी देसाई** ने हीनार्थ प्रबन्ध को देश को देश के लिए अहितकर बताते हुए कहा था कि ***"अच्छी योजना के लिए भी हीनार्थ प्रबन्ध अवश्य ही संकट को जन्म देता है। ऐसा विगत वर्षो में हुआ।"*** हीनार्थ प्रबन्ध की व्यवस्था को रोकने के बारे में चाहे प्रधानमन्त्री वक्तव्य दें या वित्तमन्त्री, इसे रोकना सम्भव नहीं। यद्यपि हीनार्थ प्रबन्ध के साथ-साथ कुछ ऐसी प्रभावकारी अंकुश अवश्य लगाने चाहिए जो इसके दुष्परिणामों को रोक सके।

सारणी 12.3 योजना काल में परिव्यय, हीनार्थ प्रबन्ध व राष्ट्रीय आय की स्थिति

योजना	वर्ष	योजना परिव्यय (करोड़ रूपए में)	योजनाकाल में राष्ट्रीय आय वृद्धि का लक्ष्य प्रतिशत में	वार्षिक लक्ष्य प्रतिशत में	वार्षिक प्राप्ति प्रतिशत में	हीनार्थ प्रबन्ध (करोड़ रूपए में)	हीनार्थ प्रबन्ध का प्रतिशत
प्रथम	1951-56	1960	18.0	3.6	3.0	420	17
द्वितीय	1956-61	4600	25.0	5.0	3.9	1200	20
तृतीय	1961-66	8630	25.0	5.0	2.5	8630	13
वार्षिक	1966-69	6665	-	-	-	686	10
चतुर्थ	1969-74	15902	27.5	5.5	3.3	3750	13
पंचम	1974-79	39303	22.0	4.4	5.2	2784	03
छठी	1980-85	97500	26.0	5.2	5.2	5000	05
सातवी	1985-90	180000	25.0	5.0	5.8	14000	7.8
आठवीं	1992-97	320000	28.0	5.6	6.8	49000	05
नवीं	1997-2002	859000	32.5	6.5	-	-	-

नयी आर्थिक नीति के प्रारम्भ 1990-91 से भारत सरकार द्वारा किये गये हीनार्थ प्रबन्धन को निम्न है सारणी 12.4 में दिखाया गया।

सारणी 12.4 केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों का घाटा (सकल घरेलु उत्पाद का प्रतिशत)

वर्ष	केन्द्रीय सरकार			राज्य सरकारें		
राजस्व घाटा	प्राथमिक घाटा	राजकीय घाटा	राजस्व घाटा	प्राथमिक घाटा	राजकीय घाटा	राजस्व घाटा
1990-91	3.3	2.8	6.6	0.9	1.8	3.3
1995-96	2.5	0.0	4.2	0.7	0.8	2.6
2000-01	4.0	0.9	5.6	2.6	1.8	4.3
2004-05	2.5	-0.1	4.0	1.3	0.7	3.4
2007-08	1.1	-0.9	2.5	-0.9	-0.5	1.5
2008-09	4.5	2.6	6.0	-0.2	0.6	2.4
2009-10	5.2	3.2	6.5	0.5	1.5	2.9
2010-11	3.3	1.8	4.9	0.3	0.9	2.7
2011-12(संशोधित)	4.4	2.8	5.9	-0.2	-	2.2
2012-13 (बजट)	3.4	1.9	5.1	-	-	-
2013-14(लक्ष्य)	2.8		4.5			
2014-15	2.0		3.9			

उक्त सारणीयों 12.3 तथा 12.4 से स्पष्ट है कि अनेक प्रयासों के बावजूद लगभग प्रत्येक योजना वर्ष में घाटे की वित्त व्यवस्था भारी मात्रा में करनी पड़ी। यद्यपि 2004-05 तथा 2007-08 में घाटे की व्यवस्था में कमी देखी गयी है। राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम FRBM Act की व्यवस्था के बावजूद घाटे की वित्त व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण संभव नहीं हो सका है।

12.8 भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव (Effects of Deficit Finance in India)

भारत में घाटे की वित्त-व्यवस्था का निम्न प्रभाव देख सकते हैं

1. घाटे की वित्त-व्यवस्था से आर्थिक विकास में तेजी देखी गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में विशेष रूप से दिखी।
2. घाटे की वित्त-व्यवस्था से निजी निवेश प्रोत्साहित हुए तथा नये-नये विनियोगकर्ता भी उत्पादन के क्षेत्र में प्रवेश पाने लगे।
3. घाटे की वित्त-व्यवस्था से हमारे देश में रोजगार का स्तर बढ़ा, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई तथा लोगों में बचत करने की योग्यता भी बढ़ी।
4. घाटे की वित्त-व्यवस्था का देश में स्फीतिजनक प्रभाव पड़ा तथा बैंकों के द्वारा अतिरिक्त साख का सृजन किया जाने लगा जिससे कीमतें बढ़ने लगी।
5. स्फीति का क्रम जारी रहा, उपभोग की प्रवृत्ति घटने लगी और उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ा।
6. घाटे की वित्त-व्यवस्था का प्रभाव धनी व अमीर दोनों पर समान रूप से पड़ा।

इस तरह घाटे की वित्त-व्यवस्था के अच्छे तथा बुरे दोनों प्रभाव देखने को मिले हैं। यदि इस व्यवस्था को नियंत्रित किया जा सका तो निःसन्देह इस व्यवस्था से अल्पविकसित देशों का कायाकल्प हो सकता है।

12.9 भारत में हीनार्थ प्रबन्ध के बुरे प्रभाव को राकने के उपाय (Steps to check Bad Effect of Deficit Finance in India)

भारत सरकार ने हीनार्थ प्रबन्ध को रोकने के निम्न उपाय अपनाये हैं:

1. साख पर कठोर नियन्त्रण,
2. भौतिक नियन्त्रण,
3. जनता में वितरण की पद्धति को प्रभावी बनाना,
4. अनाज का बफर स्टॉक रखना ताकि मूल्य-स्तरों को बढ़ने से रोका जा सके,
5. उपभोग्य पदार्थों के सट्टा बाजार पर प्रतिबन्ध लगाना,
6. साधनों को जुटाने में गैर-स्फीतिक उपायों पर बल, तथा
7. राज्यों के अधिविकर्ष (overdraft) पर नियन्त्रण।

यद्यपि भारत सरकार मुद्रा प्रसार व कीमत नियंत्रण पर प्रभावी अंकुश लगाती रही परन्तु फिर भी हम मुद्रा-प्रसार व कीमत-वृद्धि पर रोक न लगा सकें, स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि हम अपने उत्पादन में वृद्धि न कर सके। जब तक उत्पादन में वृद्धि न होगी तब तक मूल्य-स्तर को रोकने के लिए अपनाये गये उपाय सफल नहीं हो सकते हैं।

यदि हमें अपने देश का आर्थिक विकास तेजी से करना है तो यह भी ध्यान में रखना होगा कि आर्थिक विकास कीमतों में स्थिरता के साथ होना चाहिए अन्यथा देश को विकास का लाभ नहीं मिल सकेगा। स्थिरता के साथ-साथ विकास के दो आवश्यक तत्व भी हैः

1. निवेश के लक्ष्यों के अनुरूप बचत में वृद्धि की जाये, जिससे कीमतों में वृद्धि न हो। ऐसा सरकारी आय बढ़ाकर किया जा सकता है। सरकारी आय में वृद्धि के लिए आवश्यक है कि सार्वजनिक उपक्रमों की दशा सुधरे जबकि वास्तव में सरकारी उपक्रमों को सुविधाएं देने के बाद भी वे निजी क्षेत्र की अपेक्षा घाटे में काम कर रहे हैं। अतः सार्वजनिक उपक्रमों की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार किया जाय। उससे व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त किया जाय। योग्य तकनीकी विशेषज्ञों के हाथों में उनकी प्रशासन-व्यवस्था सौंपी जाय। साथ ही, इन उपक्रमों को राजनीति से दूर रखा जाय। इसके अतिरिक्त, कर-आय व राष्ट्रीय आय के अनुपात को भी बढ़ाया जाना चाहिए।
2. हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि निवेश की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाये और निवेश को विभिन्न मदों में इस प्रकार बाँटा जाए कि आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति उनकी माँग के अनुरूप हो। पिछड़े हुए क्षेत्रों में भी सार्वजनिक निवेश को बढ़ाया जाना चाहिए। यदि सरकार स्वयं निवेश करने में समर्थ न हो तो वह पिछड़े हुए क्षेत्रों में निवेशकर्ताओं को निवेश के लिए आकर्षित करे। देश में विदेशी पूँजी को आमंन्त्रित किया जा जाए। यहाँ कुछ लोग यह भी कहते हैं कि ऐसा करने से देश में आर्थिक उपनिवेश स्थापित हो जायेगा, परन्तु उनका ऐसा कहना सत्य नहीं हैं। आज की परिस्थितियाँ प्राचीन से भिन्न हैं। आज स्वयं भारतीय

पूँजीपति विदेशों में विनियोग करते हैं लाभ कमाने के लिए न कि वहाँ शासन करने के लिए। आज जब हमें ऋण-भार तथा मुद्रा-प्रसार के भार से दबते जा रहे हैं तो ऐसी दशा में देश की अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए विदेशी पूँजी को आमन्त्रित करना गलत नहीं है। विदेशी पूँजीपतियों को बिना शर्त नहीं, बल्कि सशर्त आमन्त्रित करना चाहिये। ऐसी दशा में विदेशी हस्तक्षेप की विशेष चिन्ता नहीं होगी।

हीनार्थ प्रबन्धन को कम करने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम को लाना है।

12.10 राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम (Fiscal Responsibility and Budget Management Act-FRBM-2003)

1990 के दशक में नव परम्परावादी विचारधारा (Neo Classical Ideology) के पुर्नउदय (resurgence) से संतुलित बजट को बिना किसी तर्क और औचित्य के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति प्राप्त हो गई। संतुलित बजट अपने आप में कोई सकारात्मक तत्व नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि हर स्थिति में बजट का संतुलित होना अच्छी बात नहीं होती, फिर भी नवपरम्रावादी अर्थशास्त्रियों ने यह मान लिया कि संतुलित बजट अपने आप में अच्छी चीज है। अनेक देशों में सरकारों ने स्वेच्छा संतुलित बजट की नीति को नहीं अपनाया है। इसलिए यह सुझाव दिया गया कि राजकोषीय संतुलन लाना सरकार का उत्तरदायित्व है। इस दिशा में उदारवादी आर्थिक विचारधारा के प्रभाव से भारत सरकार ने संतुलित बजट और घाटा नियंत्रण की नीति को अपनाया है, अमेरिका में इस दृष्टि से **ग्राम रडमैन होलिंग्स अधिनियम (Gramm Rudman Holings Act)** पास किया। इस अधिनियम के तहत अमेरिका में संतुलित बजट की नीति अपनायी गयी। इस कानून के अनुसार सरकार का वित्तीय घाटा शून्य होना चाहिए। विभिन्न देशों में जहाँ राजकोषीय उत्तरदायित्व सरकार पर डाला गया। वहाँ यदि स्वेच्छापूर्वक सरकार ने संतुलित बजट की नीति को नहीं अपनाया तो उसे कानूनी प्रावधान के द्वारा इस दिशा में कार्य करने के लिए विवश किया गया। भारत में राजकोषीय संतुलन स्वेच्छा से नहीं लागू किया गया। इसलिए इस देश में भी राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध की कानूनी व्यवस्था की गयी है। इसी क्रम में केन्द्र एवं राज्य सरकारों मे वित्तीय अनुशासन बनाए रखने के उद्देश्य से लाए गए राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन विधेयक (Fiscal Responsibility and Budget Management Bill) को लोक सभा ने 7 मई, 2003 को पारित कर दिया तथा 5 जुलाई 2004 से अधिसूचित किया गया। इस विधेयक में राजस्व घाटे व राजकोषीय घाटे को चरणबद्ध तरीके से इस प्रकार कम करने की बात कही गई थी कि 2007-08 (जिसे 2004-05 के बजट के वर्ष में वर्ष 2008-09 किया गया) तक राजस्व घाटा शून्य किया जा सके। इसके पश्चात् इस खाते में आधिक्य प्राप्त करने का प्रयास किया जा सके।

इस विधेयक को मूलतः सन् 2000 में संसद में प्रस्तुत किया गया था, जहाँ इसे स्थायी संसदीय समिति को सन्दर्भित किया गया था। मूल विधेयक में यह प्रावधान किया गया था कि राजस्व घाटे में प्रतिवर्ष 0.5 प्रतिशत बिन्दु की कटौती करते हुए राजस्व घाटे को 2005-06 तक शून्य किया जाए, जबकि राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 2 प्रतिशत तक लाया जाए। संसदीय समिति द्वारा सुझाए गए सुधारों के बाद विधेयक के प्रावधानों में कुछ ढील दी गई थी तथा उसी के अनुरूप अब राजस्व घाटे को 2008-09 तक शून्य करने का लक्ष्य निर्धारित

किया गया था। घाटे में प्रतिवर्ष कितनी कमी की जाए, इसके लिए कोई प्रावधान अब विधेयक में नहीं किया गया है।

1 FRBM Act 2003 के अन्तर्गत सरकार के अन्य दायित्व इस प्रकार थे -

1. राजकोषीय घाटे में इतनी कमी लाना कि GDP का न्यूनतम 0.3 प्रतिशत हो, ताकि 2007-08 तक (जिसे बाद में 2008-09 कर दिया गया था) यह घटकर GDP का 3 प्रतिशत रह जाए।
2. किसी एक वित्तीय वर्ष में सरकारी गारण्टी को GDP के 0.5 प्रतिशत तक सीमित करना।
3. अतिरिक्त देनदारियों को (मौजूदा विनिमय दर में विदेशी ऋण सहित) 2004-05 में GDP के 9 प्रतिशत, 2005-06 में 8 प्रतिशत, 2006-07 में 7 प्रतिशत तथा 2007-08 में 6 प्रतिशत तक सीमित करना।
4. 1 अप्रैल, 2006 के बाद से RBI से सीधे उधार न लेना।
5. संसद में आर्थिक बजट के साथ Macro Economic Framework Statement, Fiscal Policy Strategy Statement तथा Median Term Fiscal Policy Statement पर बयान पेश करना।
6. 2006-07 से पहले अधिक राजकोषीय पारदर्शिता की ओर अग्रसर होना तथा राजस्व बकाया और गारण्टी तथा परिसम्पत्ति आदि विनिर्दिष्ट सूचना देना प्रारम्भ करना।

2 राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंध अधिनियम का मूल्यांकन (Appraisal of FRBM Legislation)

राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंध अधिनियम केन्द्रीय सरकार की ओर से एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा वर्तमान सरकार विभिन्न भावी सरकारों को राजकोषीय अनुशासन बनाए रखने के लिए बाध्य कर सकती है। यद्यपि इस अधिनियम के पक्ष में आम सहमति है कि सरकार इसके द्वारा राजकोषीय अनुशासन को लागू करती रहेगी। परन्तु आम सहमति होने के बावजूद अनेक अर्थशास्त्रियों ने इस अधिनियम की निम्नलिखित आलोचनाएं की हैं:

1. भारत में आम सहमति है कि राजस्व घाटे का शून्य तक लाना है। परन्तु इस विषय पर एकमत होने के बावजूद 1990 के दशक में विभिन्न केन्द्रीय सरकारें इस उद्देश्य को प्राप्त कर पाने में असफल रही। वस्तुतः सरकारों का राजस्व घाटा बढ़ता ही रहा। ब्याज भुगतानों, अर्थ-सहायता, प्रतिरक्षा व्यय तथा अन्य गैर-विकास कार्यों पर व्यय में तेज वृद्धि हुई। यदि सरकार पर राजस्व-घाटा कम करने की बाध्यता थोपी जाएगी तो वास्तविक खतरा यह है कि सरकार सामाजिक सेक्टर पर (खासतौर पर मूलभूत शिक्षा व शिक्षा पर) व्यय में भारी काटौती रहेगी। ऐसी स्थिति में यह आम जनता के लिए हानिकारक सिद्ध होगा।
2. 1991 के बाद की सुधार-अवधि में जो एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति देखने में आयी है, वह है पूंजी व्यय में महत्वपूर्ण गिरावट। इस संबंध में मिहिर रक्षित कहते हैं कि राजकोषीय घाटे में कटौती करने के लिए सरकार पूंजीगत व्यय में निरंतर कटौती कर रही है, जिससे सार्वजनिक कल्याण में बाधा पड़ती है।

3. राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंध अधिनियम में विकास कार्यों के लिए पूंजीगत व्यय में कटौती का प्रावधान है। राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था है जिससे केन्द्र सरकार के लिए सामाजिक न्याय और आर्थिक संवृद्धि पर बड़ी मात्रा में निवेश करना संभव नहीं हो पाता।
4. राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंध अधिनियम इस बात की व्याख्या नहीं करता कि नीति निर्धारकों द्वारा लोक व्यय के वित्तीयन की क्या व्यवस्था की जा रही है? ऐसी स्थिति में देश में लोक कल्याण पर होने वाले लोक व्यय का वित्तीयन किस प्रकार होगा यह सुनिश्चित नहीं है। सरकार की ओर से अनेक बजटों में विभिन्न प्रकार की अनावश्यक कर छूटें दी गई हैं। जिससे केन्द्र सरकार के पास वांछनीय वित्त का अभाव उत्पन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में लोक कल्याणकारी कार्यों पर व्यय के लिए उचित मात्रा में वित्तीय साधन नहीं जुटाए जा सकेंगे।
5. इस अधिनियम की निम्नलिखित मान्यताएं भी ठीक नहीं लगतीं:
    1. कम राजकोषीय घाटे से निरंतर ऊंची दर पर संवृद्धि संभव होती है।
    2. राजकोषीय घाटे के अधिक होने का अर्थ यह है कि मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलेगा।
    3. बड़े राजकोषीय घाटे से देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कमजोरी प्रकट होती है।

    इन मान्यताओं की आलोचना करते हुए, **प्रो. सी.पी. चन्द्रशेखर**, **प्रो. जयति घोष** तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने इन्हें व्यावहारिक नहीं माना है।

12.11 घाटे का मुद्रीकरण या मौद्रीकृत घाटा (Monetization of Deficit or Monetized Deficit)

सामान्यतया विकासशील देश अपने आय की तुलना में व्यय अधिक करते हैं। सरकार इस घाटे को पूरा करने के लिये या तो संग्रहीत राशि का उपयोग करती है या बैंकिंग व्यवस्था (प्रमुख रूप से केन्द्रीय बैंक) से ऋण लेती है या नये नोट छापती है, जिससे मुद्रा का सृजन होता है। भारतीय दृष्टिकोण से इसमें जनता से प्राप्त ऋण को सम्मिलित नहीं किया जाता। इन सभी का परिणाम अन्ततः देश की मुद्रा की बढ़ती मात्रा की उपलब्धता होती है।

मौद्रीकृत घाटे का सम्बन्ध घाटे की उस राशि से है जिसकी वित्तीय व्यवस्था नोट निर्गमन के द्वारा होता है। इसे ही घाटे का मुद्रीकरण (monetization)भी कहते हैं। इसे निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है:

मौद्रिक घाटा = बजटरी घाटा + लोक ऋण के सम्बन्ध में RBI का योगदान

= तदर्थ ट्रेजरी बिल (ad hoc treasury Bills) में वृद्धि + लोक ऋण में RBI के योगदान में वृद्धि

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ट्रेजरी विलों का RBI के लोक ऋण में योगदान के कारण मुद्रीकरण (monetization)होगा। इस प्रकार तदर्थ ट्रेजरी बिल (ad hoc treasury Bills) की समाप्ति के कारण प्रत्यक्ष मुद्रीकरण (monetization)समाप्त होगा, पर मुद्रीकरण (monetization)बना रह सकता है।

बजटरी घाटा की आपूर्ति, चूंकि तदर्थ ट्रेजरी बिल (ad hoc treasury Bills) के निर्गमन द्वारा होगी, इसलिये

बजटरी घाटा =मौद्रीकृत घाटा

परन्तु यदि बजटरी घाटा शून्य हो तो मुद्रीकृत घाटा (monetized deficit) इस बात पर निर्भर करेगा कि लोक ऋण में RBI की धारिता कितनी है।

1 आर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances) की व्यवस्था तथा घाटे की धारणा –

1 अप्रैल, 1997 में तदर्थ ट्रेजरी बिल (ad hoc treasury Bills) प्रणाली को समाप्त करके उसके स्थान पर आर्थोपाय अग्रिम की व्यवस्था को लागू किया गया। इस नयी प्रणाली के अन्तर्गत सार्वजनिक व्ययों तथा सार्वजनिक प्राप्तियों के बीच अस्थायी कमी को दूर करने के लिए आर्थोपाय अग्रिम का सहारा लिया जायेगा जिसे रिजर्व बैंक द्वारा इस वर्ष में सरकार की उधारी के निबल योगदान में सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

आर्थोपाय अग्रिम बजट घाटा के वित्तीयन स्त्रोत नहीं होते। अतः इन्हें बजट अनुमान में सम्मिलित नहीं किया जाता। आर्थोपाय की अग्रिम राशि पर सामान्यता चालू रेपो (REPO) दर के बराबर ब्याज देय होगा तथा इससे ऊपर तथा बकाया राशि पर 2 प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज देय होगा। इस सुविधा के लिये यह आवश्यक है कि वित्तीय वर्ष बन्द होने के करीब 30 जून पर प्रत्येक शुक्रवार को सरकार कम से कम 100 करोड रूपया तथा अन्य दिनों पर कम से कम 10 करोड़ रूपए का न्यूनतम शेष RBI के पास रखे।

आर्थोपाय अग्रिम राशि की कुल मात्रा तथा ब्याज दर निर्धारण सरकार तथा रिजर्व बैंक के पारस्परिक समझोतों के द्वारा किया जाता है। इस सीमा से ऊपर की गई निकासी अथवा भुगतान की अवशेष राशि उस वर्ष का अधिविकर्ष (Overdraft) या ऋण माना जायेगा। यद्यपि कि आर्थोपाय अग्रिम केन्द्र सरकार की देयता में वृद्धि नहीं करती तथा इसे राजकोषीय घाटे में सम्मिलित नहीं किया जाता परन्तु अर्थोपाय अग्रिम की वह राशि जिसका भुगतान RBI को नहीं हुआ हो या बकाया (Outstandig) हो राजकोषीय घाटा में जोड़ा जाता है। इस रूप में आर्थोपाय अग्रिम अन्ततः राजकोषीय घाटे को बढ़ाता है। बजट विवरण में अनुमानित राजकोषीय घाटा के अन्तर्गत आर्थोपाय अग्रिम नहीं सम्मिलित किया जाता क्योंकि इसका पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं। परन्तु बजट वर्ष में लिये गये आर्थोपाय अग्रिम का वह भाग जो सरकार RBI को वापस नहीं कर पाती तथा सरकार पर RBI का बकाया रह जाता है उसे सरकार की देयता मानी जाती है। जब भी बजट वाले वर्ष की संशोधित या वास्तविक राजकोषीय घाटा प्रदर्शित किया जाता है तो बकाया अवशेष राशि को उसमें सम्मिलित कर लिया जाता है।

इस नयी प्रक्रिया के कारण घाटे की अवधारणा को नयी दिशा मिली है। परम्परागत बजट घाटा जो तदर्थ ट्रेजरी बिल (ad hoc treasury Bills) तथा नकद शेषों में निबल परिवर्तनों के द्वारा जाना जाता था, अब अर्थहीन तथा बेकार हो गया है। वर्तमान में सकल राजकोषीय घाटा ही बजट घाटे का प्रमुख मापक है। इसी अर्थोपाय अग्रिम के परिणाम स्वरूप सरकार के वित्तीय अनुशासन में वृद्धि होगी तथा RBI की मौद्रिक नीति सम्बन्धी स्वायत्तता बढ़ेगी। इसके पहले जहाँ बजटीय घाटा (budgetary deficit) अपने से स्वतः मौद्रिकृत (monetised) हो जाता था, अब ऐसा नहीं होगा। क्योंकि आर्थोपाय अग्रिम को रिजर्व बैंक द्वारा उस वर्ष में सरकार की उधारी के निबल योगदान में सम्मिलित नहीं किया गया, इसलिये आर्थोपाय अग्रिम की मात्रा चाहे जितनी हो, इससे राजकोषीय घाटा प्रभावित नहीं होगा। आर्थोपाय अग्रिम का वह भाग जिसका भुगतान सरकार द्वारा RBI को नहीं किया गया वह भाग लोक ऋण में सम्मिलित होगा तथा इससे राजकोषीय घाटा प्रभावित होगा।

2 भारत में मुद्रा की पूर्ति एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा मुद्रा स्फीति का सम्बन्ध

वस्तुतः मुद्रा की पूर्ति, राष्ट्रीय आय तथा मुद्रा स्फीति के बीच का सम्बन्ध पूर्णतया गणितीय नहीं होता इस रूप में प्रतिष्ठित, अर्थशास्त्री इरविंग फिशर हों अपना नव-मुद्रावादी फ्रीडमैन हों किसी का भी सिद्धान्त पूर्णरूप से सटीक नहीं बैठता। भारत की दशाओं में कीन्स का मुद्रा और कीमतों का सिद्धान्त भी लागू नहीं होता। इस रूप में इनके बीच का सम्बन्ध काफी पेचिदा हैं। इसकी व्याख्या किसी भी एक सिद्धान्त के साँचे में करना उपयुक्त नहीं होगा। नीचे की सारणी 12.5 में 1996 से 2011 के बीच की स्थिति को देख सकते हैं।

सारणी 12.5 मुद्रा की पूर्ति एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि और मुद्रा स्फीति

(1996-97 से 2010-11 तक)

	मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि (प्रतिशत)		निबल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि (प्रतिशत)	मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर
	(M_1)	(M_2)		
1996-97 से 2000-01	12.06	17.00	6.1	5.1
2001-02 से 2010-11	15.2	16.96	7.5	5.6

टिप्पणीः आँकड़े संवृद्धि दरों की सामान्य औसत दिखाते हैं।

स्त्रोत RBI, Handbook of Statistics on the Indian Economy, 2010-11 (Mumbai 2011). Table 232 and Govt. of India, Economic Survey 2011-12 (Delhi, 2012), Appendix Table 1.2 p A4.

उक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन और सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तन के बीच का सम्बन्ध किसी ठोस गणितीय सम्बन्ध से नही जुड़ा है। यह केवल प्रवृति का सूचक है। सरल शब्दों में, मुद्रा पूर्ति स्फीति को बढ़ाती है परन्तु अनेक कारण भी इनके सम्बधों को प्रभावित करते हैं।

प्रो. पी.डी. ओझा के अनुसार ***"मुद्रा स्फीति की दर में वृद्धि को विलम्ब के साथ भी मौद्रिक विस्तार की दर के साथ जोड़कर पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इससे केवल इतना स्पष्ट होता है कि स्फीतिक प्रक्रिया में न तो मौद्रिक प्रकृति के और न ही केन्सीयन प्रकृति के कारण सक्रिय होते हैं। संभवतः भारत की स्थिति में मुद्रा स्फीति केन्सीय और मौद्रिक किस्मों का ही मिश्रण नहीं है, वह इससे कही ज्यादा जटिल किस्म की चीज है।"*** इस तरह हम पाते हैं कि एक ओर मुद्रा की पूर्ति और उत्पादन तथा दूसरी ओर सामान्य कीमत स्तर के बीच कोई निश्चित और स्पष्ट सम्बन्ध नहीं होता। इसका कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के अलावा न केवल माँग पक्ष की ओर विविध कारकों का दबाव रहा है, बल्कि पूर्ति पक्ष की और भी अनेक तत्वों का स्फीतिकारी कीमत वृद्धि में योगदान रहा है। आर्थिक सर्वेक्षण 1993-94 के अनुसार 1980 के दशक के अन्त की ओर तथा 1990 के दशक के प्रारम्भ में मुद्रा-स्फीति की दर के बढ़ने का प्रमुख कारण राजकोषीय घाटा में वृद्धि का होना था। इस सम्बन्ध में मुद्रीकृत घाटे की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे रिजर्व मुद्रा में वृद्धि होती है। पिछले दस वर्षो में रिजर्व मुद्रा में 90 प्रतिशत वृद्धि का कारण मुद्रीकृत घाटा ही था जो छठी योजना में सकल घरेलू उत्पाद का 2.2 प्रतिशत, सातवीं योजना में 2.3 प्रतिशत तथा 1990-91 में 2.8 प्रतिशत था। राजकोषीय घाटे में कमी तथा अन्य उपायों द्वारा मुद्रा- स्फीति को नियन्त्रित किया जा सका। हाल के वर्षो में मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि का प्रमुख कारण अन्तराष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों में वृद्धि रहा है।

कीमतों में कुल वृद्धि का 41.2 प्रतिशत योगदान इन्हीं का रहा है, जबकि विनिर्मित वस्तुओं का योगदान 31.9 प्रतिशत तथा प्राइमरी वस्तुओं नें 27.5 प्रतिशत योगदान किया। इस तरह घाटे का मुद्रीकरण (monetization)निश्चित रूप से स्फीतिकारी होता है परन्तु इसकी गति तथा दिशा अनेक तत्वों से प्रभावित होती है।

12.12 भारत में राजकोषीय क्षेत्र में सुधार (Reforms in Fiscal Sector in India)

भारत में राजकोषीय सुधारों को दो समयों में बाँट सकते हैं;

(1) 1991 के पूर्व की स्थिति

(2) 1991 के बाद की स्थिति

(1) 1991 के पूर्व की स्थिति - केन्द्र तथा राज्य वित्त की प्रवृति का योजनाकरण के प्रारम्भ से ही अवलोकन करने पर देखा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था के राजकोषीय सन्तुलन में लगातार ह्रास हुआ है तथा 1980 के दशक में असुन्तलन की स्थिति अत्यन्त बिगड़ गई। इस कारण जिस अर्थव्यवस्था में राजस्व बजट में अतिरेक होता था उसमें अब लगातार घाटा होने लगा। ऐसा 1982-83 से प्रारम्भ हुआ। 1975-76 में राजस्व अतिरेक राष्ट्रीय आय (GDP) का 2.5 प्रतिशत था। 1990-91 में राजस्व घाटा राष्ट्रीय आय का लगभग 3.6 प्रतिशत हो गया। राजस्व घाटे में वृद्धि की दर राजकोषीय घाटे में वृद्धि की दर से अधिक रही। 1982-83 से राजकोषीय क्षेत्र में राजस्व अतिरेक के स्थान पर राजस्व घाटा का परिणाम यह हुआ कि ऋण का सृजन न करने वाला वित्त पोषण बढती आन्तरिक ऋणग्रस्तता का स्रोत बन गया।

1982-83 के पूर्व राजस्व प्राप्ति से राजस्व व्यय की वित्त व्यवस्था के पश्चात अतिरेक हुआ करता था, जिसका उपयोग पूँजी व्यय के एक भाग में वित्त पोषण के लिए होता था, लेकिन राजस्व घाटा की स्थिति में पूंजी प्राप्ति के एक भाग का उपयोग राजस्व व्यय के वित्त पोषण के लिए किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि आन्तरिक ऋण के साथ-साथ ब्याज के भार में भी वृद्धि होने लगी। आज ब्याज भारतीय लोक व्यय का सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक तेजी से बढ़ने वाला मद हो गया है। इसने बढ़ते घाटे, बढ़ते ऋण, बढ़ती ब्याज लागत तथा घाटे में और वृद्धि के एक सर्पिल मार्ग का सृजन किया है।

(2) 1991 के बाद की स्थिति

राजकोषीय स्थिति जो सम्पूर्ण अस्सी के दशक में दबाव में थी, 1991-92 के वित्तीय वर्ष में संकट की स्थिति में आ गयी। 1990 के खाड़ी संकट ने इस स्थिति को और बिगाड़ दिया। भुगतान शेष की समस्या जो 1990-91 में उपस्थिति हुई, जून 1991 में संकटकालीन स्थिति में पहुँच गयी। विदेशी विनिमय की कमी के कारण 1990-91 में आयात में कटौती की गयी। इससे औद्योगिक उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा वह 1991-92 के प्रारम्भ में घटने लगा। 1990-91 में मुद्रा- स्फीति की दर तेजी से बढ़ने लगी। अगस्त 1991 में यह 16.7 प्रतिशत की चोटी के स्तर पर पहुँच गई। वास्तविक ळक्च् की वृद्धि घटकर 2.5 प्रतिशत पर आ गयी।

जून 1991 तक भुगतान शेष से यह स्पष्ट हो गया कि आयात कटौती का उल्टा प्रभाव पड़ रहा है। विदेशियों को भारत के ऋण भुगतान करने की क्षमता पर सन्देह होने लगा। जून 1991 में जब नई सरकार बनी, उसे तेजी से कारगर कदम उठाना पड़ा। 1980 के दशक में चार पूर्वी एशियाई देशों- कोरिया, इण्डोनेशिया,मलेशिया

तथा थाईलैण्ड- ने राजकोषीय नीति पर विशेष बल देते हुए ऐसे आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ की जिससे ये देश निर्धन देशों के स्थान पर एशियाई बाघ (Asian Tigers) कहलाने लगे तथा इनकी अर्थव्यवस्था बाघ अर्थव्यवस्था (Tiger Economy) के नाम से सम्बोधित की जाने लगी। 1990-91 में भारतीय समष्टि आर्थिक दशा इससे एक दशक के पूर्व में इन चारों पूर्वी एशियाई देशों की आर्थिक स्थिति से भिन्न नहीं थी। 1980 के दशक के अन्त तथा आते दशक के प्रारम्भ से बिगड़ती सार्वजनिक वित्त की स्थिति में कोई सुधार करने की कोशिश नहीं की गई। इससे भारतीय विदेशी चालू खाते का असन्तुलन तथा बाह्य ऋण की स्थिति अत्यन्त ही बिगड़ गई। खाड़ी युद्ध के कारण पेट्रोल की कीमत में वृद्धि तथा मध्य- पूर्व से श्रमिकों द्वारा भेजी गई मुद्रा में कमी ने आर्थिक संकट की दशा पैदा कर दी। 1991 में भारत अपने विदेशी दायित्व की अदायगी नहीं करने की स्थिति में आ गया। जून 1991 में नरसिम्हाराव के नेतृत्व में नई केन्द्रीय सरकार बनी। इस स्थिति को और बिगड़ने से बचाने के लिए तेजी से कदम उठाने की जरूरत थी तथा संकटकालीन उपाय करने थे। भारत सरकार ने जुलाई 1991 में भारतीय रिजर्व बैंक को 47 टन सोना बैंक ऑफ इंग्लैण्ड को भेजने की अनुमति दी जिससे $ 600 मिलियन प्राप्त किया जा सका। जुलाई 1991 में ही रूपए के विनिमय मूल्य में समायोजन किया गया। इससे यह स्पष्ट हो गया था कि बड़े सुधारों की जरूरत है तभी संकट का पूरी तरह सामना किया जा सकता है। नई सरकार ने राजकोषीय सुधारों पर आधारित समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण के कार्यक्रम को अपनाया। औद्योगिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाने के लिए व्यापार, औद्योगिक तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में संरचनात्मक सुधारों के कार्यक्रम अपनाए गए।

1991 के सुधार कार्यक्रम के निम्न चार प्रमुख अंग हैं:

1. **राजकोषीय सुधार (Fiscal Reforms)-** स्थिरीकरण (stabilzation) प्रयत्न का प्रमुख अंग था राजकोषीय अनुशासन को फिर से स्थापित करना। मुद्रा-स्फीति तथा भुगतान शेष की समस्याओं की जड़ में विशाल बजटीय राजकोषीय घाटा था जो अनेक वर्षों से बना हुआ था।
2. **व्यापार नीति में सुधार (Trade Policy Reforms) -** इन सुधारों के द्वारा निर्यात को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया गया तथा विदेशी व्यापार से नियमन (regulation) तथा लाइसेन्स द्वारा नियन्त्रण को कम किया गया। रूपए के विनिमय मूल्य में 18 प्रतिशत का अवमूल्यन निर्यात प्रोत्साहन के लिए किया गया।
3. **औद्योगिक नीति में सुधार (Industrial Policy Reforms) -** 24 जुलाई, 1991 की नई औद्योगिक नीति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए, जैसे- उद्योगों पर से नियन्त्रण हटाना ताकि हमारे उद्योग और अधिक कार्य सक्षम (effeicient) तथा प्रतिस्पर्धात्मक बन सकें।
4. **सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Pubic Sector Reforms) -** सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक कार्य सक्षम बनाने के लिए कदम उठाए गए, जैसे संचालन में अधिक स्वायतता (autonomy) प्रदान करना।

डॉ. मनमोहन सिंह का कहना था कि ***"भारत के पास जो प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन हैं उनके आधार पर इसे विश्व अर्थव्यवस्था का शक्तिगृह (Power- house) होना चाहिए।"*** हमारे सुधार कार्यक्रम इसी स्वप्न से प्रेरित हैं। उपर्युक्त सुधारों के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं:

(अ)औद्योगिक उत्पादन की कार्यक्षमता तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा करने की क्षमता में वृद्धि।

(ब) इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले की तुलना में अब अधिक मात्रा में विदेशी निवेश तथा विदेशी टेक्नोलॉजी का उपयोगः

(स) निवेश की उत्पादकता में वृद्धिः

(द) भारतीय वित्तीय क्षेत्र का तेजी से आधुनिकीकरण तथा

(य) सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य निष्पादन (performance) में सुधार।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए औद्योगिक नीति के नए प्रतिरूप को तैयार किया गया। 1991 की नई औद्योगिक नीति के माध्यम से, व्यापार में सुधार किए गए, नई विदेशी निवेश नीति को अपनाया गया, पूँजी बाजार में सुधार लाए गए। बैंकिग क्षेत्र में सुधार किया गया, बीमा क्षेत्र में सुधार हुआ तथा कर क्षेत्र की फिर से रचना की गई। इस तरह कर क्षेत्र में सुधार हेतु प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कर प्रणाली में सुधार के साथ ही राजकोषीय दृढ़ीकरण की नीति भी अपनायी गयी।

राजकोषीय समेकन (fiscal consolidation) . राजकीय असन्तुलन में वृद्धि को देखते हुए मई 1991 में राजकोषीय घाटे कम करने की नीति के रूप में राजकोषीय शुद्धि (Fiscal Correction) तथा राजकोषीय समेकन (fiscal consolidation) राजकोषीय सुधारों के प्रमुख उद्देश्य थे। इसके लिए राजस्व में वृद्धि तथा व्यय पर नियन्त्रण की नीति को अपनाया गया।

उपरोक्त सभी उपायों से केन्द्रीय सरकार का राजकीय घाटा 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद के 7.8 प्रतिशत से घट कर 1991-92 में 5.6 प्रतिशत रह गया। 1992-93 में राजकोषीय घाटा 5.3 प्रतिशत था परन्तु 1993-94 में यह बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद का 7.0 प्रतिशत हो गया। अन्ततः 2010-11 तथा 2011- 12 में अनुमानित राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 3.3 तथा 4.4 हो गया। इसी तरह इन्हीं वर्षों का सकल राजकोषीय घाटा 4.9 प्रतिशत तथा 2.8 प्रतिशत होने का अनुमान है। देखें सारणी 12.6

सारणी 12.6: केन्द्रीय सरकार के घाटे

(चालू, बाजार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	राजस्व घाटा	सकल राजकोषीय घाटा	मूलभूत घाटा
1980-81	1.4	5.7	3.9
1985-86	2.1	7.8	5.1
1986-87	2.5	8.4	5.4
1989-90	2.6	7.3	3.7
1990-91	3.3	7.8	4.1
1991-92	2.5	5.6	1.5
1992-93	2.5	5.3	1.2
1993-94	3.8	7.0	2.7
1994-95	3.1	5.7	1.3
1995-96	2.5	5.1	0.9
1996-97	2.4	4.8	-0.5
1997-98	3.0	5.8	1.5
1998-99	3.8	6.5	2.0
1999-2000	3.5	5.4	0.7

2000-01	4.1	5.7	0.9
2001-02	4.4	6.2	1.5
2002-03	4.4	5.9	1.1
2003-04	3.6	4.5	0.0
2004-05	2.4	3.9	0.0
2005-06	2.5	4.0	0.4
2006-07	1.9	3.3	-0.2
2007-08	1.1	2.5	-0.9
2008-09	4.5	6.0	2.6
2009-10	5.2	6.5	3.2
2010-11	3.3	4.9	1.8
2011-12	4.4	5.9	2.8
संशोधित संस्था- अनुमान (2011-12) स्रोत्र (i) Reserve Bank of India, Handbook of Statistics on the Indian Economy 2008-09 (Mumbai, 2009) Table 243, P464 and (ii) Union Budget. 2012-13 Business Standard, March 17, 2012 p.7			

1991 की नीति की मुख्य बातें:

आर्थिक उदारीकरण के दृष्टिकोण के सांचे में भारत में 1990 के दशक में राजकोषीय नीति की विषय वस्तु को निश्चित रूप दिया गया है। इस विषय वस्तु पर मोटे तौर से सहमति है और इसे संक्षेप में निम्नलिखित ढंग से कहा जा सकता है:

1. कर ढाँचा और कर कानून व्यवस्थित ढंग से सरल बनाए जाने चाहिए।
2. प्रत्यक्ष करों की दरें विवेकी होनी चाहिए और इन करों की प्रशासनिक व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। ऐसा होने पर उन्हें ठीक से लगू कर पाना संभव होगा और इनमें राजस्व में वृद्धि होगी।
3. एक ऐसा कर- नीति-वातावरण तैयार करना जिसमें स्थिरता हो।
4. कराधान के साधन आवंटन और न्यायशीलता परिणामों का महत्व स्वीकार करना और उन्हें उचित महत्व देना।
5. अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन के लिए तदर्थ विवेकाधीन भौतिक नियंत्रणों की जगह गैर- विवकाधीन राजकोषीय एवं वित्तीय उपकरणों का प्रयोग करना।
6. कर प्रशासन में सुधार के प्रयास करना और मनमाने ढंग से करदाताओं को परेशान करने के लिए गुँजाइश न छोड़ना।
7. राजकोषीय एवं भौद्रिक नीति के बीच सम्बन्ध को महत्व देना ।
8. व्यय नियत्रंण की रीतियों को मजबूत बनाने के लिए उपाय करना।

12.13 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

टिप्पणी लिखें।

अ. घाटे की वित्त व्यवस्था के विभिन्न दृष्टिकोण।

ब. राजस्व व्यय।

स. राजस्व प्राप्तियों।

द. पूँजीगत व्यय।

प. पूँजीगत प्राप्तियों।

र. राजकोषीय घाटा।

ल. प्राथमिक अथवा मूल घाटा।

व. हीनार्थ प्रबन्धन रोकने के उपाय।

श. FRBM Act 2013

ष. घाटे का मौद्रीकरण।

12.14 सारांश (Summary)

इस इकाई के उपरोक्त विश्लेषण में घाटे की वित्त व्यवस्था, घाटे का मुद्रीकरण (monetization)और राजकोषीय क्षेत्र में सुधार को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत विषय का प्रस्तावना अध्ययन के उद्देश्यों के साथ घाटे की वित्त व्यवस्था के अमेरिकी तथा भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या की गयी है। इस हेतु प्रो. वी. के. आर. वी. राव, प्रो. आर. जी. कुलकर्णी तथा योजना आयोग की परिभाषाओं को भी स्पष्ट किया गया है। क्रमशः भारत में बजट घाटे की अवधारणाओं की वजह से सम्बन्धित चालू बजट, पूँजीगत बजट, राजस्व घाटा, बजटरी शेष, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक तथा मूल घाटा अन्य के गणितीय सूत्रों को देते हुए भारत में सरकारी घाटों के आकलन सम्बन्धी बजटीय घाटे, राजस्व घाटे, राजकोषीय घाटे, प्राथमिक घाटा, मौद्रीकृत घाटा अन्य के शाब्दिक अर्थ के साथ-साथ केन्द्रीय बजट के सार को सारणी द्वारा समझाया गया है।

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था के उद्देश्यों, हीनार्थ प्रबन्धन का मूल्यांकन, घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव, हीनार्थ प्रबन्धन के बुरे प्रभावों को रोकने के उपायों, राजकोषीय उत्तर दायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम के साथ-साथ मौद्रीकृत घाटे के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् अर्थोपाय अग्रिम, भारत में मुद्रा की पूर्ति एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा मुद्रा स्फीति का सम्बन्ध बताते हुए भारत में राजकोषीय क्षेत्र में सुधार से सम्बन्धित 1991 के पूर्व तथा बाद की स्थिति को स्पष्ट करते हुए केन्द्रीय सरकार के घाटे को सारणी के द्वारा बताया गया है। इस प्रकर इस इकाई के अन्तर्गत घाटे की वित्त व्यवस्था, घाटे का मुद्रीकरण (monetization)तथा राजकोषीय क्षेत्र में सुधार सम्बन्धी बातों का समावेश किया गया है।

12.15 शब्दावली (Glossary)

- **BB** - Budgetary Balance
- **BD** - Budgetary Deficit
- **FD** - Fiscal Deficit
- **PD** - Primary Deficit

- **PSBR** - Public Sector Borrowing Requirement
- **GFD** - Gross Fiscal Deficit
- **GDP** - Gross Domestic Product
- **M1** - (Cp+DD) = Currency of People + Demond Deposit
- **M3** - M1 + Time Deposit + Desposit of Other Institutions
- **FRBM Act 2003** - Fiscal Responsibility Budgetary Management Act 2003.

12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

12.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- डॉ. एस. के. सिंह, *लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी, *लोक अर्थशास्त्र*, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र, *राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त*, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल, *लोक वित्त*, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र, *लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त* विजडम बुक्स, वाराणसी

12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया, एच. एल (2006) *लोक वित्त* , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005) *राजस्व* ,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997)-*राजस्व*, साहित्य भवन पब्लिकेशन हॉस्पिटल रोड, आगरा।
- सिंह, एस. के. (2013)-*लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

12.19 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. घाटे की वित्त व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? भारतीय अवधारणा को समझाते हुए बजटीय घाटे की विभिन्न अवधारणायें बताइयें।
2. भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए हीनार्थ प्रवन्धन का मूल्यांकन कीजिये।
3. भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था के प्रभावों को उल्लेख करते हुए हीनार्थ प्रबन्धन के रोकने के उपाय बताये।
4. घाटे के मुद्रीकरण (monetization) से क्या समझते है? भारत में मुद्रा की पूर्ति एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि तथा मुद्रा स्फीति के सम्बन्धों पर अपने विचार प्रस्तुत करें।
5. भारत में राजकोषीय क्षेत्र में सुधार से क्या समझते है। FRBM Act 2003 के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करें।